हिन्दी भागवत

(भागवत पुराण के दशम एवं एकादश स्कंध में यथा वर्णित कृष्ण कथा काव्य)

संस्कृत के श्लोकों का हिन्दी छंदों में अनुवाद (श्लोकों के संख्यांक सहित)

काव्यानुवाद

पं. गोविंद मकरंद दुबे

साहित्यिक उपक्रम

पाथेय प्रकाशन, जबलपुर म.प्र.

ISBN : 978-81-979065-2-7

हिन्दी भागवत
(भागवत पुराण का संस्कृत से हिंदी में अनुवाद)

- काव्यानुवादक
  पं. गोविंद मकरंद दुबे
- प्रकाशन
  डॉ. राजकुमार सुमित्र
  पाथेय प्रकाशन
  112, सराफा वार्ड, जबलपुर
  मो. : 93001 21702
- सर्वाधिकार
  पं. गोविंद मकरंद दुबे
  एम.आई.जी. 17, हाऊसिंग बोर्ड कालोनी,
  कटंगा, जबलपुर (म.प्र.)
  मो. : 94251 52599
- प्रथम संस्करण
  2024
- अक्षर संयोजन
  मारबल कम्प्यूटर
  जबलपुर, मो. : 94254 10833
- मुखपृष्ठ
  श्री घनश्याम पटेल
- रेखांकन
  कु. यशिता वाजपेयी
- मुद्रक
  ओम आफसेट प्रिंटर्स
  बल्देवबाग, जबलपुर
- मूल्य
  अमूल्य है इसलिए मूल्य नहीं

निवेदन : प्रकाशन में अत्यन्त सावधानी रखी गई है फिर भी यदि कोई मानवीय त्रुटि दिखाई दे, तो क्षमा करते हुए रचनाकार को सूचित करने की कृपा करें। इसके साथ ही संशोधनों, सुझावों और सम्मतियों का भी स्वागत है। अगले प्रकाशन में सुझावों/संशोधनों का समावेश किया जायेगा और योग्य सम्मतियों का सचित्र प्रकाशन भी किया जायेगा। - प्रकाशक

प्रथम गुरु

स्व. श्रीमती इन्द्रानी दुबे

जब गर्भस्थ रहे शिशु, गर्भनाल से ही पोषण पाता।
लेकर जन्म, दूध मां का पीता, जो अमृत कहलाता॥
कहना-सुनना, चलना-फिरना, सब कुछ सिखलाती माता।
माता को इसलिए प्रथम गुरु का स्थान दिया जाता॥

॥ श्रीमतेरामानन्दाचार्याय नमः॥ ॥ श्री राम कृष्णाभ्यांनमः॥ ॥ वन्देमलूकदासायं द्वाराचायं जगद्गुरुम॥

॥ श्री सुरध्यैनमः॥

श्री मलूक पीठ सेवा संस्थान न्यास, वृन्दावन

श्री मलूक पीठ, वंशीवट, वृन्दावन (मथुरा) - 281121

अध्यक्ष :

जगद्गुरु द्वाराचार्य, मलूक पीठाधीश्वर

श्री राजेन्द्रदास देवाचार्य जी महराज फोन : 0565-6454808

॥ श्री हरिः शरणम्॥

अत्यन्त हर्ष का विषय है कविवर भक्त हृदय पं. श्री गोविन्द मकरंद दुबे जी ने श्रीमद्भागवत महापुराण के आश्रय लक्षण भूत दशम स्कन्ध तथा मुक्ति लक्षण भूत एकादश स्कन्ध का श्लोक संख्यानुसार अत्यन्त सुन्दर रस-छन्द-अलंकार से अलंकृत भाव मकरन्द से सुरभित काव्यानुवाद किया है। सत साहित्य सृजन एक श्रेष्ठ साधना है, यह चित्त को एकाग्र अन्तर्मुख बनाती है। उससे विशुद्धान्तःकरण होकर ज्ञान-वैराग्य-भक्ति को प्राप्त कर सत साहित्य सर्जक कृतार्थता प्राप्त कर लेता है।

भगवद् गुणगान से वागधिष्ठात्री भगवती शारदा सन्तुष्ट होतीं हैं, लेखक की लेखिनी, लेखन का क्षण सब धन्यातिधन्य हो जाता है। भगवान एवं भक्त दोनों की प्रसन्नता लेखक को प्राप्त होती है। आदरणीय दुबे जी के इस महनीय कार्य से भक्त भगवंत प्रसन्न हों, विश्व मंगल हो। हिन्दी भाषी भी ललित छन्दों का पाठ कर श्रीमद्भागवत रसामृत का आस्वादन कर कृतार्थ हों, ऐसी प्रभु से प्रार्थना है। शुभम् भूयात् -

राजेन्द्र दास

आ.कृ. 6 सं. 2081

बगलामुखी सिद्धपीठ शंकराचार्य मठ

सिविक सेन्टर, जबलपुर

गीता ज्ञान के बाद लीलागान : स्वागत योग्य सार्थक काव्य सृजन

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत पुराण, धर्मप्राण हिन्दू धर्मावलंबियों के सर्वमान्य सनातन ग्रंथ हैं, जो न केवल जीवन-दर्शन को व्याख्यायित करते हैं, वरन् जीवन को आध्यात्मिक आनंद से अनुप्राणित भी करते हैं। चूँकि दोनों ही ग्रंथ देववाणी संस्कृत में रचे गये हैं, इसलिये सहस्त्रों वर्षों से सहस्त्रों सामान्यजनों को, विद्वानों और आचार्यों के अनुवादों एवं व्याख्याओं पर निर्भर रहना पड़ता था। सामान्यतः यह व्याख्यान और व्याख्यायें और भी विशद और विस्तृत होतीं थीं, जिन्हें आत्मसात करना कठिन था। इसी कठिनाई को देखते हुये गत वर्ष श्री मकरंद दुबे जी द्वारा, गीता में देववाणी में वर्णित श्रीकृष्ण की वाणी को संस्कृत के कंचन कलश से मुक्त करके, उसे सरल हिन्दी छंदों के रूप में जन-जन तक प्रवहमान किया था तथा ज्ञान-भक्ति और कर्म-योग की त्रिवेणी को सर्व-सामान्य के लिये सुलभ बनाया था और अब श्री दुबे द्वारा श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित श्रीकृष्ण की लीलाओं के लालित्य को भी सरल हिन्दी में छंद-बद्ध करके 'हिन्दी भागवत' के रूप में उपलब्ध कराया गया है। 'गीता' जहाँ कृष्ण-अर्जुन के संवादों पर आधारित है, 'भागवत' परीक्षित-शुकदेव के प्रश्नोत्तरों का काव्य है। सात दिवस में मृत्यु के शाप से भयभीत परीक्षित को मृत्यु के भय से मुक्त करने वाली तथा शेष जीवन को आनंदमय बनाने वाली, श्री कृष्ण की आनंदमयी कथाएँ अन्य किसी भी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं हैं। यही कारण है कि सभी हिन्दू धर्मावलंबी जीवन में एक बार भागवत श्रवण करना चाहते हैं।

श्री दुबे द्वारा अपने काव्य कौशल से, संस्कृत श्लोकों में वेदव्यास द्वारा वर्णित अलौकिक भावों को इस निपुणता से हिन्दी छन्दों में समाविष्ठ किया गया है कि पाठक उस लीला लालित्य को यथावत आत्मसात कर पाते हैं। मैं हिन्दी वाङ्मय को समृद्ध करने और आनंददायक काव्यानुवाद के लिये श्री दुबे के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

ब्रह्मचारी सुबुद्धानंद महाराज

भूमिका

'हिंदी भागवत' के कवि, श्री गोविंद मकरंद दुबे की काव्य प्रतिभा से मैं गत पचास वर्षों से परिचित रहा हूँ। केवल 21 वर्ष की उम्र में उनका कविता संग्रह 'ओस और आंसू' छप चुका था। 70 के दशक में वे स्थानीय समाचार पत्रों से जुड़े रहे तथा सभी समाचार पत्रों-पत्रिकाओं में उनकी कविताएं प्रकाशित होती रहती थीं। कवि-गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों में भी उनकी सहभगिता रहती थी। एक स्थानीय समाचार पत्र में उनकी सम-सामयिक कविता वर्षों तक प्रतिदिन प्रकाशित होती थी।

फिर अचानक इस प्रतिभाशाली कवि के लेखन पर विराम लग गया। शासकीय सेवा में जाने के पश्चात् उन्होंने अधिकारियों के संगठन को नेतृत्व देने तथा विभागीय कानूनों पर पुस्तकें लिखने का काम प्रारंभ किया। कहना नहीं होगा कि कानून की किताबें बिकतीं भी थीं और रायल्टी भी प्राप्त होती थी।

सेवानिवृत्ति के पश्चात् आकाशवाणी के पास जब मेरी मुलाकात श्री मकरंद से हुई तो मैंने उन्हें कविता की ओर लौटने का सुझाव दिया, किंतु उन्होंने तब तक अधिवक्ता बनकर लोगों की मदद करने का मन बना लिया था और मेरे हाथ निराशा ही लगी। परंतु मुझे उस दिन सुखद आश्चर्य हुआ, जब उन्होंने मेरे घर आकर उनके द्वारा काव्यानुवाद की गई 'हिंदी गीता' की प्रति मुझे भेंट की। संस्कृत के श्लोकों को हिंदी छन्दों में बांधने का जो अत्यंत असाध्य कर्म उन्होंने किया था, मैं तो पढ़कर अभिभूत हो गया और मैंने उन्हें कहा कि मैं 'हिंदी गीता' पर लिखूंगा किंतु उन्होंने मुझे रोकते हुए कहा - गीता तो शाश्वत है। किसी अखबार में कुछ भी लिखे जाने से कुछ नहीं होगा। इसे तो जन-जन तक पहुंचाना है। आप कृपया मेरे अगले अनुवाद 'हिंदी भागवत' की भूमिका लिखना। और मैंने तत्काल ही सहर्ष स्वीकृति दी थी।

अब जब मैं 'हिंदी भागवत' की भूमिका लिखने बैठा हूँ तो लगता है यह कृष्णकथा तो आनंद एवं ज्ञान का ऐसा सागर है, जिसमें मैं डूब रहा हूँ। भागवतपुराण का वाचन करने वाले पण्डितों ने नाट्य-संगीत युति से वाचन को मोहक अवश्य बना दिया है, किंतु उनके द्वारा श्रीकृष्ण के सारे चरित्रों का वर्णन ही नहीं किया जाता है। वस्तुत: सात दिवस में यह संभव भी नहीं है। सामान्य तौर पर कृष्ण की मोहक बाल लीलाएं ही श्रोताओं को आकर्षित करतीं हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण में भगवान के सभी अवतारों का वर्णन है तथा श्रीकृष्ण चरित्र 10 वें स्कंध से प्रारंभ होता है और 11वें में समाप्त होता है। नृपति परीक्षित के निवेदन पर श्री शुकदेव जी द्वारा महाभारत युद्ध से संबंधित कथाओं को छोड़कर, भगवान की अन्य सभी नर-लीलाओं का वर्णन किया गया है, जिनमें यदुकुल का संहार भी शामिल है। 'हिंदी भागवत' में इसी कथा-क्रम को हिंदी छंदों में पिरोया गया है, जिनकी संख्या 4500 से अधिक है।

अनुवादक की अपनी सीमाएं होतीं हैं। उसे न केवल छंद, मात्रा, गति, यति का ध्यान रखना होता है, परिवर्तित शब्दावली में भी भावों को यथावत रखने की बाध्यता भी होती है। जिस तरह 'हिंदी गीता' में संस्कृत के श्लोकों के समक्ष हिंदी छंद को रखा गया था, वैसा इस 'हिंदी भागवत' में तो नहीं है, किंतु हिंदी के छंदों को पढ़कर ही अनुमान लगाया जा सकता है कि भागवत पुराण के प्रणेता ने किस तरह के आनंददायक रस, छंद एवं अलंकारों का प्रयोग किया होगा।

'हिंदी भागवत' वस्तुत: भगवान श्रीकृष्ण का वह सम्पूर्ण चरित्र है जो पूरा का पूरा अन्यत्र अप्राप्य है। मेरी दृष्टि में 'हिंदी भागवत' हिंदू समाज के लिए एक ऐसा आयाम खोलेगी, जिसमें वे श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र का वैसा ही दर्शन प्राप्त कर सकेंगे जैसे उन्हें तुलसी दास कृत रामचरित मानस में भगवान राम के दर्शन प्राप्त होते हैं।

मैं इस ग्रंथ के रचनाकार को साधुवाद देता हूँ और भगवान से प्रार्थना करता हूं कि वे ऐसी कृपा करें कि यह रचना जन-जन तक पहुंचे। इसी ग्रंथ से चार पंक्तियां उद्धृत करके मैं अपनी बात समाप्त करता हूँ।

बहा रखीं हैं प्रभु ने पाप-ताप-हरिणी दो सरिताएं।
प्रभु के पद से निकली गंगा, प्रभु की सारी लीलाएं॥

करते श्रवण कथा का और लगाते गंगा में गोते।
दोनों तीर्थों का सेवन कर, भव से सभी पार होते॥

डॉ. राजकुमार तिवारी 'सुमित्र'

(सम्माननीय डॉ. राजकुमार सुमित्र पिछले एक-दो वर्षों से अस्वस्थ थे, जब मैंने उन्हें 'हिंदी भागवत' की पाण्डुलिपि दी तो उन्होंने अत्यंत हर्ष के साथ स्वीकारते हुए कहा कि पाण्डुलिपि का अध्ययन करने के उपरांत ही कुछ लिख पाऊँगा। सुमित्र जी ने बिस्तर पर ही पाण्डुलिपि को पढ़ा। पढ़ने के उपरांत उन्होंने बिस्तर पर लेटे-लेटे ही बोलते हुए चि. राजेश पाठक 'प्रवीण' से लिपिबद्ध करवाया। आदरणीय सुमित्र जी अब हमारे बीच नहीं हैं, श्रद्धा सुमन सहित उनकी अभिव्यक्ति प्रस्तुत है।)

'हिंदी गीता' के बाद 'हिंदी भागवत' काव्यानुवाद ज्ञानामृत एवं आनंदामृत की अजस्त्र धाराएं

गीता ज्ञान के आध्यात्मिक रहस्य का अंश मात्र साक्षात्कार, जीवन की सार्थकता और मुक्ति का मार्ग है। गीता सत्-चित्-आनंद स्वरूपा है और ज्ञान-भक्ति-कर्म की त्रिवेणी है। गीत वस्तुत: अंत:करण का संविधान है। गीता का रहस्य कृष्णार्जुन संवादों में निहित है। गीता की विशद एवं वृहत् व्याख्यायें उपलब्ध हैं, किंतु सरल हिंदी में काव्यानुवाद करने का कवि का यह प्रयास अनोखा है, इसीलिए गत वर्ष प्रकाशित हुई 'हिंदी गीता' को पर्याप्त प्रतिसाद मिला।

इसी क्रम में विद्वत मनीषी, धर्म, अध्यात्म, संस्कृति के लिए समर्पित पं. मकरंद दुबे जी के द्वारा श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित रसराज सच्चिदानंदघन श्रीकृष्ण की रसमय लीलाओं को भी हिंदी में छंदबद्ध करते हुए 'हिंदी भागवत' का सृजन किया गया है। गीता में जहाँ युद्धभूमि में विषादग्रस्त अर्जुन को निष्काम कर्म की प्रेरणा स्वयं ज्ञानमूर्ति श्रीकृष्ण देते हैं, वहाँ सात-दिवस में मृत्यु का शाप प्राप्त राजा परीक्षित के शेष समय को आनंदमय और मृत्यु को मुक्ति बनाने हेतु व्यासपुत्र शुकदेव रसेश्वर कृष्ण की रसमयी रासलीला का श्रवण कराते हैं। गीता जहाँ ज्ञानामृत की गागर है, वहाँ भागवत आनंद का सागर है।

धार्मिक ग्रंथों के संस्कृत श्लोकों का हिंदी छंदों में अनुवाद करना एक दुष्कर कार्य है। धर्म के प्रति अगाध आस्था, संस्कृत का अध्ययन, काव्य विधा में परिपक्वता और निरंतर अध्यवसाय बिना यह संभव नहीं होता है।

'हिंदी भागवत' के छंदों को देखने के बाद मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्वयं माँ सरस्वती की अलौकिक कृपा काव्यानुवादक पर है। यह ग्रंथ हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। मैं प्रणाम करता हूँ भाव-मनीषी, धर्म, संस्कृति के आराधक को .....

राजेश पाठक 'प्रवीण'
संपादक - 'सनाढ्य संगम'
शताब्दीपुरम, जबलपुर
मो. : 98272 62605

'हिंदी भागवत' हिंदी वाङ्मय की अमूल्य निधि

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित 18 पुराणों में 4 लाख तथा महाभारत में एक लाख श्लोक हैं। जिस तरह महाभारत के एक लाख श्लोकों का सारतत्व भगवत् गीता में समाहित है, उसी तरह 18 पुराणों के 4 लाख श्लोकों का सारतत्व, भागवत पुराण के दशम् स्कंध के उन 4 हजार श्लोकों में समाहित है, जिनमें भगवान श्रीकृष्ण की आनंदमयी मानव-लीलाओं का वर्णन है। 'हिंदी भागवत' में इन्हीं श्लोकों को सरल हिंदी में, मधुर छंदों के रूप में अनुवादित करके श्रीकृष्ण की आनंदमय नर-लीलाओं का रसास्वादन हिंदी के पाठकों को कराया गया है। यह रसानुभूति 'रसो वै स:' को चरितार्थ करती है तथा ज्ञान, भक्ति और आनंद की त्रिवेणी को प्रवहमान बनाती है।

वस्तुत: भगवान श्रीकृष्ण की इन आनंदमय नर-लीलाओं के वर्णन के लिए स्वयं परीक्षित ने तब मुनि शुकदेव से अनुरोध किया था, जब उनके शापित जीवन के अंतिम सात दिनों में से कुछ ही दिन शेष बचे थे। इन आनंदमय लीलाओं के रसामृत ने न केवल उनके शेष जीवन को आनंदमय बनाया था वरन् मुक्ति के द्वार भी खोले थे। कहा जाता है कि अठारह पुराणों की रचना के बाद भी अतृप्त और अशांत मुनि वेदव्यास को नारदजी ने भागवत पुराण की रचना का परामर्श दिया था तथा इस रचना के बाद ही उन्हें शांति एवं संतुष्टि मिली थी।

'हिंदी भागवत' के माध्यम से अब वही रसानुभूति, शांति, संतुष्टि और तृप्ति के द्वार जन-साधारण के लिए भी अनावृत हो गये हैं, जहां प्रवेश हेतु सनातन धर्मावलम्बी सात दिवसीय 'भागवत पारायण' के लिए तत्पर रहते हैं।

अनुवाद, एक परकाया प्रवेश का प्रक्रिया है। काव्यानुवाद करना तो और भी दुष्कर होता है, क्योंकि इस प्रक्रिया में मूल-काव्य में वर्णित भावों को ग्रहण करके, उन्हें यथारूप छंदानुशासन में बांधकर न केवल इच्छित भाषा में ढालना होता है वरन् उसे रस एवं अलंकार से शृंगारित भी करना होता है। 'हिंदी भागवत' को पढ़कर लगा कि यह रचना-चमत्कार भगवत-कृपा से ही संभव हुआ है। इस दैवी-रचना का मूल्यांकन, आने वाला समय करेगा और यह चमत्कारिक कृति हिंदी वाङ्मय की अमूल्य निधि सिद्धि होगी।

रमेश तिवारी
ख्यात कवि, दमोह

प्राक्कथन

आज जब मैं 'हिंदी भागवत' का प्राक्कथन लिख रहा हूँ, तो मेरे मन में अपूर्व संतुष्ठि व्याप्त है, जैसे मैंने जीवन का अभीष्ट प्राप्त कर लिया हो। बचपन से ही घर का वातावरण कृष्ण-मय था। जन्माष्टमी पर कृष्ण-लीलाओं वाला पट लगाया जाता था, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के रेखाचित्र बने होते थे, किंतु कृष्ण की शेष लीलाओं को जानने की इच्छा शेष ही रह जाती थी।

यद्यपि घर में भागवत पुराण की प्रति उपलब्ध थी, किंतु उसमें केवल संस्कृत के श्लोक थे, जिन्हें पढ़ना-समझना संभव न था। फिर भी बाल सुलभ चेष्टाओं के चलते दशम् स्कंध के श्लोकों को ही स्मरण करना प्रारंभ किया। पर यह सिलसिला अधिक दिन नहीं चल सका और मन में यह इच्छा दमित होकर ही रह गई कि काश रामचरित मानस की तरह सरल हिंदी कविता में कृष्ण-चरित्र भी उपलब्ध होता।

स्कूल के दिनों में संस्कृत अनिवार्य तीसरी भाषा थी, जो कि अनुवाद के लिए अपर्याप्त थी। इसलिए संस्कृत में कोविद किया और काव्य विधा पर भी हाथ आजमाये, परिणामत: कविता संग्रह 'ओस और आंसू' प्रकाशित हुआ।

इसके पश्चात् जीवकोपार्जन के चक्कर में पड़कर और पारिवारिक उत्तरदायित्वों का वहन करते-करते ध्यान ही नहीं रहा कि 50-55 वर्ष कब गुजर गए। यद्यपि इस दौरान विभागीय नियमों के संकलन-सम्पादन के कारण निरंतर पुस्तकों और लेखकों के ही निकट रहा और जैसे ही ईश्वर ने अवसर दिया, भगवद्गीता के श्लोकों का हिंदी छन्दों में अनुवाद करके प्रकाशित कराया, जिसे भूरि-भूरि प्रशंसा मिली तथा यू-ट्यूब पर भी हजारों श्रोताओं ने उसे श्रवण किया।

'हिंदी भागवत' को छंदबद्ध करते समय श्री राधा का इसमें उल्लेख नहीं होने को लेकर मन में प्रश्न उठते रहते थे, किंतु समापन होते-होते इसका समाधान भी मिल गया जब, इन्द्रप्रस्थ नरेश परीक्षित और मथुरा-नरेश वज्रनाभ को महर्षि शाडिल्य ने इस रहस्य से अवगत कराया। इसी दृष्टि से मेरे द्वारा भागवत महात्म्य

के दो अध्यायों को भी 'हिंदी भागवत' में शामिल किया गया है।

श्रीमद्भागवत के कई हिंदी अनुवाद सुखसागर के रूप में उपलब्ध हैं और भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र वाले दशम् स्कंध की कथा भी 'प्रेम सागर' के रूप में उपलब्ध है। चूंकि यदुकुल संहार और भगवान का स्वधाम गमन ग्यारहवें स्कंध में वर्णित है इसलिए 'हिंदी भागवत' में ग्यारहवें स्कंध के भी चार अध्यायों का समावेश किया गया है।

'हिंदी भागवत' को छंदबद्ध करने के दौरान, महाभारत युद्ध में भगवान श्रीकृष्ण की भूमिका का उल्लेख, श्रीमद्भागवत में नहीं होने के प्रश्न भी मन में खड़े हुए थे, जिसका उत्तर पहले अध्याय के प्रथम छै: श्लोकों में ही मिल गया, जिनमें नृप परीक्षित, सूर्य एवं चन्द्रवंशी राजाओं के चरित्रों को सुनने के पश्चात, शुकदेव जी को भगवान श्रीकृष्ण की आनंदमयी लीलाओं को सुनाने का आग्रह करते हुए, महाभारत युद्ध का संक्षिप्त विवरण स्वयं देते हैं।

यहां मैं यह उल्लेख करना चाहता हूँ कि 18 दिन चले महाभारत युद्ध में केवल 18 अक्षौहिणी सेना शामिल हुई थी, जबकि इससे कहीं अधिक बड़ी सेनाओं का संहार भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कई बार किया गया था तथा भूमि का भार कम किया गया था। अकेले जरासंध द्वारा 23-23 अक्षौहिणी सेना लेकर 17 बार मथुरा पर आक्रमण किया गया था और सम्पूर्ण सेना का नाश श्रीकृष्ण द्वारा किया गया था। भौमासुर युद्ध, शाल्व युद्ध, दन्तवक्त्र और बिदूरथ युद्ध तथा बाणासुर युद्ध जिसमें भगवान शिवशंकर बाणासुर की ओर से लड़ रहे थे, महाभारत से कहीं अधिक भयानक युद्ध थे, किंतु भगवान ने अकेले ही सब शत्रुओं को परास्त किया था।

आशा है, पाठकों को यह सारी कथायें, उस आनंद की अनुभूति करायेंगी, जो अन्यत्र अप्राप्त है। यदुकुल संहार, भगवान का स्वधाम गमन, राधा प्रसंग और गोपियों का प्रभास क्षेत्र में अंतिम मिलन की कथाएं भी पाठकों को अभिभूत करेंगी, ऐसी आशा है।

गोविंद मकरंद दुबे

अनुक्रमणिका

दसम स्कंध

अध्याय	विषय वस्तु	पृष्ठ
पहला अध्याय	परीक्षित के शुकदेव से प्रश्न देवताओं की अवतार हेतु भगवान से प्रार्थना : वसुदेव-देवकी विवाह और देवकी के छै: पुत्रों की हत्या	1
दूसरा अध्याय	भगवान का गर्भ प्रवेश एवं देवताओं द्वारा गर्भ स्तुति	8
तीसरा अध्याय	भगवान श्रीकृष्ण का प्राकट्य	14
चौथा अध्याय	योगमाया की भविष्यवाणी	20
पाँचवा अध्याय	गोकुल में श्रीकृष्ण जन्मोत्सव	25
छठवां अध्याय	पूतना-उद्धार	28
सातवां अध्याय	शकट भंजन और तृणावर्त उद्धार	33
आठवां अध्याय	नामकरण संस्कार और बाल लीला	38
नौवां अध्याय	श्रीकृष्ण का ऊखल बंधन	44
दसवां अध्याय	यमलार्जुन उद्धार	47
ग्यारहवां अध्याय	गोकुल से वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर एवं बकासुर का उद्धार	52
बारहवां अध्याय	अघासुर-उद्धार	58
तेरहवां अध्याय	ब्रह्माजी का मोह और उसका नाश	64
चौदहवां अध्याय	ब्रह्माजी के द्वारा स्तुति	72
पन्द्रहवां अध्याय	धेनुकासुर उद्धार एवं गोप-ग्वालों की कालिया नाग के विष से रक्षा	81
सोलहवां अध्याय	कालिया नाग पर कृपा	87
सत्रहवां अध्याय	कालिया नाग के कालियादह में आने की कथा तथा भगवान का ब्रजवासियों को दावानल से बचाना	96
अठारहवां अध्याय	प्रलम्बासुर उद्धार	99
उन्नीसवां अध्याय	गायों एवं गोपों की दावानल से रक्षा	103
बीसवां अध्याय	वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन	105
इक्कीसवां अध्याय	वेणुगीत	110

अध्याय	विषय वस्तु	पृष्ठ
बाईसवां अध्याय	चीरहरण लीला	113
तेईसवां अध्याय	यज्ञ करने वाले विप्रों की पत्नियों पर कृपा	117
चौबीसवां अध्याय	इन्द्र-यज्ञ-निवारण	123
पच्चीसवां अध्याय	गोवर्धन-धारण	126
छब्बीसवां अध्याय	नन्द बाबा से गोपों की बातचीत	130
सत्ताइसवां अध्याय	इन्द्र एवं कामधेनु द्वारा श्रीकृष्ण का अभिषेक	132
अट्ठाइसवां अध्याय	वरुण लोक से नंद को छुड़ा कर लाना	136
उन्नतीसवां अध्याय	रासलीला का प्रारंभ	138
तीसवां अध्याय	श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की दशा	144
इकतीसवां अध्याय	गोपिका गीत	150
बत्तीसवां अध्याय	भगवान का प्रकट होकर गोपियों को सांत्वना देना	153
तैंतीसवां अध्याय	महारास	156
चौतीसवां अध्याय	सुदर्शन और शंखचूड़ का उद्धार	162
पैतीसवां अध्याय	युगल गीत	165
छत्तीसवां अध्याय	अरिष्टासुर का उद्धार और कंस का अक्रूरजी को ब्रज भेजना	169
सैंतीसवां अध्याय	केशी और व्योमासुर का उद्धार तथा नारदजी द्वारा भगवान की स्तुति	174
अड़तीसवां अध्याय	अक्रूरजी की ब्रज यात्रा	178
उनतालीसवां अध्याय	श्रीकृष्ण-बलराम का मथुरा आगमन	183
चालीसवां अध्याय	अक्रूरजी द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति	190
इकतालीसवां अध्याय	श्रीकृष्ण का मथुरा में प्रवेश	194
बयालीसवां अध्याय	कुब्जा पर कृपा, धनुष-भंग और कंस की घबराहट	200
तेतालीसवां अध्याय	कुबलियापीड़ का उद्धार और अखाड़े में प्रवेश	204
चौवालीसवां अध्याय	चाणूर-मुष्टिक आदि पहलवानों एवं कंस का उद्धार	208
पैतालीसवां अध्याय	बलराम एवं कृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार और गुरुकुल प्रवेश	214
छियालीसवां अध्याय	उद्धवजी की ब्रज यात्रा	219
सैतालीसवां अध्याय	उद्धव की गापियों से बातचीत और भ्रमर गीत	224
अड़तालीसवां अध्याय	श्रीकृष्ण का कुब्जा और अक्रूर के घर जाना	233
उनचासवां अध्याय	अक्रूरजी का हस्तिनापुर जाना	238

अध्याय	विषय वस्तु	पृष्ठ
पचासवां अध्याय	जरासंध से युद्ध और द्वारकापुरी का निर्माण	241
इक्यावनवां अध्याय	कालयवन का भस्म होना और मुचुकुंद की कथा	247
बावनवां अध्याय	द्वारका गमन, श्री बलरामजी का विवाह, श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणी का संदेश लेकर विप्र का आना	254
तिरेपनवां अध्याय	रुक्मिणीहरण	259
चौवनवां अध्याय	शिशुपाल के साथी राजाओं और रुक्मी की पराजय तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह	265
पचपनवां अध्याय	प्रद्युम्न का जन्म और शरम्बासुर का वध	271
छप्पनवां अध्याय	स्यमन्तक मणि की कथा और जाम्बवती एवं सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण का विवाह	276
सत्तावनवां अध्याय	स्यमन्तक हरण: शतधन्वा उद्धार और अक्रूर जी को फिर से द्वारका बुलाना	280
अट्ठावनवां अध्याय	भगवान श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाहों की कथा	284
उनसठवां अध्याय	भौमासुर का उद्धार और सोलह हजार एक सौ राज कन्याओं के साथ श्रीकृष्ण का विवाह	290
साठवां अध्याय	श्रीकृष्ण-रुक्मिणी संवाद	296
इकसठवां अध्याय	श्रीकृष्ण की संतति का वर्णन तथा अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का मारा जाना	303
बासठवां अध्याय	ऊषा-अनिरुद्ध मिलन	308
तिरेसठवां अध्याय	श्रीकृष्ण बाणासुर युद्ध	312
चौसठवां अध्याय	राजा नृग की कथा	318
पैंसठवां अध्याय	बलरामजी का ब्रज गमन	323
छियासठवां अध्याय	पौण्ड्रक और काशीराज का उद्धार	326
सड़सठवां अध्याय	द्विविद उद्धार	331
अड़सठवां अध्याय	कौरवों पर बलराम जी का क्रोध और साम्ब विवाह	333
उनहत्तरवां अध्याय	देवर्षि नारद द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की दिनचर्या का अवलोकन	339
सत्तरवां अध्याय	भगवान श्रीकृष्ण की दिनचर्या और उनके पास जरासंध के कैदी राजाओं के दूत का आगमन	344
इकहत्तरवां अध्याय	श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पधारना	350

अध्याय	विषय वस्तु	पृष्ठ
बहत्तरवां अध्याय	पांडवों के राजसूय यज्ञ का आयोजन एवं जरासंध उद्धार	355
तिहत्तरवां अध्याय	जरासंध की जेल से छूटे हुए राजाओं की बिदाई और श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ लौटना	360
चौहत्तरवां अध्याय	भगवान श्रीकृष्ण की अग्रपूजा और शिशुपाल उद्धार	364
पचहत्तरवां अध्याय	राजसूय यज्ञ की पूर्ति और दुर्योधन का अपमान	369
छिहत्तरवां अध्याय	शाल्व के साथ यादवों का युद्ध	374
सतहत्तरवां अध्याय	शाल्व उद्धार	377
अठहत्तरवां अध्याय	दन्तवक्त्र और विदूरथ का उद्धार तथा तीर्थ यात्रा में बलराम जी द्वारा सूतजी का मारा जाना	381
उन्यासीवां अध्याय	बल्वल का उद्धार और बलराम जी की तीर्थ यात्रा	385
अस्सीवां अध्याय	श्रीकृष्ण द्वारा सुदामा जी का स्वागत	389
इक्यासीवां अध्याय	सुदामाजी को ऐश्वर्य की प्राप्ति	392
बयासीवां अध्याय	भगवान श्रीकृष्ण एवं बलराम की गोप-गोपियों से भेंट	398
पचासीवां अध्याय	भगवान श्रीकृष्ण द्वारा वासुदेवजी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश तथा देवकी के छैः मृत पुत्रों को वापस लाना	401

एकादश स्कंध

प्रथम अध्याय	यदुवंश को ऋषियों का श्राप	408
छठवां अध्याय	देवताओं की भगवान से स्वधाम सिधारने की प्रार्थना तथा यादवों की प्रभास क्षेत्र जाने की तैयारी	411
तीसवां अध्याय	यदुकुल का संहार	416
इक्तीसवां अध्याय	भगवान का स्वधाम गमन	420

श्रीमद्भागवत महात्म्य

पहला अध्याय	परीक्षित और वज्रनाभ का समागम, शांडिल्य मुनि के मुख से भगवान की लीला के रहस्य और ब्रज भूमि के महत्व का वर्णन	423
दूसरा अध्याय	वज्रनाभ द्वारा नये ब्रज का निर्माण	428

दशम स्कंध

पहला अध्याय

परीक्षित के शुकदेव से प्रश्न, देवताओं की अवतार हेतु भगवान से प्रार्थना : वसुदेव-देवकी विवाह और देवकी के छैः पुत्रों की हत्या

सूर्य-चंद्रवंशी नृपगण के कहे चरित्र चमत्कारी।
बोले नृपति परीक्षित, श्रीशुकदेव आपका आभारी॥१॥

धर्मशील यदुकुल में जन्मे, कृष्ण, विष्णु के अवतारी।
हे मुनि श्रेष्ठ, कृपा करके, अब कहिए कृष्ण-कथा सारी॥२॥

यदुकुल में अवतरित कृष्ण, जो हरि का अंश कहे जायें।
विस्तृत वर्णन करें, विश्व-पालनकर्ता की लीलाएं॥३॥

प्यास बुझ चुकी तृष्णा की जिनकी, वे जिनका गान करें।
भवसागर से पार करे जो औषधि, उसका पान करें॥
सुनकर जिनकी लीलाओं, को तृप्त आत्मा हो जाती।
उनसे करे न प्रीत, विमुख हो उनसे, मनुज आत्मघाती॥४॥

कुरु सेना के सागर में, जब घिरे पितामह थे मेरे।
मगरमच्छ थे भीष्मपितामह जैसे उसमें बहुतेरे॥
कृष्ण-कृपा से, कुरु-सेना-सागर को पार किया ऐसे।
सिंधु नहीं, गो के बछड़े के खुर का गड्ढा हो जैसे॥५॥

मैं, कुरु-पाण्डु-कुलों का अंतिम बीज, गर्भ में आया था।
मुझे मारने अश्वस्थामा ने ब्रह्मास्त्र चलाया था॥
देख अग्नि का चक्र, कृष्ण को मेरी माता ने टेरा।
कर गर्भ में प्रवेश कृष्ण ने शीतल किया अग्नि घेरा॥६॥

वे सब देहधारियों में बन प्राण, अमरता देते हैं।
काल-रूप बन कर वे ही, जीवन वापस ले लेते हैं॥
भीतर जीवन बनकर रहते, बाहर बनकर मृत्यु रहें।
उनकी नर-लीलाओं को प्रभु, विस्तारित रूप में कहें॥७॥

हैं बलराम रोहिणी के सुत, अभी आपने बतलाया।
बिन-देहांत देवकी के गर्भस्थ रहे, यह क्या माया॥८॥

क्यों भगवान मुकुंद पिता के घर को तज, ब्रज में आये।
कहाँ-कहाँ प्रभु रहे, कौन से दिव्य क्षेत्र प्रभु को भाये॥९॥

मथुरा की, ब्रज की, लीलाओं का करिये वर्णन सारा।
क्यों प्रभु ने अपने हाथों से अपने मामा को मारा॥१०॥

किया कृष्ण ने कितने वर्षों तक मानव का तन धारण।
कितनीं थीं पत्नियां और जा बसे द्वारका किस कारण॥११॥

मैंने जो पूँछीं हैं और नहीं पूँछीं जो लीलाएं।
आप जानते हैं मुनि सब कुछ, मुझको सब कुछ बतलाएं॥१२॥

त्याग दिया जल-अन्न अब मुझे, पीड़ित करती नहीं क्षुधा।
पीता हूँ मुनिवर के मुख से बहती जो हरिकथा-सुधा॥१३॥

कहा सूतजी ने शौनक से, ''सुन, जो कहा परीक्षित ने''।
साधु-साधु कह उठे संत-शुकदेव, प्रसन्न हुए इतने॥

कृष्ण-कथा जिसकी धारा में कलि के कल्मष बह जायें।
मुनिवर उद्यत हुए सुनाने प्रभु की सारी लीलाएं॥१४॥

बोले श्रीशुकदेव - आपकी स्थिर बुद्धि ज्ञान-योगी।
पीकर कृष्ण-कथा का अमृत, प्रभु में प्रीति सुदृढ़ होगी॥१५॥

कृष्ण-कथा संबंधी प्रश्नों का कर्ता, वक्ता, श्रोता।
सब नर-नारी पावन होते, चरणामृत-सा फल होता॥ १६॥

कब तक दैत्य बने राजाओं का अतिभार सहन करती।
गौ का रूप बनाकर, ब्रह्मा जी के पास गई धरती॥ १७॥

क्रंदन करती, अश्रु बहाती, वसुधा धेनु रूप-धारी।
करुण स्वरों में, कही विधाता से निज व्यथा-कथा सारी॥ १८॥

दुखित धरा को देख देवगण आये, शिवशंकर आये।
सभी देवगण फिर ब्रह्मा के साथ क्षीर-सागर आये॥ १९॥

जगन्नाथ देवाधिदेव पूरी करते अभिलाषायें।
पुरुषसूक्त गाया देवों ने, वसुधा के दुख मिट जायें॥ २०॥

समाधिस्थ हो गए विधाता, गगन-गिरा सुनकर जागे।
दिया दिशा-निर्देश देवगण को जो करना है आगे॥ २१॥

प्रभु को पृथ्वी की पीड़ा का पहले से ही ज्ञान रहा।
पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करना, बस एक निदान रहा॥

ले यदुकुल में जन्म, बनो प्रभु की लीला में सहयोगी।
प्रभु होंगे अवतरित, भूमि ब्रज की अब दिव्य भूमि होगी॥ २२॥

प्रकटेंगे वसुदेव-देवकी के घर, धरा भार हरने।
सभी देवियाँ ब्रज में जन्में, प्रभु की प्रिय सेवा करने॥ २३॥

शेष अनंत सहस्त्रों मुख वाले, प्रभु के अग्रज होंगे।
प्रभु के इच्छित कठिन कार्य भी, उनके लिए सहज होंगे॥ २४॥

हरि की अंश योगमाया, जग को मोहित करने वाली।
वे भी लेंगी जन्म, परम-ऐश्वर्य, परम-वैभव-शाली॥ २५॥

बोले श्रीशुकदेव - धरा आश्वस्त हुई सब शोक गए।
दे निर्देश देवताओं को, ब्रह्माजी निज लोक गए॥ २६॥

एक समय थे शूरसेन नृप, जो मथुरा के वासी थे।
माथुर एवं शूरसेन मंडल के वे अधिशासी थे॥ २७॥

मथुरा में ही रहते थे सब जो यदुवंशी शासक थे।
नित्य जहां श्री हरि रहते, श्री हरि के सभी उपासक थे॥ २८॥

शूरपुत्र वसुदेव, देवकी-देवि बने जीवनसाथी।
थे वर-वधु निज रथ पर, पीछे-पीछे थे घोड़े, हाथी॥ २९॥

उग्रसेन का पुत्र कंस, खुश करने का अवसर पाकर।
रास पकड़ कर, जगह सारथी की खुद बैठ गया जाकर॥ ३०॥

दिए चार सौ हाथी, स्वर्ण-हार से सज्जित किए गए।
सजे अठारह सौ रथ, पन्द्रह सहस अश्व भी दिए गए॥ ३१॥

देवक ने दहेज में भेजीं, दो सौ सजीं सेविकाएं।
पिता चाहते थे पुत्री को मिलें सभी सुख-सुविधाएं॥ ३२॥

रथ जैसे ही चला, नवयुगल जिस पर बैठे सजे-धजे।
दुन्दुभियां, तुरही, मृदंग, शंखदि वाद्य समवेत बजे॥ ३३॥

'जिसकी तू कर रहा बिदाई' सुनी कंस ने नभवाणी।
'इसका पुत्र आठवां लेगा, तेरे प्राण, मूर्ख प्राणी'॥ ३४॥

कुल-कलंक, खल-कंस भूलकर, है देवकी बहन प्यारी।
केश पकड़, तलवार खींच, की वध करने की तैयारी॥ ३५॥

क्रूर कंस निर्लज्ज, पाप का भागीदार नितांत रहा।
शांत रहे वसुदेव, शांति से, खल को करने शांत कहा॥ ३६॥

आप भोज-कुल-तिलक, यशस्वी, क्या यह नहीं विचारेंगे।
एक बहन को, नारी को, शुभ अवसर पर क्या मारेंगे ?॥ ३७॥

हे युवराज! मृत्यु को लेकर साथ जन्मते लोग सभी।
सब मरते हैं, सौ वर्षों के बाद मरें, या मरें अभी॥ ३८॥

जीवन की समाप्ति पर, तन को जीव छोड़ कर जाता है।
कर्मों के अनुसार जीव, फिर से नूतन-तन पाता है॥ ३९॥

पग जमने पर उठे दूसरा पग, जब मानव चलता है।
जोंक बदलती तिनका जैसे, जीव शरीर बदलता है॥ ४०॥

देख किसी का वैभव, जैसे मनुज उसी में खो जाये।
वह जागृत या स्वप्न अवस्था में वैसा ही हो जाये॥
चिंतन में निमग्न होने पर तन का ध्यान न रह पाता।
पिछले तन को विस्मृत करके, मनुज नए तन में जाता॥ ४१॥

मन विकार का पुंज, मृत्यु के समय करे चिंतन जैसा।
माया रचित शरीरों में से, उसे शरीर मिले वैसा॥ ४२॥

ज्योतिमान छबि, स्थिर जल में निज प्रतिबिम्ब बनाती है।
किंतु हवा के झोंके से ही, वह प्रतिछबि मिट जाती है॥
भ्रम-वश प्राणी ने शरीर को इसी तरह अपना माना।
तन के आने-जाने को समझे अपना आना-जाना॥ ४३॥

जो चाहे कल्याण स्वयं का, सदा द्रोह से दूर रहे।
द्रोही तो परलोक-लोक में, भय से ही भरपूर रहे॥ ४४॥

दीन-हीन जो बहन तुम्हारी, अपनी पुत्री जैसी हो।
उचित नहीं उसका वध करना, तुम तो दीन-हितैषी हो॥ ४५॥

शुक बोले - वसुदेव नीतिगत बातें कह-कहकर हारे।
कहां नीतिगत बातें सुनते, कंस सरीखे हत्यारे॥ ४६॥

देख कंस को अडिग, हुए चिंतित वसुदेव बुद्धिशाली।
सोचा टालें समय मृत्यु का, अगर न मृत्यु टले टाली॥ ४७॥

मृत्यु टालने बुद्धि और बल का उपयोग करें ज्ञानी।
हो स्वीकार मृत्यु प्रतिकार बिना, यह नहीं बुद्धिमानी॥ ४८॥

वचन पुत्र लाने का दूंगा, जिससे इसकी जान बचे।
पुत्रों के होने तक संभव है, न यही शैतान बचे॥ ४९॥

संभव है यह दुष्ट, पुत्र के हाथों ही मारा जाये।
विधि-विधान क्या पता, मृत्यु कब टले, टली-वापस आये॥ ५०॥

नहीं ज्ञात वन-अग्नि किसे छोड़ेगी, किसे जलायेगी।
इसी तरह अज्ञात, मृत्यु कब छोड़े, कब ले जायगी॥ ५१॥

यह विचार वसुदेव, दुष्ट के मन को आकर्षित करने।
करने लगे प्रशंसा पापी की, उसको हर्षित करने॥ ५२॥

दुष्ट कंस के प्रति उनके मन में भारी उद्वेग रहा।
कर मुख-कमल प्रफुल्लित, हर्षित होकर हँसते हुए कहा॥ ५३॥

नहीं देवकी से भय सौम्य आपको, पुत्रों से भय है।
पुत्र आपको सौंपूंगा सब, मेरा प्रण है, निश्चय है॥ ५४॥

बोले श्रीशुकदेव - कंस इस उचित बात पर सहमत था।
सत्यनिष्ठ वसुदेव, सत्यवादी हैं, उसका यह मत था॥
दुष्ट कंस से बचकर, श्रीवसुदेव-देवकी घर आये।
प्राण देवकी के बचने पर, परिजन-पुरजन हर्षाये॥ ५५॥

तन में थे देवता देवकी के, अटूट श्रद्धा मन में।
आठ वर्ष में देवि-देवकी से कुल आठ पुत्र जन्में॥५६॥

कीर्तिमान को दिया कंस को, जो था उनका सुत पहला।
थे वसुदेव शांत ऊपर से, पर भीतर था मन दहला॥५७॥

साधु कष्ट सब सहे, नहीं विद्वान किसी से कुछ मांगे।
नीच करे सब नीच कर्म, पर धैर्यवान सब कुछ त्यागे॥५८॥

सत्यनिष्ठ वसुदेव शांत थे, दृढ़ता थी उनके मुख पर।
हे राजन! संतुष्ठ कंस अति-अन्यायी बोला-हँस कर॥५९॥

ले जायें सुकुमार पुत्र को, इससे मुझे न भय कोई।
पुत्र आठवां ही मारेगा, मुझे नहीं संशय कोई॥६०॥

यह सुनकर वसुदेव, पुत्र को लेकर अपने घर आये।
किंतु न था विश्वास, न जाने कब यह दुष्ट बदल जाये॥६१॥

देवलोक से तभी कंस से मिलने नारदजी आए।
भूमि-भार हरने सुरगण सक्रिय हैं, समाचार लाए॥६२॥

वृष्णि और यदुकुल में जन्मे नंद आदि हैं अवतारी।
करने उसका अंत देवताओं ने की है तैयारी॥६३॥

हैं देवियाँ ग्वालिनें सारीं, और देवता, ग्वाल सभी।
घर वसुदेव-देवकी के तो पैदा होंगे काल सभी॥६४॥

नारद गए, कंस ने सोचा, यादव हैं देवता सभी।
स्वयं विष्णु देवकी-गर्भ से ले सकते हैं जन्म कभी॥६५॥

बंदीगृह में डाले तब वसुदेव, देवकी बेचारी।
पुत्र हुए जो उन्हें कंस ने मार दिया बारी-बारी॥६६॥

राजन! धरती पर होते हैं, राजागण इतने लोभी।
जो सकते हैं मार, हितैषी, बंधु, पिता, माता को भी॥६७॥

पूर्वजन्म में कालनेमि था कंस, विष्णु ने था मारा।
यह कर याद कंस ने माना, वैरी है यदुकुल सारा॥६८॥

बंदी बना पिता को अपने, छीना खल ने सिंहासन।
अंधक, भोज और यदुकुल में करने लगा स्वयं शासन॥६९॥

दूसरा अध्याय

भगवान का गर्भ प्रवेश एवं देवताओं द्वारा गर्भ स्तुति

बोले श्रीशुकदेव - परीक्षित! कंस सबल था निर्दय था।
जरासंध, बाणासुर, भौमासुर का उसको प्रश्रय था॥१॥

बक, प्रलंब, चाणूर, द्विविद, अघ, मुष्टिक सेना नायक थे।
तृणावर्त, धेनुक, केसी, पूतना, अरिष्ट सहायक थे॥२॥

कुछ यादव, कुरु, कोसल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध भागे।
कुछ मिथिला, पांचाल जा बसे, झुके न दुष्टों के आगे॥३॥

खल की सेवा में थे कुछ यादव बे-मन से बेचारे।
पुत्र देवकी के छैः, खल ने अपने हाथों से मारे॥४॥

सप्तम क्रम पर शेष, विष्णु के अंश, गर्भ में जब आये।
देवि-देवकी के तन-मन में हर्ष-शोक दोनों छाये॥५॥

यदुकुल के निर्दय उत्पीड़न का जब समाचार आया।
बुला योगमाया को प्रभु ने पूर्ण कार्यक्रम बतलाया॥६॥

बंदी हैं वसुदेव, पत्नियां उनकी सभी तरसतीं हैं।
गो, ग्वालों से सज्जित ब्रज में देवि-रोहिणी बसतीं हैं॥ ७॥

हैं गर्भस्थ अनंत, देवकी का वह गर्भ निकालो तुम।
उसे सुरक्षित देवि-रोहिणी के शरीर में डालो तुम॥ ८॥

यथासमय मैं निज अंशों के साथ भूमि पर प्रकटूंगा।
तुम जन्मना यशोदा से, मैं जन्म देवकी से लूंगा॥ ९॥

देवि तुम्हारी धूप-दीप से श्रद्धा से पूजा होगी।
होगी इतनी शक्ति, मान्यता, पूर्ण मनोरथ कर दोगी॥ १०॥

श्रीमाया, वैष्णवी तुम्हारे, भू पर कई धाम होंगे।
दुर्गा, विजया, कुमुदा, कृष्णा, नारायणी नाम होंगे॥ ११॥

ईशानी, अम्बिका, माधवी, कन्या और भद्रकाली।
तुम शारदा, चंडिका, कहलाओगी, वर देने वाली॥ १२॥

गए अनंत गर्भ से खींचे, संकर्षण कहलायेंगे।
बलशाली, बलराम नाम से जग में जाने जायेंगे॥ १३॥

कह 'जो आज्ञा' कर परिक्रमा चली तुरंत योगमाया।
खींचा गर्भ देवकी का, रोहिणी उदर में पहुंचाया॥ १४॥

दशा देवकी की जिसने भी देखी उसको कष्ट हुआ।
थीं देवकी दुखी, वे समझीं, गर्भ सातवां नष्ट हुआ॥ १५॥

विश्वेश्वर भगवान अभयकारी को यही समय भाया।
कला सहित वासुदेव-देव के मन में खुद को प्रकटाया॥ १६॥

तेजस्वी, वसुदेव हुए प्रभु का ऐसा प्रकाश पाये।
बढ़ा तेज, बल, वाणी ऐसी, जो देखे वह झुक जाये॥ १७॥

ज्योतिर्मय वह अंश, कीर्ति गाता है जिसकी जग सारा।
दिया गया वह अंश, देवकी को वसुदेव-देव द्वारा॥
ईश्वरीय वह अंश देवकी ने स्वीकार किया ऐसे।
पूर्ण चंद्र को पूर्व दिशा, स्वीकार किया करती जैसे॥ १८॥

जगनिवास प्रभु, जिनके भीतर सारा जग निवास करता।
उनकी बनी निवास देवकी, दर्शनीय थी सुन्दरता॥
बंदीगृह में बंद देवकी, जैसे घट में अग्नि-शिखा।
ज्ञान, कृपण का रहता भीतर, बाहर नहीं प्रभाव दिखा॥ १९॥

प्रभु आये देवकी गर्भ में, तन में दिव्य कांति फैली।
मुख पर शुचि मुस्कान निरंतर, चारों ओर शांति फैली॥
तेज अपूर्व कंस ने देखा बहन देवकी के तन में।
हरि, हरने को प्राण आ गये हैं, उसने सोचा मन में॥ २०॥

लगा सोचने कंस, किया वध मैंने अगर देवकी का।
होगा शौर्य कलंकित, माथे पर कायरता का टीका॥
है स्त्री, है बहिन, गर्भ से है, यदि अभी गयी मारी।
आयु, लक्ष्मी, कीर्ति नष्ट हो जायेगी, मेरी सारी॥ २१॥

जो मनुष्य अत्यंत क्रूरता का व्यवहार करे ऐसा।
जीवित होते हुए, नहीं जीवित, वह तो है मृत जैसा॥
मरने के पश्चात लोग उसको अपशब्द कहा करते।
ऐसे अभिमानी-जन वर्षों तक नर्क में रहा करते॥ २२॥

बची देवकी क्योंकि कंस ने क्रूर कर्म से मुख मोड़ा।
करने लगा प्रतीक्षा, प्रभु से वैर-भाव से मन जोड़ा॥ २३॥

बैठे, उठे, पिये या खाये, चले, फिरे, सोये-जागे।
हुआ कृष्ण मय कंस, कंस को कृष्ण दिखें, पीछे-आगे॥ २४॥

ब्रह्मा, शिव, नारद एवं सुर-गण बंदीगृह में आये।
मनोकामना पूरक प्रभु के, इस प्रकार से गुण गाये॥ २५॥

सत्यव्रती हैं आप, आपको सभी सच्चिदानंद कहें।
सृष्टि, सृष्टि के पूर्व, प्रलय के बाद आप सर्वदा रहें॥
पावक, पवन, गगन, जल, धरती, सभी आपने उपजाये।
सत्यरूप, समदर्शी, सत्यशील की सभी शरण आये॥ २६॥

विश्व सनातन एक वृक्ष है, जो कि प्रकृति का है उपक्रम।
दो फल इसके सुख-दुख, इसकी तीन जड़ें हैं सत, रज, तम॥
धर्म, अर्थ इत्यादि चार रस, ज्ञानेन्द्रियां पांच इस में।
घटने-बढ़ने जैसी इसमें हैं, स्वभाव-गत छैः किस्में॥
रुधिर-मांस इत्यादि सात से विश्ववृक्ष की छाल बनी।
महाभूत, मन, बुद्धि, अहं से तरु की आठों डाल बनी॥
मुख, नासिका आदि नौ द्वारे, विश्व वृक्ष के कोटर हैं।
प्राण आदि दस पत्ते, पक्षी, जीव और परमेश्वर हैं॥ २७॥

उद्भव हैं प्रभु आप, आपही हैं, इसके आश्रय-दाता।
विश्ववृक्ष यह, प्रलय हुआ तो, प्रभु आप में समा जाता॥
पृथक मानता जो देवों को, उसकी बुद्धि गयी मारी।
ज्ञानी को दिखती है सब में, केवल प्रभु की छबि प्यारी॥ २८॥

आप विश्व कल्याण हेतु प्रभु खुद ही विविध रूप धरते।
सत्पुरुषों को सुख देते हैं, दुष्टों को दण्डित करते॥ २९॥

बिरले हैं जो कमलनयन के इस स्वरूप का ध्यान करें।
सचराचर के आश्रय-दाता प्रभु का जो गुणगान करें॥
चरण-कमल का पोत पार करवाता भवसागर ऐसे।
बछड़े के खुर के गड्ढे में भरा हुआ जल हो जैसे॥ ३०॥

भक्त आपके, कृपा आपकी पा, भवसागर तरते हैं।
जगत हितैषी लोग अन्य जन की भी चिंता करते हैं॥
प्रभु के चरण-कमल की नौका भवसागर में धरते हैं।
प्रभु की कृपा, अनुग्रह पाकर सारे पार उतरते हैं॥ ३१॥

बुद्धिहीन हैं, कमलनयन की जो जन शरण नहीं आते।
मुक्त स्वयं को मानें, लेकिन वे तो बद्ध कहे जाते॥
कष्ट उठा, साधना-तपस्या कर यदि ऊँचा पद पायें।
बिना आपकी कृपा अनुग्रह, वे जन नीचे गिर जायें॥ ३२॥

लेकिन प्रभु के चरणकमल में जिस जन का तन-मन होता।
आयें कितनी भी बाधाएं, उनका नहीं पतन होता॥
विघ्नों की सेना के सरदारों के सिर पर पग धरते।
वे होते निर्विघ्न निरंतर, जिन पर आप कृपा करते॥ ३३॥

मानव के कल्याण हेतु प्रभु सात्विक शुद्ध रूप धरते।
सगुण रूप का आश्रय लेकर आराधना सभी करते॥ ३४॥

सगुण रूप अज्ञान मिटाये, सबको सात्विक ज्ञान मिले।
तीनों गुण आपसे प्रकाशित, उनसे बस अनुमान मिले॥ ३५॥

बता न सकते वेद, वस्तुतः, कैसा है स्वरूप प्रभु का।
वे हैं साक्षी मात्र, उन्होंने देखा नहीं रूप प्रभु का॥
इसीलिए जो भक्त योग में समाधिस्थ हो जाते हैं।
हो ध्यानस्थ योग के द्वारा प्रभु का दर्शन पाते हैं॥ ३६॥

जो जन प्रभु के मंगलमय नामों का वर्णन-श्रवण करें।
ध्यान धरें प्रभु के रूपों का, खुद को प्रभु की शरण करें॥
प्रभु के चरण-कमल की सेवा में जो ध्यान लगाते हैं।
जन्म-मृत्यु के सृष्टि-चक्र से मुक्ति वही जन पाते हैं॥ ३७॥

हे हरि, हरने दुख भक्तों का, यह लीला अवतार हुआ।
चरण आपका कहलाती जो, दूर भूमि का भार हुआ॥
प्रभु के चरण-चिन्ह अंकित होने से होगी धन्य धरा।
पा प्रभु का सान्निध्य, धरा से देवलोक तक मोद भरा॥ ३८॥

आप अजन्मा, यही जन्म के लिए तर्कसंगत कारण।
बस केवल लीला-विनोद के लिए देह करते धारण॥
आप द्वैत से रहित, असीम, अनादि, अनंत, अधिष्ठाता।
प्रभव, प्रलय, पालन का आरोपण अज्ञान कहा जाता॥ ३९॥

कच्छप, मत्स्य, वराह, हंस, हयग्रीव, नृसिंह अवतार हुए।
भूमि-भार कम किया, धरा पर जब-जब दानव भार हुए॥
वामन, राम, परशुधर का सुन नाम, आज भी दुष्ट डरें।
चरण वंदना करते हैं प्रभु, शीघ्र धरा का भार हरें॥ ४०॥

कहा देवकी से देवों ने, भाग्यवान हो, हे माता।
हैं गर्भ में तुम्हारे जग के रक्षक, जगत-अधिष्ठाता॥
सबकी रक्षा करने वाला, तुमको पुत्र प्राप्त होगा।
डरे नहीं हे देवि, कंस का जीवन अब समाप्त होगा॥ ४१॥

बोले श्रीशुक - राजन्! प्रभु के कितने रूप, कौन जानें !
अपनी समझ और श्रद्धा अनुसार सभी उनको मानें॥
सुरगण ने प्रभु का स्वरूप, निज मति अनुरूप बखान किया।
शिव-ब्रह्मा को आगे कर, निज लोकों को प्रस्थान किया॥ ४२॥

तीसरा अध्याय

भगवान श्रीकृष्ण का प्राकट्य

बोले श्रीशुकदेव - परीक्षित! सुन्दर, सुखद समय आया।
नभ के ग्रह, नक्षत्र और तारों में सौम्य भाव छाया॥ १॥

स्वच्छ दिशाएं हुईं, हुआ निर्मल नभ, दमक उठे तारे।
भूमि रत्नगर्भा, मंगलमय ब्रज के ग्राम-नगर सारे॥ २॥

नदियां निर्मल हुईं, रात्रि में जलाशयों में कमल खिले।
भ्रमर किए गुनगुन, खग चहके, वृक्षों को नव-पत्र मिले॥ ३॥

सुरभित मंद पवन ने वातावरण सुगंधित कर डाला।
अग्निहोत्र के यज्ञकुण्ड में फिर प्रज्वलित हुई ज्वाला॥ ४॥

असुरों से पीड़ित संतों का हृदय अचानक हर्षाया।
दुन्दुभियां बज उठीं स्वर्ग में, समय जन्म का जब आया॥ ५॥

सिद्ध और चारण गुण गाकर करने लगे प्रार्थनाएं।
नाच उठीं अप्सरा सभी, किन्नर, गंधर्व गीत गाएं॥ ६॥

मंद-मंद गर्जन कर जलधर, जलनिधि के ऊपर छाये।
पुष्प, देवताओं ने, संतों ने प्रमुदित हो बरसाये॥ ७॥

सोलह कला सहित शशि जैसे प्राची का आकाश छुए।
अंधकार के बीच, देवकी के समक्ष प्रभु प्रकट हुए॥ ८॥

कमलनयन प्रभु प्रकटे, लेकर अद्‌भुत रूप असाधारण।
शंख-चक्र दो कर में, दो कर में कर पुष्प-गदा धारण॥
छाती पर श्रीवत्स, गले में कौस्तुभ मणि की दिव्य छटा।
पीताम्बर कटि में, शरीर की आभा जैसे मेघ-घटा॥ ९॥

कानों में वैदूर्य जड़े कुंडल-किरीट बांके ऐसे।
घुंघराले बालों के पीछे सूर्य किरण झांके जैसे॥
कमर करधनी, कर में कंगन, अंग-अंग सौंदर्य सने।
देख रहे वसुदेव चकित हो नजर हटाते नहीं बने॥१०॥

प्रभु को पुत्र रूप में पाकर कुछ वसुदेव न कह पायें।
मन में सोच लिया द्विज-गण को देंगे दस सहस्त्र गायें॥११॥

प्रसूतिका गृह में फैली थी, प्रभु की अंग-कांति न्यारी।
स्थिर हो वसुदेव, हुए निर्भय, पा पुत्र अभयकारी॥
फिर होकर करबद्ध झुकाया, प्रभु के चरणों में माथा।
स्तुति करते हुए लगे फिर गाने प्रभु की गुण-गाथा॥१२॥

बोले श्रीवसुदेव - आप हैं पुरुषोत्तम, अंतर्यामी।
हैं आनंद स्वरूप, प्रकृति से परे, बुद्धियों के स्वामी॥१३॥

आप प्रकृति से अपनी त्रिगुणात्मक यह सृष्टि बनाते हैं।
हैं इसके भीतर या बाहर नहीं समझ में आते हैं॥१४॥

पृथक-पृथक तत्वों के मिलने से अटूट आधार बना।
तत्व मिले इन्द्रियादि विकारों से, समग्र संसार बना॥१५॥

ऐसा आता समझ सृष्टि में, मिले हुए हैं तत्व सभी।
वे अनुप्रणित करते, लेकिन होते नहीं प्रविष्ठ कभी॥१६॥

इन्द्रिय ग्रहण करे गुण, किंतु ज्ञान से बस अनुमान मिलें।
गुण मिल जायें, गुण में स्थित, मगर नहीं भगवान मिलें॥
प्रभु दिखते हैं आप गुणों में, आप गुणों के स्वामी हैं।
हैं आवरण रहित, भीतर, बाहर हैं, अंतर्यामी हैं॥१७॥

दृश्य गुणों को पृथक मानने में कुछ नहीं बुद्धिमानी।
ये हैं वाग्विलास, इन्हें तो मिथ्या कहते हैं ज्ञानी॥१८॥

प्रभु! विकार, गुण, क्रिया आदि को आप नहीं करते धारण।
रचना, पालन और प्रलय का, हैं प्रभु आप आदि कारण॥
तीनों गुण आप में समाहित हैं, ऐसा माना जाता।
गुण जन्मते आपसे और आप ही हैं आश्रयदाता॥१९॥

जग संचालन हेतु, आप माया से तीन रूप धरते।
शुक्ल वर्ण, सत-तत्व ग्रहण कर, हरि बन जग पालन करते॥
रक्तवर्ण, रज तत्व ग्रहण कर, ब्रह्मा बन निर्माण करें।
कृष्णवर्ण तम तत्व ग्रहण कर, शिव बन सबके प्राण हरें॥२०॥

ग्रहण किया अवतार आपने, मेरे घर, जग के स्वामी।
करने जग की रक्षा प्रकटे, शक्तिधाम अंतर्यामी॥
बड़ी-बड़ी सेनाएँ रख, राजा बन अत्याचार करें।
कोटि-कोटि ऐसे पापी असुरों का प्रभु! संहार करें॥२१॥

हे देवों के देव! कंस अति पापी है, हत्यारा हैं।
सिर्फ आपकी आशंका से, छैः पुत्रों का मारा है।
जैसे ही आपके जन्म का समाचार वह पायेगा।
लेकर शस्त्र हाथ में वह तत्काल दौड़कर आयेगा॥२२॥

बोले श्रीशुक - राजन! सुत के लक्षण देखे माता ने।
भय तज कर, प्रसन्न हो, प्रभु का स्तुति गीत लगी गाने॥२३॥

कहा देवकी ने - प्रभु जिसको वेदों ने अव्यक्त कहा।
ज्योति स्वरूप ब्रह्म हैं, जिसमें कोई गुण, न विकार रहा॥
आप विशेषण रहित, अनिर्वचनीय, सृष्टि के शासक हैं।
आप विष्णु है स्वयं, ज्ञान दीपक हैं, आप प्रकाशक हैं॥२४॥

केवल आप शेष रहते, इसलिए शेष भी कहलाते।
प्रलय काल में पंचभूत, सब लोक शून्य में खो जाते॥ २५॥

काल विभाजित खण्डों में, निर्बाध निरंतर बहता है।
उसकी सक्रिय चेष्टाओं से, जग भी सक्रिय रहता है॥
यह सब लीला देखी प्रभु की, देखी प्रभु की प्रभुताई।
आश्रय धाम, मुझे आश्रय दो, मैं आपकी शरण आई॥ २६॥

प्रभु यह जीव मृत्यु से डरकर, लोकों में भागता रहा।
मिला न कोई आश्रय इसको, भयाक्रांत जागता रहा॥
पा प्रभु की शरणागति, जीवात्मा चैन से सो पाया।
मृत्यु हुई भयभीत जीव से, ऐसी है प्रभु की माया॥ २७॥

हम सब हैं भयभीत कंस से, आप भक्त भयहारी हैं।
रक्षा कीजे हम सबकी प्रभु, हम सब शरण तुम्हारी हैं॥
ध्यान योग्य यह रूप आपका, हे प्रभु चार भुजाधारी।
उचित नहीं इसका दर्शन पायें, अभिमानी, संसारी॥ २८॥

कंस न जाने आप पुत्र हैं मेरे, मेरा यह भय है।
हे मधुसूदन, मैं अधीर हूँ, कंस बड़ा ही निर्दय है॥ २९॥

शंख-चक्रधारी स्वरूप ने, सब पर सम्मोहन डाला।
छुपा लीजिये, रूप अलौकिक, हे प्रभु चार भुजा वाला॥ ३०॥

महाप्रलय के समय विश्व को आप करें धारण ऐसे।
मानव की काया धारण करती है रोम छिद्र जैसे॥
ऐसे प्रभु गर्भस्थ रहे हैं, यह कैसा संयोग बना।
यह लीला है, या माया है या है कोई बिडम्बना॥ ३१॥

प्रभु बोले - स्वायम्भुव मन्वन्तर में थे दोनों ही जन्मे।
प्रश्नि और सुतपा होते थे नाम, स्वच्छता थी मन में॥ ३२॥

जब ब्रह्माजी ने दोनों को, वंशवृद्धि की आज्ञा दी।
करके इन्द्रिय दमन आप दोनों ने कठिन तपस्या की॥ ३३॥

वर्षा, आंधी, शीत, उष्णता, समय-चक्र का कष्ट सहा।
प्राणायाम क्रिया अपनाई, मन में तनिक न मैल रहा॥ ३४॥

हवा या कि बस सूखे पत्तों पर निर्भर, साधना किए।
पाने को आभीष्ट वस्तु, मेरी ही आराधना किए॥ ३५॥

मुझ में चित्त लगाया, तन-मन मेरे ही आधीन रहे।
देवों के बारह हजार वर्षों तक तप में लीन रहे॥ ३६॥

तुम दोनों का कठिन त्याग, तप, श्रद्धा, प्रेम मुझे भाया।
करने पूर्ण तुम्हारी इच्छा, इसी रूप में, मैं आया॥ ३७॥

मैंने पूछा - कहो तुम्हें, कैसा वरदान चाहिए है।
तुमने कहा - कि हमें पुत्र आपके समान चाहिए है॥ ३८॥

तब तुम दोनों निःसंतान थे, विषय-भोग भी त्यागा था।
मेरी माया से मोहित हो तुमने मोक्ष न मांगा था॥ ३९॥

मेरे जैसा पुत्र प्राप्त करने का जब वर प्राप्त हुआ।
दोनों हुए गृहस्थ तभी, तप का संकल्प समाप्त हुआ॥ ४०॥

मैंने अपने जैसा कोई नहीं विश्व में जब पाया।
पृश्निगर्भ था नाम, तुम्हारा सुत बनकर मैं खुद आया॥ ४१॥

नाम अदिति-कश्यप थे, तुमने जन्म दूसरा जब पाया।
मैं उपेन्द्र था पुत्र तुम्हारा वामन, वामन कहलाया॥ ४२॥

पुत्र तुम्हारा बना तीसरी बार सत्य करने वाणी।
वैसा ही स्वरूप लेकर में प्रकट हुआ हूँ कल्याणी॥ ४३॥

यदि मानव शरीर में लेता जन्म, समझ कैसे आता।
वैसा ही हूं, जैसा तुमने वर में मांगा था माता॥ ४४॥

पुत्र भाव तो रखना, लेकिन ब्रह्म भाव भी बना रहे।
परम-धाम पाओगे दोनों, यदि सम्यक साधना रहे॥ ४५॥

बोले श्रीशुक - राजन! प्रभु की माया अमित-असाधारण।
साधारण शिशुरूप, देखते ही देखते किया धारण॥ ४६॥

पा वसुदेव प्रेरणा प्रभु की, मन में सोच विचार किए।
छोड़ सूतिकागृह बाहर जाने, खुद को तैयार किए॥
प्रभु को लेकर बाहर जाने का जब समय निकट आया।
नंद-यशोदा के घर ब्रज में प्रकटी तभी योगमाया॥ ४७॥

बंदीगृह के द्वारपाल सब, ब्रज के पुरवासी सारे।
हुए अचेत, इस तरह सोये, गहरी निद्रा के मारे॥
बंदीगृह के दरवाजे थे मुश्किल से खुलने वाले।
बड़े किवाड़, बड़ी जंजीरें, जिनमें बड़े-बड़े ताले॥ ४८॥

पर जैसे ले निकले प्रभु को, बंधन अपने आप कटे।
सूर्योदय के साथ जिस तरह अंधकार तत्काल हटे॥
बादल हल्की गर्जन करने जब जल की फुहार लाये।
शेष नाग चल दिए साथ में, प्रभु पर फन को फैलाये॥ ४९॥

यमुना में थी बाढ़ भयंकर, भारी वर्षा के कारण।
फेन युक्त जल में भंवरें थीं, तेज प्रवाह असाधारण॥
पा सागर से मार्ग सियापति ने ज्यों सागर पार किया।
यमुना ने गहराई कम करके वैसे ही मार्ग दिया॥ ५०॥

पहुंचे जब वसुदेव, नंद के घर सबको सोते पाया।
सुप्त यशोदा की शैया पर जाग्रत दिखी योगमाया॥
प्रभु को सुला दिया शैया पर, गोदी में लेकर माया।
बंदीगृह वसुदेव आ गए, कोई देख नहीं पाया॥ ५१॥

निकट देवकी के कन्या को रख वसुदेव तनिक सहमें।
फिर बेड़ियां पहिनकर, खुद ही बंद हुए बंदीगृह में॥ ५२॥

थी अति-श्रांत यशोदा जी, माया की निद्रा थी छाई।
देख नहीं पाईं वे, पुत्र हुआ है या पुत्री आई॥ ५३॥

चौथा अध्याय

योगमाया की भविष्यवाणी

बाले श्रीशुक - राजन! बंद द्वार थे सब पीछे-आगे।
सोये थे रक्षक सब, शिशु की ध्वनि को सुना तभी जागे॥ १॥

शिशु जन्मा देवकी गर्भ से, जा रक्षक ने बतलाया।
थी कंस को प्रतीक्षा इसकी, सुनकर थोड़ा घबराया॥ २॥

फिर उठ खड़ा हुआ, तेजी से चला, सूतिकागृह जाने।
काल हुआ है उसका पैदा, वह तो था बैठा माने॥
बिखरे हुए केस थे, उसने खुद को अति-विह्वल पाया।
गिरते-गिरते बचा, बहुत मुश्किल से कंस सम्हल पाया॥ ३॥

देख कंस को कहा देवकी ने - हे भाई हितकारी।
वध न करो यह वधु जैसी है, है अवध्य, यह है नारी॥ ४॥

अग्नि समान तेज वाले मेरे पुत्रों का मारा है।
यह कन्या मुझको दे दो, यह मेरा एक सहारा है॥५॥

पुत्रहीन हतभागी को उसकी अंतिम संतान मिले।
तुम समर्थ, मैं दीन बहन, पुत्री को जीवन दान मिले॥६॥

बोले श्रीशुकदेव - परीक्षित! कंस क्रूर था अन्यायी।
कर याचना देवकी रोई, उसको दया नहीं आयी॥
देवि-देवकी ने पुत्री को छुपा रखा था आंचल में।
किंतु कंस ने उसे झपट कर छीन लिया दो ही पल में॥७॥

बहन-सुता के पांव पकड़कर उसे शिला पर दे मारा।
था सौहार्द-विहीन, स्वार्थ ने बना दिया था हत्यारा॥८॥

छूट हाथ से गई गगन की ओर, कृष्ण की थी अनुजा।
दिखी गगन में बनकर शस्त्रधारिणी दुर्गा-अष्टभुजा॥९॥

वस्त्राभूषण दिव्य, दिव्य मालाएं, शंख, चक्रधारी।
हाथों में तलवार, धनुष-शर, गदा, त्रिशूल, ढाल भारी॥१०॥

चारण, सिद्ध, अप्सरा, किन्नर, नाग और गंधर्व सभी।
करने लगे देवि का स्तुति-गान, देवि ने कहा तभी॥११॥

व्यर्थ न कर वध शिशुओं का खल, मुझे मार कुछ मिला नहीं।
जन्म ले चुका तुझे मारने वाला वैरी और कहीं॥१२॥

कर कंस को सचेत हो गयी अंतर्धान योगमाया।
पूजित है सर्वत्र, हर जगह लेकिन, पृथक नाम पाया॥१३॥

सुना कंस ने देवी की वाणी को भारी विस्मय से।
मुक्त किया वसुदेव-देवकी को, फिर कहा सदाशय से॥१४॥

बहन बहुत पापी हूँ, पुत्र तुम्हारे थे प्यारे-प्यारे।
मुझे खेद है, मैंने उनको मार दिया भय के मारे॥१५॥

स्वजनों को भी त्याग दिया, मुझ खल को दया नहीं आती।
नर्क मिलेगा मरने पर, मृतवत हूँ, दुष्ट, ब्रह्मघाती॥१६॥

केवल मानव नहीं, देवता भी असत्य बोला करते।
पहले ज्ञान अगर होता तो, तेरे पुत्र नहीं मरते॥१७॥

महाभाग मत शोक करें, सब कुछ प्रारब्ध कराता है।
पुत्रों को फल मिला कर्म का, सदा कौन रह पाता है॥१८॥

टूटे बरतन की मिट्टी, जैसे मिट्टी में मिल जाती।
बनते-मिटते हैं शरीर, आत्मा अनश्वर कहलाती॥१९॥

आत्म-तत्व को जो न जानते, वे तन को सर्वस्व कहें।
जन्म-मृत्यु के सुख-दुख को वे अज्ञानी जन सदा सहें॥२०॥

शोक न कर उनका जो मेरे हाथों गए पुत्र मारे।
बहन! कर्म का फल तो भोगा करते हैं, मनुष्य सारे॥२१॥

मैंने मारा और मरा वह, जब तक यह भावना रहे।
वधिक-वध्य का यही भाव, सुख-दुख का कारण बना रहे॥२२॥

मैंने की दुष्टता, आप हैं साधु, दीनजन, अनुरागी।
रोते हुए कंस ने चरणों में धर शीश क्षमा मांगी॥२३॥

था विश्वास कंस को सत्य बताकर गई योगमाया।
मुक्त किया वसुदेव-देवकी को, अपनापन दिखलाया॥२४॥

भाई के अश्रु में बह गया, क्रोध बहन का रहा-सहा।
क्षमा किया वसुदेव-देव ने उससे हंसते हुए कहा॥२५॥

आप ठीक कहते हैं यदि यह जीव देह को 'मैं' माने।
अपने और पराये-पन के भाव उठेंगे अनजाने॥ २६॥

शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मद, मोह दृष्टि पर छाते हैं।
एक भाव से भाव दूसरे का, प्रभु नाश कराते हैं॥ २७॥

बोले श्रीशुकदेव - परीक्षित! खल का था अवतार नया।
बातचीत से था प्रसन्न अति, अनुमति लेकर चला गया॥ २८॥

बीती रात शांति से, दिन में, आये मंत्री-गण सारे।
क्या-क्या कहा योगमाया ने, सुना सभी ने मन मारे॥ २९॥

उसके मंत्री सभी दैत्य थे, देवताओं से वैर रहा।
नीति निपुण थे नहीं, कंस को करने को आश्वस्त कहा॥ ३०॥

ऐसा है तो भोजराज, हम कल शुभ समाचार देंगे।
दस दिन वाले, नगर-ग्राम के बच्चे आज मार देंगे॥ ३१॥

समरभीरु देवता करेंगे क्या, अब तक क्या कर पाये।
सुन आपके धनुष की ध्वनि को, देव भागते घबराये॥ ३२॥

युद्धभूमि में आप जिस समय बाणों को बरसाते हैं।
प्राण बचाने, समरांगण को छोड़ देव छुप जाते हैं॥ ३३॥

शस्त्र भूमि पर डाल, देव कुछ प्रकट दीनता करते हैं।
त्याग शिखा-कटिबंध, शरण आते कुछ, इतना डरते हैं॥ ३४॥

अस्त्रहीन, रथहीन, भीत, रणत्यागी, रण से मुंह मोड़े।
किया नहीं वध उनका ऐसे सारे शत्रु गए छोड़े॥ ३५॥

युद्ध क्षेत्र से बाहर ही, देवता वीरता दिखलाते।
डींग हांकने में माहिर, बातों के वीर कहे जाते॥

एकाकी हरि रहें, रहें शिव वन में, ब्रह्मा तप करते।
अल्पवीर्य हैं इन्द्र इसलिए, नहीं किसी से हम डरते॥ ३६॥

सुर हैं शत्रु, शत्रु की अनदेखी की कभी न भूल करें।
विश्वस्तों को कहें ताकि वे उनका नाश समूल करें॥ ३७॥

अगर उपेक्षा हुई रोग की, तन में जड़ें जमाता है।
यदि इन्द्रिय की, की अनदेखी, दमन कठिन हो जाता है॥
अगर शत्रु की, की अनदेखी, ताकतवर हो जायेगा।
उसे पराजित कर पाना फिर अति-दुष्कर हो जायेगा॥ ३८॥

धर्म सनातन जहां, वहीं देवों के मूल विष्णु रहते।
गो, ब्राह्मण, तप, यज्ञ, वेद को मूल सनातन की कहते॥ ३९॥

राजन! द्विज, वैदिक, तपधारी, याज्ञिक संहारे जायें।
घी देकर हविष्य देतीं जो, मारी जायें वे गायें॥ ४०॥

सत्य, क्षमा, तप, श्रद्धा, करुणा, विप्र, वेद एवं गायें।
इन्द्रिय-दमन आत्मसंयम ये हरि के अंग कहे जायें॥ ४१॥

है प्रधान वैरी नारायण, असुरों का प्रतिगामी है।
छुपा कन्दरा में रहता है, देवताओं का स्वामी है॥
शंकर, ब्रह्मा सभी सुरों का मूल विष्णु ही कहलाये।
उसे मारने का उपाय है, ऋषियों को मारा जाये॥ ४२॥

श्रीशुक बोले - दुर्मति खल को खल सचिवों ने समझाया।
काल-पाश में बंधे कंस को, ब्राह्मण-वध का मत भाया॥ ४३॥

इच्छाधारी हिंसक असुरों को देकर निर्देश नया।
संतों का वध करें सुनिश्चित, कह खल अपने भवन गया॥ ४४॥

रजोगुणी असुरों के जब विवेक पर तमस वृत्ति छायी।
जितना द्वेष किया संतों से, उतनी निकट मृत्यु आयी॥ ४५॥

राजन! सत्पुरुषों को जिनके दुष्कर्मों से कष्ट हुआ।
समझो उसका धर्म, आयु, श्री, यश, परलोक विनष्ट हुआ॥ ४६॥

पाँचवा अध्याय

गोकुल में श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

बोले श्रीशुक - नंदराय-सा कोई नहीं उदार हुआ।
पुत्र जन्म का समाचार सुन कर आनंद अपार हुआ॥ १॥

करके स्नान नंद ने वेदविज्ञ विप्रों को बुलवाया।
सुर-पितरों को पूजा, जातकर्म कर, स्वस्ति गान गाया॥ २॥

दीं विप्रों को वस्त्राभूषण से सज्जित लाखों गायें।
सात पहाड़ दिए तिल के, जो रत्नों से ढांके जायें॥ ३॥

तन की शुद्धि शौच से होती, काल शुद्ध करता जल को।
हो धन शुद्ध दान से, तुष्टि दूर करती मन के मल को॥
आत्म ज्ञान से शुद्ध आत्मा, तप इन्द्रिय का मैल हरे।
संस्कार से गर्भ शुद्धि हो, यज्ञ विश्व को शुद्ध करे॥ ४॥

विप्र, सूत, मागध, बंदीजन, सब आशीष प्रदान करें।
बजीं भेरियां, दुन्दुभियां भी, गायक मंगल-गान करें॥ ५॥

स्वच्छ, सुगंधित भीतर-बाहर हुए गांव के घर सारे।
रंग बिरेंगे ध्वज, मालाएं सजीं, सजे वंदनवारे॥ ६॥

हल्दी, तेल लगा शृंगारित किए बैल, बछड़े, गायें।
डालीं स्वर्ण सांकलें, सुंदर वस्त्र, फूल की मालायें॥ ७॥

राजन! ग्वाल पहनकर सुन्दर वस्त्राभूषण मन-भाये।
लेकर सभी भेंट की सामग्रियां, नंद के घर आये॥ ८॥

हुईं गोपियां आनंदित, सुन, जाया पुत्र यशोदा ने।
वस्त्राभूषण पहन, लगा अंजन तैयार हुई जाने॥ ९॥

गोपिकाओं के कमल सरीखे आनन की शोभा न्यारी।
माथे पर कुंमकुम की सज्जा, जैसे केसर की क्यारी॥
आगे उन्नत कुच थे, वैसे ही उन्नत नितंब पीछे।
चली भेंट लेकर तेजी से, अंग हुए ऊपर नीचे॥ १०॥

स्वर्णहार ग्रीवा में शोभित, मणिकुंडल से कान सजे।
हाथों में कंगन मणिवाले, अंग-अंग परिधान सजे॥
हिलते हार, पयोधर, कुंडल, गोपिकाएं जब राह चलीं।
झरने लगे पुष्प वेणी के, हुई सुवासित गलीं-गलीं॥ ११॥

'शिशु चिरायु हो' देने यह आशीष नंद घर सब आईं।
हल्दी-तेल युक्त जल छिड़का, सब मिलकर मंगल गाईं॥ १२॥

सर्वेश्वर के जन्मोत्सव पर धूम मची थी घर-घर में।
विविध वाद्य बज उठे स्वयं ही, मधुर किंतु-मध्यम स्वर में॥ १३॥

कभी फेंकते थे जल या धृत, दूध, दही फेंकते कभी।
मलने लगे परस्पर मक्खन, आनंदित थे गोप सभी॥ १४॥

नंदराय से सभी गोप-गण, गो, वस्त्राभूषण पाये।
वे भी मुंह मांगा पाये जो, वाद्य बजा, नाचे, गाये॥ १५॥

मागध, सूत और बंदीजन को कुछ नहीं अभाव रहा।
हरि प्रसन्न हों, शिशु का शुभ हो यही नंद का भाव रहा॥ १६॥

दिव्य वस्त्र, आभूषण-धारी, थी रोहिणी व्यस्त भारी।
अतिथि स्त्रियों के स्वागत की थी उन पर जिम्मेदारी॥ १७॥

जिस दिन हरि आये, उस दिन समृद्धिवान हो गई धरा।
लक्ष्मी का क्रीड़ा स्थल हो गया क्षेत्र धन-धान्य भरा॥ १८॥

कुछ दिन बाद, सुरक्षा गोकुल की कुछ गोपों को देकर।
मथुरा आये नंद, कंस के सालाना कर को लेकर॥ १९॥

जब वसुदेव, नंद के आने का शुभ समाचार पाये।
कर देकर जिस जगह रुके थे नंद, वहीं मिलने आये॥ २०॥

देख उन्हें झट उठे नंदजी, जीवन ज्यों पाया मृत ने।
गले मिले वसुदेव-नंद रो दिए भाव विह्वल इतने॥ २१॥

मिला खूब सत्कार किंतु थी पुत्रों की चिंता भारी।
तब वसुदेव, नंद से लगे पूछने कुशलक्षेम सारी॥ २२॥

बोले श्रीवसुदेव नंद से, तुम हो भाग्यवान भाई।
ढलती वय में, जब निराश थे, तब तुमने संतति पाई॥ २३॥

इस संसार चक्र के चलते, दुर्लभ था मिलना अपना।
ऐसा लगता पुनर्जन्म है या फिर देख रहे सपना॥ २४॥

सरिता के बहाव में जैसे तिनके पृथक-पृथक बहते।
प्रेमी जन प्रारब्ध-कर्म के कारण साथ नहीं रहते॥ २५॥

जहां आजकल तुम रहते हो, लेकर स्वजन और गायें।
सबके लिए वहां होंगी ही, भोजन, जल की सुविधायें॥ २६॥

मेरा पुत्र तुम्हारे घर में आनंदित रहता होगा।
तुम करते हो लालन-पालन, तुम्हें पिता कहता होगा॥ २७॥

अर्थ, धर्म कामादि फलों का सारे स्वजन लाभ पायें।
अर्थहीन वह अर्थ, अर्थ से स्वजन अछूते रह जायें॥ २८॥

बोले नंद, देवकी कितनी लड़ी, भाग्य से हार गई।
मारे पुत्र कंस ने, कन्या थी जो स्वर्ग सिधार गई॥ २९॥

सुख-दुख सभी भाग्य पर निर्भर, उसके ही ताने-बाने।
मोहित होते नहीं लोग जो, जीवन का रहस्य जाने॥ ३०॥

बोले श्रीवसुदेव - हो चुका है मिलना, कर का चुकना।
गोकुल में हो रहे उपद्रव, उचित नहीं ज्यादा रुकना॥ ३१॥

बोले श्रीशुक - राजन! जब वसुदेव, नंद को समझाये।
गोपों सहित बैठ छकड़ों पर नंदराय गोकुल आये॥ ३१॥

छठवां अध्याय

पूतना-उद्धार

बोले श्रीशुक - राजन! पथ में नंद विचार किए मन में।
कभी असत्य नहीं बोले वसुदेव समूचे जीवन में॥
गोकुल शांत क्षेत्र है, बाहर के ही होंगे उत्पाती।
हम तो हैं हरि शरण, कृपा हरि की ही सदा काम आती॥ १॥

क्रूर राक्षसी, नाम पूतना घूम-घूम बच्चे मारे।
थे उसके अधिकार क्षेत्र में, ब्रज के ग्राम-नगर सारे॥ २॥

भजन-कीर्तन भयहारी प्रभु का जो लोग नहीं करते।
वे ही ऐसी राक्षसियों के आने-जाने से डरते॥ ३॥

चलती थी आकाश-मार्ग से, वेश बदलती मन भाया।
एक दिवस सुन्दर युवती बन, गोकुल में प्रवेश पाया॥४॥

सुन्दर रूप बनाया, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र किए धारण।
कर्ण फूल के हिलने से होती थी चमक असाधारण॥
पतली कमर, नितम्ब और कुच उन्नत जैसे कलश भरे।
वेणी में बेले की कलियां, लट गालों से खेल करे॥५॥

रूपवती रमणी ने मोहा सब ब्रजवासी पुरजन को।
चित्त चुराती थी चितवन, मुस्कान मोहती थी मन को॥
कमल, कामिनी के कर में था, देख गोपियां हर्षायीं।
करने लगी कल्पना पति से मिलने स्वयं रमा आयीं॥६॥

बच्चों के ग्रह जैसी दुष्टा, रही घूमती ब्रज भर में।
अनायास ही वह प्रवेश पा गई नंदजी के घर में॥
दुष्टों के हैं काल किंतु प्रभु बालक रूप बनाये थे।
जैसे आग राख में छुपती, अपना तेज छिपाये थे॥७॥

हैं आत्मा चराचर की, प्रभु बने ही रहे अनजाने।
बंद कर लिए नेत्र ताकि, दुष्टा उनको सोता माने॥
रस्सी समझ पकड़ ले जैसे, कोई जन विषधर काला।
काल रूप कृष्ण को समझ शिशु, उसने गोदी में डाला॥८॥

छिपी हुई मखमली म्यान में जैसे तीक्ष्ण कटारी हो।
सरल और शालीन लगे जैसे ब्रज की ही नारी हो।
खड़ी-खड़ी देखती रहीं हतप्रभ हो घर की महिलायें।
जो देखे उसको, उसका सौंदर्य देखती रह जायें॥९॥

तभी कृष्ण के मुख में दुष्टा ने अपना स्तन डाला।
लगा हुआ था उसमें विष, जो कभी न था पचने वाला॥
तभी क्रोध के साथ कृष्ण ने उसका स्तन दबा दिया।
साथ दूध के, उसके प्राणों को भी पीना शुरू किया॥१०॥

घुटने लगे पूतना के मर्मस्थल प्राणाश्रय वाले।
'छोड़ मुझे' चिल्लाई, रोई, पड़े जान के जब लाले॥
प्राण पी रहे थे प्रभु, उसके, लगे हुए थे सीने से।
पटक रही थी हाथ पैर, वह लथ-पथ हुई पसीने से॥११॥

थी चिल्लाहट तेज, हिले पर्वत, कम्पायमान धरती।
थर्राया नवग्रह को, अंतरिक्ष को आंदोलित करती॥
सभी दिशाएं गूंजी, नीचे का पाताल, गगन ऊपर।
वज्रपात की आशंका से गिरने लगे लोग भूपर॥१२॥

प्रभु के दुग्ध पान से हुई पूतना को इतनी पीड़ा।
प्रकट हुई राक्षसी रूप में, भूल गई सारी क्रीड़ा॥
जैसे गिरे वज्र से घायल होकर वृत्तासुर भारी।
केस खुले, मुंह फटा, अंग फैले, पूतना गई मारी॥१३॥

राजन! अद्भुत था उसका शरीर, था ब्रज से दूर पड़ा।
जंगल छः कोसों तक, नीचे दब कर चकनाचूर पड़ा॥१४॥

मुंह में हल जैसी दाड़े, स्तन ज्यों शैल-शिला भारी।
नथुनें ज्यों गिरि गुफा, केश का रंग लाल विस्मयकारी॥१५॥

कूल्हें ज्यों कगार, पुल जैसी दीर्घ भुजाएं-जंघाएं।
आंखें सूखे कुएं, पेट जैसे तालाब सूख जायें॥१६॥

हृदय, कान, सिर थे विदीर्ण जिसके केवल चिल्लाने में।
थे भयभीत गोप-गोपी उसके शरीर तक जाने में॥१७॥

देखा जब शिशु को निर्भय हो, छाती पर क्रीड़ा करते।
तब जाकर गोपियां उठा लाईं शिशु को डरते-डरते॥ १८॥

शुरुआत फिर हुई पुत्र रक्षा के सभी उपायों की।
लिया यशोदा ने गोदी में, पूंछ घुमायीं गायों की॥ १९॥

नहलाया गो-मूत्र डालकर, गो-रज अंगों में डाली।
अंगों को गोबर से छूकर, कहा हरि करें रखवाली॥ २०॥

अंगन्यास-करन्यास गोपियों ने फिर अपना, आप किया।
बीजन्यास बालक का करने, बीज कवच का जाप किया॥ २१॥

कहने लगी गोपियां, पांवों की रक्षा को अज आयें।
घुटनों के रक्षक मणि, यज्ञों से रक्षित हो जंघायें॥
अच्युत-कटि, हयग्रीव-पेट, कर-विष्णु, वक्ष-ईश्वर देखें।
केशव-हृदय, कंठ-रवि, उरु-मुख, सिर को जगदीश्वर देखें॥ २२॥

आगे हों चक्रधर, गदाधर पीछे, भूपर हलधारी।
अगल-बगल में मधुसूदन-अंजन ले धनुष-खड्ग भारी॥
हों उपेन्द्र ऊपर से रक्षक, उरु के चारों छोर रहें।
परम पुरुष भगवान करें रक्षा, शिशु के सब ओर रहें॥ २३॥

नारायण प्राणों की, इन्द्रिय की रक्षा ऋषिकेश करें।
श्वेत द्वीप-पति चित्त, और मन की रक्षा योगेश करें॥ २४॥

मति के रक्षक प्रश्नि, आत्मा संरक्षित भगवान रखें।
क्रीड़ा में गोविंद, शयन में माधव पूरा ध्यान रखें॥ २५॥

श्रीपति बैठे में, रक्षा बैकुण्ठ करे जब गमन करें।
खाते समय यज्ञपति रक्षा करें, ग्रहों का शमन करें॥ २६॥

कूष्माण्डा, निशाचरी, डाकिनी हरें, ग्रह बाधाएं।
भूत, पिशाच, प्रेत, राक्षस, यक्षादि विनायक भय खाएं॥ २७॥

जो कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा और मातृका कहलातीं।
देह-प्राण इन्द्रिय में मिरगी एवं पागलपन लातीं॥ २८॥

बाल-वृद्ध ग्रह अति-उत्पाती शिशु के सपनों में आयें।
नामोच्चारण जहां विष्णु का हो, सारे मारे जायें॥ २९॥

श्रीशुक बोले - हुए सुरक्षित प्रभु जब इतना प्रेम मिला।
सुला दिया सुत को झूले में, मां ने अपना दूध पिला॥ ३०॥

इसी समय मथुरा से गोपों सहित नंद ब्रज में आये।
देह पूतना की विशाल थी, देख नंद जी चकराये॥ ३१॥

योगी है वसुदेव, नंद के मन में यह विचार आया।
जैसा कहा उन्होंने, वैसा ही उत्पात यहां पाया॥ ३२॥

देह पूतना की टुकड़ों में काट कुल्हाड़ी से ग्वाले।
ब्रज से दूर गए लेकर, रखकर लकड़ियां जला डाले॥ ३३॥

जब उसका तन जला, अगर की फैली गंध हवाओं में।
पाप नष्ट हो गए, गिनी जायेगी प्रभु की मांओं में॥ ३४॥

रक्त-पिपासु पूतना थी राक्षसी सभी को दुखदायी।
स्तनपान कराया प्रभु को, दुष्टा ने सद्गति पायी॥ ३५॥

प्रभु को प्रिय वस्तुएं अगर श्रद्धा से देंगीं माताएं।
उनका क्या कहना, प्रभु से वे माताएं क्या-क्या पाएं॥ ३६॥

भक्तों ने जिन चरण-कमल को रखा हृदय में, ध्यान किया।
वही चरण रखकर शरीर पर, प्रभु ने स्तन-पान किया॥ ३७॥

सद्गति मिली पूतना को जब, तब गोपियां और गायें।
जिनका स्तन-पान किया प्रभु ने, ना जाने क्या पायें॥ ३८॥

प्रभु देवकी-पुत्र ने गायों, गोपिकाओं का दूध पिया।
पुत्र स्नेह से युक्त सभी को प्रभु ने मोक्ष प्रदान किया॥ ३९॥

थीं देखतीं कृष्ण को पुत्र रूप में गायें-माताएं।
जन्म-मृत्यु के चक्कर से वे कैसे नहीं मुक्ति पाएं॥ ४०॥

उड़ता देखा धुआँ सुगंधित, नंदराय कुछ चकराये।
यह क्या है, पूछा ग्वालों से, मथुरा से जब ब्रज आये॥ ४१॥

पता चला जब उन्हें पूतना के वध का विवरण सारा।
किया गया आनंद और आश्चर्य प्रकट उनके द्वारा॥ ४२॥

बचा मृत्यु के मुख से सुत, आनंद नंद को था भारी।
उठा गोद में सुत का मुख-माथा चूमा बारी-बारी॥ ४३॥

कथा पूतना की सद्गति की, श्रवण करें जो नर-नारी।
प्रभु में प्रेम बढ़ायें, प्रभु की लीलाएं विस्मयकारी॥ ४४॥

सातवां अध्याय

शकट-भंजन और तृणावर्त उद्धार

कहा परीक्षित ने - प्रभु श्रीहरि करते हैं जो लीलाएं।
कानों को प्यारी लगतीं हैं, अंतर्मन को छू जायें॥ १॥

सुनकर उन्हें दूर होती है, विषयों से तृष्णा सारी।
अंतःकरण शुद्ध हो जाता, प्रभु में बढ़े भक्ति भारी॥
भगवन् आप मुझे समझें यदि कथा श्रवण का अधिकारी।
वर्णन करें बाल-लीलाएं प्रभु की दिव्य मनोहारी॥ २॥

मानव के स्वभाव से अनुप्राणित हैं मानव-लीलाएं।
सभी बाल-लीलाएं प्रभु की अद्भुत हैं, सब बतलाएं॥ ३॥

बोले श्रीशुकदेव - परीक्षित! प्रभु ने जब करवट बदली।
गया मनाया उत्सव, हुआ बजाना-गाना गली-गली॥
था नक्षत्र जन्म का, विप्रों ने शुभ मंत्रोच्चार किया।
किया यशोदा ने माथे पर तिलक पुत्र को प्यार किया॥ ४॥

किया स्वस्तिवाचन विप्रों ने, गया कृष्ण को नहलाया।
गो-वस्त्रों के साथ द्विजों ने जो मांगा वह सब पाया॥
मां ने देखा तभी पुत्र को निद्रा में आंखें मीचे।
सुला दिया कृष्ण को नरम शैया पर छकड़े के नीचे॥ ५॥

जाग गए श्रीकृष्ण शीघ्र ही, केवल तनिक देर सोये।
भूख लगी थी, करने स्तनपान जोर से प्रभु रोये॥
मां को हुआ विलंब, अतिथियों से निवृत्त होते-होते।
पांवों को प्रभु ने उछालना, शुरू किया रोते-रोते॥ ६॥

प्रभु के चरण-कमल कोमल, जैसे अंकुर लालिमा लिए।
अपने पांवों से छूकर ही, भारी छकड़ा पलट दिए॥
दूध, दही के पात्र रखे थे छकड़े में, सब ध्वस्त हुए।
जुआं, धुरी, पहिए छकड़े के, हुए विखंडित बिना छुए॥ ७॥

उत्सव में आयीं थीं जो स्त्रियाँ, गोपगण थे आये।
नंद-यशोदा और रोहिणी सहित समूचे चकराये॥
लगे पूछने एक दूसरे से, भारी भरकम छकड़ा।
कैसे टुकड़े-टुकड़े होकर, आकर इतनी दूर पड़ा॥८॥

खेल रहे बच्चों ने देखा सबको परेशान होते।
बोले-उसको ठोकर शिशु ने मारी थी रोते-रोते॥९॥

थी बच्चों की बात इसलिए, इसको लोग नहीं माने।
तब तक बालक के अनंत बल से थे सारे अनजाने॥१०॥

करने शांत ग्रहों को विप्रों ने मन्त्रों का गान किया।
लिया गोद में तब मां ने, तब शिशु ने स्तनपान किया॥११॥

छकड़ा सीधा कर गोपों ने किया व्यवस्थित घर सारा।
विप्रों ने पूजा छकड़े को दही, कुशा, अक्षत द्वारा॥१२॥

दम्भ, दर्प, हिंसा, निंदा, ईर्ष्या से जिसकी दूरी हो।
सच होता आशीष विप्र का, मनोकामना पूरी हो॥१३॥

यही सोच कर नंद, पुत्र को गोदी में लेकर आये।
कर जल से अभिषेक, वेदविज्ञों ने वेदमंत्र गाये॥१४॥

आनंदित थे नंद, हवन पूजन का आयोजन करके।
थे संतुष्ठ विप्रगण उत्तम स्वाद युक्त भोजन करके॥१५॥

दिए नंद ने वस्त्राभूषण, स्वर्णहार सज्जित गायें।
विप्रों ने आशीष दिया, पूरी हों सभी कामनायें॥१६॥

वे वेदज्ञ विप्र जिनमें शुभ सदाचार का बल होता।
निस्संदेह इन विप्रों का आशीष नहीं निष्फल होता॥१७॥

एक दिवस ले गोद पुत्र को, मां ने बहुत दुलार किया।
तभी कृष्ण ने शैल-शिला-सा अपने तन का भार किया॥१८॥

पीड़ित हुई भार से, धरती पर बालक को बिठा दिया।
होकर चकित विष्णु को याद किया, फिर घर का काम किया॥१९॥

तृणावर्त था भृत्य कंस का, चक्रवात बन ब्रज आया।
जैसा कहा कंस ने प्रभु को नभ में साथ उड़ा लाया॥२०॥

ब्रज-रज से ब्रज ढंका, धूल से अंधकार सब ओर हुआ।
कांपी दसों दिशाएं, चक्रवात का इतना शोर हुआ॥२१॥

ब्रज में रज के कारण कुछ पल ही था अंधकार छाया।
पल भर बाद यशोदा ने सुत को उस जगह नहीं पाया॥२२॥

तृणावर्त ने उड़ा रखी थी, बालू, रेत वहां भारी।
कौन पराया अपना, देख न पाते, इतनी लाचारी॥२३॥

धूल भरी आंधी में सुत को नहीं यशोदा जब पाईं।
विह्वल हुईं शोक से वहीं गिर पड़ी, ऐसी घबराईं॥
दीन-हीन हो गईं, यशोदाजी ने निज सुध-बुध खोई।
जैसे बछड़े के मरने पर करे विलाप गाय कोई॥२४॥

हुआ बवंडर शांत, धूल की वर्षा लगी शांत होने।
रोने की आवाज यशोदाजी की सुनी गोपियों ने॥
वे दौड़ीं आईं, सबने शिशु को ढूढ़ा कोने-कोने।
नहीं मिले श्रीकृष्ण, दुखी हो लगीं गोपियां भी रोने॥२५॥

ले तो गया उड़ाकर, अपने साथ लगा ताकत सारी।
लेकिन उन्हें सम्हाल न पाया, हुए कृष्ण इतने भारी॥२६॥

खल से भारी हुए कृष्ण तो आगे नहीं उड़ा पाया।
अद्‌भुत शिशु ने ऐसा पकड़ा गला, न दुष्ट छुड़ा पाया॥ २७॥

गला दबा तो आंखें बाहर हुईं, न चीख निकल पायी।
किया उसे निष्प्राण कृष्ण ने, पल में किया धराशायी॥ २८॥

करते समय विलाप गोपियों को डरावना दृश्य दिखा।
पड़ा भूमि पर दैत्य एक रज के पहाड़ सदृश्य दिखा॥
शैल-शिला पर गिरने से क्षत-विक्षत था शरीर सारा।
ऐसे-जैसे शिव ने बाणों से त्रिपुरासुर था मारा॥ २९॥

शिशु को लटका देख दैत्य की छाती पर, सब घबराईं।
लेकिन जाकर शीघ्र कृष्ण को, पास यशोदा के लाईं॥
पाकर सुत को भूल गईं दुख, रोना-धोना बंद हुआ।
नंद, यशोदा, गोप, गोपियों को अपार आनंद हुआ॥ ३०॥

बोले लोग-मृत्यु के मुंह में जिसे दैत्य ने था डाला।
हैं आश्चर्य सुरक्षित है यह नंद-यशोदा का लाला॥
अपने पापों के ही कारण हिंसक दुष्ट गया मारा।
साधु पुरुष की समता हर लेती है उसका भय सारा॥ ३१॥

हमने ऐसा कौन यज्ञ-तप किया, कौन-सा दान किया।
लोगों का क्या भला किया, क्या व्रत-संकल्प-विधान किया॥
जिसके फल से पुत्र हमारा जीवित ही वापस आया।
है सौभाग्य हमारा, हमने भाग्यवान सुत को पाया॥ ३२॥

सोच रहे थे नंद, आपदा कुछ ही दिनों बाद आयी।
फिर वसुदेव दिए थे जो-जो चेतावनी याद आयी॥ ३३॥

एक दिवस जब पुत्र, प्रेम से स्तनपान कर रहा था।
वात्सल्य का चरम, दूध खुद अपने आप झर रहा था॥ ३४॥

दूध पी चुके कृष्ण यशोदा ने चूमा, जी भर देखा।
तभी जंभाई ली प्रभु ने, मां ने मुंह के भीतर देखा॥ ३५॥

मुंह में मां ने सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और सागर देखे।
पर्वत, नदियां, द्वीप और वन, प्राणी सचराचर देखे॥
था आकाश समूचा, अंतरिक्ष था, दसों दिशाएं थीं।
ज्योर्तिमंडल भी था मुँह में, बहती हुए हवाएं थीं॥ ३६॥

मुंह में जगत देख कर सोचा हैं मेरी कैसी आँखें।
फिर हो चकित मूंद ली मां ने मृग-शावक जैसी आँखें॥ ३७॥

आठवां अध्याय

नामकरण संस्कार और बाल लीला

बोले श्रीशुक - राजन! गर्गाचार्य एक दिन ब्रज आये।
थे आचार्य यादवों के, वसुदेव उन्हें थे भिजवाये॥ १॥

हर्षित हुए देखकर उनको नंद कि जैसे हरि आये।
किया प्रणाम और पूजा की, फिर श्रद्धा से बैठाये॥ २॥

कहा नंद ने - पूर्ण-काम हैं आप, सदा संतुष्ठ रहें।
सेवा मेरे लायक हो तो, भगवन् निस्संकोच कहें॥ ३॥

हम गृहस्थ हैं, दीन हृदय से, सोच हमारी साधारण।
निश्चित ही कल्याण हमारा, होगा आने का कारण॥ ४॥

भूत-भविष्य जानते हैं, इन्द्रिय सीमा को पार किया।
रचकर ज्योतिष शास्त्र, आपने जीवों पर उपकार किया॥ ५॥

आप ब्रह्मवेत्ता हैं, गुरु हैं, नित परहित के कार्य करें।
कृपया मेरे दो पुत्रों का नामकरण आचार्य करें॥६॥

कहा गर्ग ने - मुझको यदुवंशी आचार्य कहा जाता।
मेरे नामकरण से होगा सिद्ध देवकी है माता॥७॥

नंद और वसुदेव मित्र हैं, पापी कंस जानता है।
गर्भ आठवें से कन्या जन्मी थी, नहीं मानता है॥८॥

मान योगमाया की बातें, ब्रज के शिशु मरवाता है।
होगा अति अन्याय अगर उसको इन पर शक आता है॥९॥

बोले नंद - आप कर दे यह कार्य यहीं गौशाला में।
केवल होंगे आप, किसी को नहीं बुलाने वाला मैं॥१०॥

बोले श्रीशुक - गर्गाचार्य वहां थे इसीलिए आये।
गुप्त रूप से संस्कार सब गोशाला में करवाये॥११॥

बोले गर्गाचार्य - रोहिणी-सुत का नाम 'राम' होगा।
सुहृदों को आनंदित रखना उसका प्रमुख काम होगा॥
है असीम बलवान इसलिए नाम दूसरा 'बल' होगा।
संकर्षण भी कहलायेगा, यदुकुल का संबल होगा॥१२॥

जो है कृष्ण, 'कृष्ण' ही होगा नाम, सभी युग में आये।
पूर्व युगों में श्वेत, पीत, रक्ताभ वर्ण इसको भाये॥१३॥

जिन्हें पता है, पिता रहे हैं इसके श्रीवसुदेव कभी।
वासुदेव के श्रेष्ठ नाम से जानेंगे वे लोग सभी॥१४॥

रूप विविध, गुण विविध, अनोखे इसके विविध काम होंगे।
रूप, कर्म, गुण पर आधारित, इसके कई नाम होंगे॥१५॥

गो, गोकुल, गोपी, गोपों में प्रेम और आनंद भरे।
आने वाली आपदाओं को पलक झपकते दूर करे॥१६॥

एक समय की बात नंद! धरती पर बढ़ी अराजकता।
लूट-मार करते थे डाकू, उनको कौन रोक सकता।
इसी पुत्र ने सत्पुरुषों को उस कष्ट से उबारा था।
इससे बल पाकर सत्पुरुषों ने दुष्टों को मारा था॥१७॥

इस शिशु से जो प्रेम करें, हल होंगी सभी समस्यायें।
रहे सुरक्षित सुर जैसे, जब हरि की कृपा-दृष्टि पायें॥१८॥

पुत्र तुम्हारा श्रीसम्पन्न, यशस्वी, गुणनिधान होगा।
सुन्दरता एवं प्रभाव में, यह हरि के समान होगा॥१९॥

नंदराय को समझाकर जब गर्ग गए आश्रम अपने।
थे आनंदित नंद, हो गए थे पूरे उनके सपने॥२०॥

राम-श्याम ने शुरू किया चलना घुटनों-हाथों के बल।
लगे निकलने ब्रज में दोनों, दोनों हुए और चंचल॥२१॥

दोनों भाई नन्हें पांवों में कीचड़ को लिपटाते।
पांवों और कमर की घुंघरू खनकाते ब्रज में जाते॥
कभी किसी अनजान व्यक्ति के पीछे अगर चले जाते।
धक से रह जाते, रुक जाते, मां के पास लौट आते॥२२॥

पुत्रों के तन लगा, पंक का अंगराग लगता प्यारा।
मां के स्तन से बह उठती अपने आप दुग्ध धारा॥
लगा हृदय से पहले शिशु को, दुग्ध पान फिर करवातीं।
बीच-बीच में उसे देखतीं जातीं, हंसतीं-मुस्कातीं।
भोला मुख, मुस्कान मंद, दो छोटे दांत देख पातीं।
वे आनंद सिंधु में ऐसा लगे, डूबतीं-उतरातीं॥२३॥

देख-देख इनकी क्रीड़ाएँ, लोटपोट सब हो जायें।
घर का काम न करें गोपियां, इन्हें देख कर सुख पायें॥ २४॥

श्वान, मोर, मृग, गाय आदि जीवों के निकट चले जायें।
कांटे, कुआं और ज्वाला के जाते पास, न घबरायें॥
इन दोनों की चिंता में ही दिनभर रहतीं मातायें।
हृदय लगा रहता बच्चों में, घर का काम न कर पायें॥ २५॥

घुटने छोड़ पांव पर चलने की जैसे ताकत आई।
लगे दौड़ते पूरे ब्रज में, हे राजन! दोनों भाई॥ २६॥

ब्रज में करते खेल साथ में लेकर समवयस्क ग्वाले।
भाग्यवान हैं प्रभु की इस छबि का दर्शन करने वाले॥ २७॥

यद्यपि मधुर और सुन्दर थी बाल कृष्ण की लीलाएं।
देख-देख कर उन्हें गोपियां, हो आनंदित सुख पायें॥

एकत्रित हो किंतु एक दिन मां से मिलने सब आईं।
क्या-क्या करते कृष्ण, सभी करतूतें उनको बतलाईं॥ २८॥

बछड़ों को खोला करता है, दूध गाय का पिलवाता।
क्रोध करें हम तो वह उल्टा, खुश होता, हंसता जाता॥
घर में घुसकर दूध-दही-मक्खन चोरी से खाता है।
खुद खाता है, बचा बानरों में भी बांटा जाता है॥
अगर न मिलता घर में कुछ तो और कुपित हो जाता है।
मटकों को फोड़ता और बच्चों को बहुत सताता है॥ २९॥

दूध-दही छींकों पर हो तो, यह ऊखल पर चढ़ जाये।
कभी पीठ पर, या पीढ़े पर चढ़े, मगर माखन खाये॥
सोच समझकर मटकी दूध भरी हैं, या माखन वाली।

करता ऐसा छिद्र शीघ्र ही, मटकी हो जाती खाली॥
कब किसका घर सूना होगा, मिलतीं उसे सूचनायें।
पात्र अंधेरे में हो तो मणि की आभा में दिख जायें॥ ३०॥

देखो बनकर मूर्ति खड़ा है, दिखता है भोला-भाला।
माखन चोरी करने वाला, घर गंदा करने वाला॥
करें शिकायत पर न कृष्ण के मुख से दृष्टि उठा पातीं।
उनके मन का प्रेम देखकर, देवि-यशोदा मुस्कातीं॥ ३१॥

एक दिवस जब खेल रहे थे ग्वाल और दोनों भाई।
कहा यशोदा से ग्वालों ने, कान्हा ने मिट्टी खाई॥
पुत्र-हितैषी मां के द्वारा गए रंगे-हाथों पकड़े।
डर के मारे लगे नाचनें, नेत्र कृष्ण के बड़े-बड़े॥ ३३॥

बोली मां, रे नटखट तूने क्यों छिपकर मिट्टी खाई।
सच्चा है आरोप साक्षी हैं सब सखा और भाई॥ ३४॥

बोले कृष्ण सभी झूठों के द्वारा मुझे गया घेरा।
तुमको यदि विश्वास न हो तो, तुम खुद देखो मुख मेरा॥ ३५॥

ऐसा है तो कृष्ण दिखाओ अपना मुख, मां ने बोला।
मां के कहने पर भगवान कृष्ण ने अपना मुख खोला॥
राजन! ऐश्वर्य से ईश्वर के कब कौन पार पाये।
बने हुए थे बालक वे तो नर-लीला करने आये॥ ३६॥

मां ने मुख के अंदर विद्यमान जग सचराचर देखा।
गगन, दिशाएं, शैल, द्वीप, पृथ्वी देखी, सागर देखा॥ ३७॥

तेज अग्नि, चंद्रमा, ज्योति मंडल के साथ दिखे तारे।
मन, इन्द्रिय, तीनों गुण, विद्युत और पवन के दल सारे॥ ३८॥

कर्म, काल, वासना, जीव, तन, प्रकृति सहित संसार दिखा।
मां को सुत के छोटे मुख में संसृति का विस्तार दिखा॥
मुख में ब्रज था, ब्रज में मां थी, मां ने चमत्कार देखा।
शंका में पड़ गई यशोदा, मुख में बार-बार देखा॥ ३९॥

सोचा, है यह स्वप्न, बुद्धि भ्रम है, या ईश्वर की माया।
संभव है मेरा सुत लेकर योग-सिद्धि जग में आया॥
उन प्रभु को प्रणाम मेरा, जो जग के आश्रय दाता हैं।
जो सबको प्रेरित करते हैं सबके भाग्य विधाता हैं॥
कर्म, चित्त, मन, वाणी के जो अनुमानों से परे रहें।
सत्ता से प्रतीति होती है, जिनको सभी अचिंत्य कहें॥ ४१॥

यह मैं हूँ, यह मेरे पति हैं, यह है मेरा सुत प्यारा।
ब्रज का सारा धन है मेरा, मेरा है यह ब्रज सारा॥
जिनकी माया से रहती है, ऐसी कुमति मुझे घेरे।
मैं हूं उनकी शरण, वही हैं एक मात्र आश्रय मेरे॥ ४२॥

जब देखा प्रभु ने उनकी माता ने कृष्ण-तत्व पाया।
कर दी मां के मन में संचारित ममता वाली माया॥ ४३॥

उठा लिया गोद में कृष्ण को भूली घटना-क्रम सारा।
बहने लगी हृदय में पहले जैसी ममता की धारा॥ ४४॥

जिन्हें यशोदा पुत्र समझतीं, उनको वेद नेति कहते।
त्यागी, योगी, भक्त निरंतर जिनके गुण गाते रहते॥ ४५॥

पूछे नृपति - नंद जी ने कब क्या सत्कर्म महान किया।
तप क्या करीं यशोदा, प्रभु ने उनका स्तनपान किया॥ ४६॥

देख बाल लीलाएं प्रभु की ब्रजवासी सुख पाते हैं।
होते पाप नष्ट उनके जो ज्ञानी इनको गाते हैं॥
जनक और जननी क्यों देख न पाये प्रभु की लीलाएं।
क्या कारण है नंद-यशोदा, लीलाओं का सुख पाएं॥ ४७॥

बोले श्रीशुक - राजन! नंद-यशोदा भाग्यवान भारी।
पूर्व जन्म में द्रोण-धरा थे, ब्रह्मा के आज्ञाकारी॥
ब्रह्मा ने जब उन्हें भूमि पर जाने का आदेश दिया।
द्रोण-धरा ने तभी विधाता से सादर अनुरोध किया॥ ४८॥

जब हम पृथ्वी पर जन्में, जगदीश्वर में अनुरक्ति रहे।
दुर्गतियों से पार लगाने वाली पावन-भक्ति रहे॥ ४९॥

ब्रह्माजी ने द्रोण-धरा को स्वीकृति दी, आशीष दिया।
नंद-यशोदा बन कर दोनों ने ब्रज में अवतार लिया॥ ५०॥

राजन! ब्रज में प्रभु के प्रेमी गोप-गोपियां भी जन्में।
प्रेम और वात्सल्य भरा था नंद-यशोदा के मन में॥ ५१॥

प्रभु ब्रज आये, ताकि वचन ब्रह्माजी के सच हो जायें।
नंद-यशोदा देख बाल-लीलाएं इच्छित सुख पायें॥ ५२॥

नौवां अध्याय

श्रीकृष्ण का ऊखल बंधन

बोले श्रीशुक - एक दिवस माता को कुछ व्यस्तता रही।
अन्य काम दे सेविकाओं को, वे खुद मथने लगीं दही॥ १॥

अब तक कही गईं लीलायें उनको याद आ रहीं थीं।
दधि-मंथन के साथ-साथ वे सुत के गीत गा रहीं थीं॥ २॥

बँधा सूत से कटि में, मां थी रेशम का लहँगा पहने।
कंपित थे कुच, पुत्र प्रेम से, उनसे लगा दूध बहने॥
डोरी खींच-खींच कर, बांहे थकीं लग रहीं थीं थोड़ी।
दमक रही थी हिल कर उनके कंगन-कुंडल की जोड़ी॥
सुन्दर और लग रहीं थीं, भौंहें श्रमकण के मिलने से।
झरते फूल मालती के, उनकी वेणी के हिलने से॥३॥

तभी कृष्ण पीने को आये दूध लगी थी भूख बड़ी।
पकड़ मथानी, रोका मंथन, देख रही मां खड़ी-खड़ी॥४॥

जिसके लिए दूध बहता था, जब उसको सम्मुख पाया।
लिया गोद में, दूध पिलाया, मुख को देखा, सुख पाया॥
उबल रहा था दूध निकट ही, थी उतारने की जल्दी।
दूध पिलाना छोड़ यशोदा, दूध बचाने को चल दी॥५॥

लाल अधर फड़के, लाला थे क्रोधित क्यों अतृप्त छोड़ा।
ओंठ दांत से दबा, दही के घट को लोढ़े से फोड़ा॥
आंखों में आंसू बनावटी लिए दूसरे घर आये।
भूखा हूँ यह बतलाने को, प्रभु बासी माखन खाये॥६॥

जब उतार कर दूध, दही मथने माता वापस आईं।
कृष्ण नहीं थे वहां, वहां घट के टुकड़े-टुकड़े पाईं॥
समझ गई सब देवि-यशोदा, है सुपुत्र का किया धरा।
हंसने लगीं देख कर करतब मन में था आनंद भरा॥७॥

इधर-उधर देखा तो पाया ऊखल पर थे कृष्ण खड़े।
बांट रहे थे मक्खन, खायें बंदर छोटे और बड़े॥
थे चौकन्ने, देख रहे थे, यहां-वहां डरते-डरते।
पीछे से आ गई यशोदा, देख लिया चोरी करते॥८॥

मां के हाथ छड़ी देखी, ऊखल से कृष्ण उतर भागे।
प्रभु के पीछे माता दौड़ी, माता पीछे, प्रभु आगे॥
राजन! जप-तप करके योगी जिनको पकड़ न पाते हैं।
वे ही परम्पिता, माता के द्वारा पकड़े जाते हैं॥९॥

हिल-हिल कर उन्नत नितम्ब, उनकी गति को कम करते थे।
फूल लगे थे जो चोटी में, पीछे-पीछे झरते थे॥
पर सुन्दरी यशोदा तो थीं, इन बातों से अनजानीं।
वे अपने प्यारे कान्हा का हाथ पकड़ कर ही मानीं॥१०॥

पकड़ कृष्ण का हाथ यशोदा ने पहले तो धमकाया।
था अपराध-बोध इस कारण, लाला को रोना आया॥
डर के, आंखें ऊपर करके, देख रहे सूरत मां की।
आंखें लाल, गाल तक काजल, प्रभु की थी बांकी झांकी॥११॥

देख पुत्र को डरा, हृदय में मां के प्यार उमड़ आया।
छड़ी फेंककर मां ने बालक के बालों को सहलाया॥
राजन! प्रभु के ऐश्वर्य से रहीं यशोदा अनजानी।
रस्सी से बांधने कृष्ण को, इसीलिए मां ने ठानी॥१२॥

जिसका आदि न अंत, नहीं जिसके कुछ भीतर-बाहर है।
जो जग के भीतर भी रहता, बाहर रूप उजागर है॥
जो इंद्रिय से परे रहे, जिसको अव्यक्त सभी कहते।
जो संसृति के पहले रहते, बाद प्रलय के भी रहते॥१३॥

ऐसे प्रभु ने जब मानव का रूप कर लिया है धारण।
बांध रही है मां ऊखल से, समझ रही नर साधारण॥१४॥

लगी बांधने जब नटखट को, रस्सी थी छोटी-थोड़ी।
इसीलिए अंदर से लाकर रस्सी में रस्सी जोड़ी॥१५॥

फिर से छोटी पड़ी, एक टुकड़ा फिर नया गया जोड़ा।
टुकड़े जोड़े कई मगर, अंतर रह जाता था थोड़ा॥ १६॥

खत्म हुई रस्सियां, कृष्ण को माता बांध नहीं पाईं।
चकित हुई मां, और गोपियां देख-देखकर मुस्काईं॥ १७॥

थी तरबतर पसीने में मां, जाना उन्हें थका-हारा।
करके कृपा कृष्ण ने खुद ही, मां का बंधन स्वीकारा॥ १८॥

परम स्वतंत्र कृष्ण हैं राजन! देव न उन्हें साध पाते।
बंधकर बतलाया, उनको तो केवल भक्त बांध पाते॥ १९॥

देवि-यशोदा के हिस्से में जो प्रभु का प्रसाद आया।
ब्रह्मा, रमा और शंकर ने, नहीं अनुग्रह वह पाया॥ २०॥

ब्रजवासी भक्तों से प्रभु मिलते हैं जिस आसानी से।
ऐसे मिलते नहीं, तपस्वी, कर्मकाण्ड के ज्ञानी से॥ २१॥

गईं यशोदा घर में, प्रभु को यक्ष-कुबेर याद आये।
सोचा, वृक्ष बने उनके पुत्रों को मुक्त किया जाये॥ २२॥

नलकूबर, मणिग्रीव नाम के दो अभिमानी यक्ष हुए।
पा नारद का शाप, घमंडी, ब्रज में आकर वृक्ष हुए॥ २३॥

दसवां अध्याय

यमलार्जुन उद्धार

पूछा नृपति परीक्षित ने - प्रभु! यक्षों ने क्या पाप किया।
जिसके कारण शांतमना नारद ने उनको शाप दिया॥ १॥

बोले श्रीशुक - राजन्! दोनों यक्ष पुत्र अति सुन्दर थे।
धनपति के थे पुत्र, शक्तिपति रूद्रदेव के अनुचर थे॥
इस कारण से दोनों का अभिमान अधिक था बढ़ा हुआ।
साथ-साथ धन और शक्ति के, नशा मद्य का चढ़ा हुआ॥ २॥

मंदाकिनी नदी के तट पर, एक दिवस दोनों भाई।
थे आनंद निमग्न, वारुणी मदिरा दोनों पर छाई॥
कई देवियां साथ, बजातीं वाद्य और गातीं गाना।
लदे हुए थे दोनों पुष्पों से, आमोद किए नाना॥ ३॥

कमल पंक्ति वाली गंगा में, घुसे साथ ले ललनाएं।
हाथी के जोड़े के जैसी, वे करते जल-क्रीड़ाएं॥ ४॥

था संयोग कि उसी राह से नारद कहीं जा रहे थे।
दिखे उन्हें उन्मत्त यक्ष सुत, जल-उत्सव मना रहे थे॥ ५॥

ललनाओं ने शीघ्र वस्त्र पहने मुनि से डरते-डरते।
पर मतवाले यक्ष रहे निर्भय, जल की क्रीड़ा करते॥ ६॥

देख मदांध यक्ष-पुत्रों को, तनिक देर मुनि शांत रहे।
देकर शाप, अनुग्रह करके, नारद ने यह वचन कहे॥ ७॥

बोले नारद - सब विषयों में, धन का नशा, नाशकारी।
धन-मद के साथी होते हैं, मदिरा, जुआ और नारी॥ ८॥

श्रीमद से अंधे हो जाते, इन्द्रिय के वश में रहते।
जीवों की हत्या करते, पर खुद को अजर-अमर कहते॥ ९॥

अंत बुरा होता, तन का देवत्व जरा-सी देर रहे।
कीड़े पड़ते, पक्षी खाते, शेष राख कर ढेर रहे॥
ऐसे नाशवान तन से मानव क्यों इतना मोह करे।
द्वार नर्क का खोले, जग के सब जीवों से द्रोह करे॥ १०॥

इस शरीर-धन का मालिक है कौन पिता अथवा माता।
अथवा नाना, जिनके द्वारा, मां को जन्म दिया जाता॥
पालक, क्रेता या बलशाली, जो इस का उपयोग करें।
अग्नि चिता की या वे पशु, जो इसको खाकर पेट भरें॥ ११॥

तन साधारण, बने प्रकृति से और प्रकृति में मिल जाये।
इसे आत्मा मान मूर्ख ही जीवों को दुख पहुंचाये॥ १२॥

धन-मद के अंधों को निर्धनता की है आवश्यकता।
सब जीवों को अपने जैसा, निर्धन सिर्फ देख सकता॥ १३॥

जिसको कांटा गड़ा, चाहता नहीं, किसी को और गड़े।
उस पर पड़ी जिस तरह पीड़ा, किसी अन्य पर नहीं पड़े॥
लेकिन जिसको गड़ा न कांटा, वह इसका दुख क्या जाने।
दुख है ऐसी दवा, दूसरे के दुख को अपना माने॥ १४॥

धन घमंड का मूल, इसलिए निर्धन, निरभिमान होते।
कष्ट भाग्यवश जो मिलते, वे भी तप के समान होते॥ १५॥

प्रतिदिन अन्न जुटाता है जो, दुर्बल उसे क्षुधा करती।
तन की यह दुर्बलता, इन्द्रिय की सक्रियता को हरती॥
वह दरिद्र सारे जीवों को अपने जैसा पाता है।
अपने सुख के लिए, अन्य जीवों को नहीं सताता है॥ १६॥

भोग मुक्त निर्धन, समदर्शी सन्तों के समीप आयें।
अंतःकरण शुद्ध हो, मिटतीं, तृष्णा और लालसायें॥ १७॥

संत लगाते प्रभु पद में मन, उन्हें अन्य की चाह नहीं।
धन-मद से मतवाले दुष्टों की उनको परवाह नहीं॥ १८॥

दास इन्द्रियों के हैं, लम्पट हैं, रहती मदिरा छाई।
नष्ट करूंगा धन-मद, अंधे हैं जिसमें दोनों भाई॥ १९॥

हैं कुबेर धनपति के सुत, है इसीलिए धन-मद ज्यादा।
पीकर सुरा नग्न हो तैरें, तोड़ रहे सब मर्यादा॥ २०॥

वृक्ष बनेंगे दोनों ही तब, धन का मद समाप्त होगा।
बनी रहेगी स्मृति प्रभु की, फिर सामीप्य प्राप्त होगा॥ २१॥

कृष्ण रूप में जन्मेंगे प्रभु, उनका दर्शन पायेंगे।
पाकर भगवद् भक्ति, लोक में अपने वापस आयेंगे॥ २२॥

बोले श्रीशुक - ऐसा कह मुनि, नारायण आश्रम आये।
नलकूबर-मणिग्रीव वृक्ष बनकर, यमलार्जुन कहलाये॥ २३॥

नारद जी का वचन पूर्ण करने, प्रभु ने अवसर पाया।
यमलार्जुन की ओर, बंधे ऊखल को आगे सरकाया॥ २४॥

प्रभु ने सोचा प्रिय नारद के, सच सब वचन किए जायें।
वृक्ष-योनि से धनपति के दोनों सुत भी विमुक्ति पायें॥ २५॥

यही सोच प्रभु वृक्षों से होकर इस पार निकल आये।
किंतु उस जगह से भारी ऊखल किस तरह निकल पाये॥ २६॥

बंधे हुए थे प्रभु ऊखल में, जैसे ही रस्सी खींचे।
दोनों पेड़ उखड़ कर जड़ से, गिरे भरभराकर नीचे॥
परम शक्तिशाली प्रभु ने उपयोग किया था बल थोड़ा।
कांप रहा था जड़ से पत्तों तक, दो वृक्षों का जोड़ा॥ २७॥

वृक्षों से दो अति-तेजस्वी पुरुष दिखे बाहर आते।
दसों दिशाओं में सुन्दरता की आभा को फैलाते॥

प्रभु को किया प्रणाम, शीश रख चरणों में आश्रय पाने।
शुद्ध हृदय से, हाथ जोड़कर स्तुति-गान लगे गाने॥ २८॥

है स्वरूप आपका विश्व सारा, ऐसा वेदज्ञ कहें।
हे योगेश्वर कृष्ण, आप सर्वदा प्रकृति से परे रहें॥ २९॥

जीवों के शरीर, मन, इन्द्रिय और प्राण के स्वामी हैं।
आप काल हैं, ईश्वर हैं, अविनाशी, अंतर्यामी हैं॥ ३०॥

सत, रज, तम से सूक्ष्म, प्रकृति जैसे व्यापक स्वरूप धरते।
परम पुरुष हैं, धर्म, कर्म, भावों का निर्धारण करते॥ ३१॥

प्रकृति प्रदत्त विकार-गुणों से अधिक आपकी व्यापकता।
नर तनधारी कोई प्रभु को पूरा नहीं जान सकता॥ ३२॥

रखते छुपा स्वयं की महिमा, प्रभु जब मानव रूप धरें।
ऐसे वासुदेव प्रभु को हम बारम्बार प्रणाम करें॥ ३३॥

जब होते अवतरित, पराक्रम से प्रभु पहचाने जाते।
उससे बढ़कर क्या ? वैसा ही कौतुक लोग न कर पाते॥ ३४॥

लोकों के उत्थान हेतु प्रभु सभी शक्तियां ले जन्में।
पूरी करते अभिलाषाएं, जिसके जो भी हों मन में॥ ३५॥

हे हितकारी, मंगलकारी, प्रभु करिये स्वीकार नमन।
वासुदेव, यदुपति को करते हैं हम बारम्बार नमन॥ ३६॥

हम दासों के दास आपके, थे अभिमानी कहलाते।
नारदजी की कृपा न होती, तो कैसे दर्शन पाते॥ ३७॥

भगवन् की रस-पूर्ण कथा का श्रवण हमेशा कान करें।
और हमारे मुख, प्रभु के मंगलमय गुण का गान करें॥

हाथ करें नित हरि की सेवा, दृष्टि सदा दर्शन पाये।
विश्व आपका रूप, मानकर शीश हमेशा झुक जाये॥ ३८॥

बोले श्रीशुकदेव - यक्ष पुत्रों का सुन स्तुति वंदन।
बंधे-बंधे ही ऊखल में, हँसकर बोले यशुमति-नंदन॥ ३९॥

ऐश्वर्य से रहित, श्रीरहित करके निरहंकार किया।
मुझे ज्ञात था, नारद ने दे शाप, बड़ा उपकार किया॥ ४०॥

सूर्योदय होने पर जैसे, सारा अंधकार हटता।
समदर्शी संतों के दर्शन से, हर भवबंधन कटता॥ ४१॥

नलकूबर, मणिग्रीव लोक अपने जाओ दोनों भाई।
हुए मत्परायण, मेरी आभीष्ट भक्ति तुमने पाई॥ ४२॥

बोले श्रीशुक - ऊखल में निबद्ध प्रभु का गुणगान किया।
कर प्रणाम एवं परिक्रमा, यक्षों ने प्रस्थान किया॥ ४३॥

ग्यारहवां अध्याय

गोकुल से वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर एवं बकासुर का उद्धार

श्रीशुक बोले - राजन! सुनकर शोर सभी दौड़े आये।
बिजली गिरने की शंका से, नंद सहित सब घबराये॥ १॥

सबने देखे यमलार्जुन के वृक्ष भूमि पर पड़े हुए।
बंधे हुए ऊखल से, बीचों-बीच कृष्ण हैं खड़े हुए॥ २॥

यद्यपि कृष्ण दिख रहे थे, खींचते हुए ऊखल भारी।
किंतु भ्रमित थी बुद्धि, देखकर दुर्घटना विस्मयकारी॥ ३॥

खेल रहे बच्चे बोले, है कान्हा की करनी सारी।
खुद तो निकल गया वृक्षों से, फंसा दिया ऊखल भारी।
इसने ऊखल को खींचा तो वृक्ष गिरे इसके आगे।
वृक्षों में दो पुरुष छुपे थे, जो तत्काल निकल भागे॥४॥

बोले गोप - इस तरह कैसे भारी पेड़ उखड़ जायें।
कुछ थे आशंकित, जिनको थीं, याद पुरानी घटनायें॥५॥

बंधा हुआ ऊखल घसीटते, दिखे नंद को यदुनंदन।
हंसते हुए शीघ्रता से खोले, प्यारे सुत के बंधन॥६॥

कृष्ण, गोपियों के कहने पर करते नृत्य और गाते।
होकर प्रेमाधीन गोपियों की कठपुतली बन जाते॥७॥

कहने पर उनके पीढ़ा, पदत्राण, माप भी ले आते।
खुश करने उनको, मल्लों की तरह बाजुएं फड़काते॥८॥

ब्रजवासी आनंदित होते, देख कृष्ण की लीलाएं।
विश्व देखता भगवन् कैसे, भक्तों के वश हो जाएं॥९॥

एक दिवस 'फल ले लो' की आवाज सुनी जब कान्हा ने।
अच्युत फल दाता दौड़े लेकर अंजलि में कुछ दानें॥१०॥

दानें तो गिर गए, दिए पर फलवाली ने फल सारे।
प्रभु ने रत्नों से भरकर टोकरी किए बारे-न्यारे॥११॥

एक दिवस यमुना तट पर खेलने गए दोनों भाई।
नहीं देर तक लौटे तो रोहिणी बुलाने को आई॥१२॥

सुन आवाज रोहिणी की, जब हुए न राजी आने को।
तब रोहिणी, यशोदा जी को भेजीं, उन्हें बुलाने को॥१३॥

ममता-मयी यशोदा ने सब बच्चों को लौटने कहा।
देख कृष्ण को भूखा, ममता के आंचल से दूध बहा॥१४॥

कृष्ण, श्याम, कमलाक्ष, कन्हैया नामों से मां ने टेरा।
भूखे और थके दिखते हो, आकर पियो दूध मेरा॥१५॥

बोलीं, बेटा राम, अनुज को लेकर जल्दी से आओ।
नहीं किया है आज कलेवा, अब तो आकर कुछ खाओ॥१६॥

भोजन हेतु बुलाते हैं ब्रजराज, कृष्ण को, हलधर को।
ग्वाल-बाल तुम सब भी जाओ, अब अपने-अपने घर को॥१७॥

पुत्र धूल से सने हुए हो, घर चल कर स्नान करो।
है नक्षत्र जन्म का, विप्रों को चलकर गोदान करो॥१८॥

देखो मित्र तुम्हारे, गए सजाए मांओं के द्वारा।
तुम भी जरा नहा लो, खा लो, फिर खेलना, खेल सारा॥१९॥

दो हाथों से पकड़ यशोदा, दोनों पुत्रों को लाईं।
जो भी मंगल कार्य किए जाने थे, उनसे करवाईं॥
राजन! देवि-यशोदा, परम पिता को पुत्र मानती थीं।
पुत्र रूप में आये हैं, परमेश्वर नहीं जानती थीं॥२०॥

चिंतित थे सब लोग, घट रहीं थीं ब्रज में जो घटनाएं।
सबने किया विचार, छोड़कर गोकुल, और कहीं जाएं॥२१॥

वयोवृद्ध थे एक गोप जिनको उपनंद कहा जाता।
राम-कृष्ण के परम हितैषी, देश-काल के थे ज्ञाता॥२२॥

वे बोले अनिष्टकारी हैं, बच्चों को ये घटनायें।
अच्छा होगा यदि गोकुल से, हम अन्यत्र चले जायें॥२३॥

बचा नंद-सुत, शिशुहंता, दुष्टा पूतना गई मारी।
हरि की कृपा नंद-सुत से कुछ दूर गिरा छकड़ा भारी॥ २४॥

चक्रवात बन एक दैत्य ने, नभ में इसे उड़ाया था।
शैल-शिला पर गिरा, किंतु देवों ने इसे बचाया था॥ २५॥

यमलार्जुन के वृक्ष गिरे जब, यह था उनके बीच खड़ा।
हरि ने की रक्षा इस कारण, हुआ नहीं हादसा बड़ा॥ २६॥

जब तक ब्रज में विध्वंसक उत्पात हो रहें हैं नाना।
तब तक लेकर बच्चों को, है उचित अन्यत्र चले जाना॥ २७॥

वृन्दावन है एक नया कानन, हम लोग उधर जायें।
सुखी और संतुष्ट रहेंगे, गोपी, गोप और गायें॥ २८॥

यदि सबकी हो राय, आज ही वृन्दावन को कूच करें।
गायों को आगे भेजें, फिर छकड़ों में सामान भरें॥ २९॥

सब गोपों ने सहमति दी, फिर किया इकट्ठा गोधन को।
छकड़ों में सामग्री लादी, सभी चले वृन्दावन को॥ ३०॥

छकड़ों पर स्त्रियां, वृद्ध, बच्चे एवं सामान चला।
पीछे-पीछे गोपों का दल, लेकर तीर-कमान चला॥ ३१॥

ग्वाल चले जब गोकुल से, थी गायें आगे सजीं-धजीं।
चले पुरोहित साथ-साथ, तुरही, श्रृंगी अविराम बजीं॥ ३२॥

कुच पर केशर मल, श्रृंगारित हो गोपियां जा रहीं थीं।
सब समवेत कृष्ण की लीलाओं के गीत गा रहीं थीं॥ ३३॥

देवि-यशोदा और रोहिणी, छकड़े पर सवार होकर।
बच्चों की तुतलाती बोली सुनती थीं सुध-बुध खोकर॥ ३४॥

अर्धचन्द्र आकृति में छकड़े रोके, गोधन को घेरा।
हर ऋतु में सुखदायक वृन्दावन में डाल दिया डेरा॥ ३५॥

राजन! यमुना के तट सुंदर, सुंदर गोवर्धन देखा।
हुए प्रसन्न कृष्ण-बलदाऊ, ज्यों ही वृन्दावन देखा॥ ३६॥

वृन्दावन में करते कान्हा गोकुल जैसी लीलाएं।
थोड़े बड़े हुए तो जंगल में बछड़ों को ले जाएं॥ ३७॥

ग्वाल-बाल के साथ खेल की सामग्री भी ले जाते।
वहीं पास में बछड़े चरते, वहीं खेल खेले जाते॥ ३८॥

वंशी कभी बजाते, गोफन से ढेले फेंके जाते।
गाय-बैल बनते बनावटी, फिर पैजनियां खनकाते॥ ३९॥

कभी सांड बन लड़ते, सांडों के जैसी हुंकार भरें।
कोयल और मोर बन कर, उनकी बोली की नकल करें॥ ४०॥

एक दिवस जब राम-कृष्ण बछड़ों के साथ गए वन में।
आया असुर एक, वध करने की इच्छा लेकर मन में॥ ४१॥

दैत्य बन गया बछड़ा, प्रभु ने बलदाऊ को दिखलाया।
पास गए उसके जैसे, सुन्दर बछड़ा मन को भाया॥ ४२॥

वत्सासुर के पैर-पूंछ को पकड़ घुमाया अंबर में।
हुआ दुष्ट निष्प्राण, भूमि पर फेंका प्रभु ने पल भर में॥
महाकाय वह दैत्य गिरा कैंथा के पेड़ों के ऊपर।
चूर-चूर हो गए वृक्ष भी, उसके साथ गिरे भूपर॥ ४३॥

ग्वाल-बाल थे चकित, प्रशंसा की प्रभु की सब हर्षाये।
देवों ने आनंदित होकर सुमन गगन से बरसाये॥ ४४॥

सब लोकों के रखवाले, करते बछड़ों की रखवाली।
बांध कलेवा साथ निकलते, बछड़े बड़े भाग्यशाली॥ ४५॥

एक दिवस तालाब गए जब ग्वाल-बाल लेकर बछड़े।
उन्हें पिलाया पानी, खुद भी पिया वहीं हो गए खड़े॥ ४६॥

दिखा जलाशय में ग्वालों को, जीव एक विस्मयकारी।
जैसे इन्द्र-वज्र से कटकर आया शैल शिखर भारी॥ ४७॥

वह था बली बकासुर, जिसकी तीक्ष्ण चौंच थी बहुत बड़ी।
दिखे कृष्ण तो, पकड़ चौंच से, निगल गया वह उसी घड़ी॥ ४८॥

कृष्ण गए मुंह में तो सब ग्वालों ने खोई चेतनता।
प्राणों के जाते ही जैसा हाल इन्द्रियों का बनता॥ ४९॥

लोक पितामह ब्रह्मा के भी पिता, कृष्ण, गोपाल बनें।
गए गले में बक के खूब तपाया उसके काल बनें॥
बक ने उगला शीघ्र, आग से जैसे उसका कंठ जला।
फिर अपनी चौंच से कृष्ण पर करने तीव्र प्रहार चला॥ ५०॥

मित्र कंस का यही चाहता था फिर से प्रभु को पकड़े।
प्रभु ने उसका ठौर पकड़कर कर चीरा उसको खड़े-खड़े॥
ग्वाल-बाल सब देख रहे थे, दूर खड़े प्रभु की लीला।
चीरा गया दुष्ट ऐसे-जैसे खस को जाता छीला॥ ५१॥

शंख, नगाड़े बजा सुरों ने स्तुति के स्तोत्र गाये।
बरसाये जब नंदन-वन के फूल ग्वाल सब चकराये॥ ५२॥

राम और ग्वालों से प्रभु, बगुले से पाकर त्राण मिले।
लगा कि ज्यों निश्चेष्ट इन्द्रियों को फिर वापस प्राण मिले॥

हर ग्वाले को गले लगाया, फिर बछड़े ले घर आये।
ग्वाल-बाल घटना के बारे में गोपों को बतलाये॥ ५३॥

गोप-गोपियां चकित हुए, सुन घटना का विवरण सारा।
कान्हा लगने लगा सभी को पहले से ज्यादा प्यारा॥
जो आता देखने कृष्ण को, सिर्फ देखता रह जाता।
और-और चाहता देखना, लेकिन तृप्ति नहीं पाता॥ ५४॥

हैं अति-भाग्यवान यह बालक, आपस में चर्चा करते।
जो इसका अनिष्ट चाहें, वे अपने पापों से मरते॥ ५५॥

आये असुर भयंकर लेकिन, इसे न क्षति पहुंचा पाये।
नष्ट हुए जिस तरह, पतंगा, अग्नि-शिखा में जल जाये॥ ५६॥

ब्रम्हवेत्ता के वचनों में निश्चित ही सत्यता रहे।
सब हो रहा प्रत्यक्ष, पूर्व में जो भी गर्गाचार्य कहे॥ ५७॥

नंद आदि सब गोपों की थी, प्रभु में इतनी तन्मयता।
जग की सारी व्यथा-कथा का उन्हें न होता अता-पता॥ ५८॥

सेतु बनाते, छिपते-मिलते, मर्कट जैसा नृत्य करें।
अपनी बालोचित लीला से प्रभु ब्रज को कृतकृत्य करें॥ ५९॥

बारहवां अध्याय

अघासुर-उद्धार

बोले श्रीशुक - राजन! एक दिवस प्रभु कुछ जल्दी जागे।
श्रृंगी बजा जगाया ग्वालों को, वे भी जल्दी भागे॥
समझ गए सब ग्वाल, कलेवा होगा आज वहीं वन में।
बछड़ों को आगे कर निकले, थी कुछ उत्सुकता मन में॥ १॥

चले कृष्ण के साथ हजारों, उनके प्रेमी बाल-सखा।
साथ किसी ने रखी बांसुरी और किसी ने बेत रखा॥ २॥

कान्हा के बछड़ों में सबने, मिला दिए अपने बछड़े।
कभी दौड़ते यहां-वहां, फिर कभी खेलते खड़े-खड़े॥ ३॥

पहन रखे थे यद्यपि कांच, स्वर्ण, मणि, घुंघची के गहने।
पर ग्वालों ने पंख, फूल, फल, पत्तों के गहने पहने॥ ४॥

लेते चुरा किसी का छींका, बेत, बांसुरी यदि पाते।
और मांगने पर नट जाते, इस-उस को देते जाते॥ ५॥

कान्हा यदि वन को निहारते, हो जाते थोड़ा आगे।
होड़ लगा कर प्रभु को छूने, सब आते भागे-भागे॥ ६॥

हर्षित होते कुहू-कुहू कह, भोंरों-सा गुन-गुन करके।
श्रृंगी बजा कभी खुश होते, कभी बांसुरी सुन करके॥ ७॥

चले हंस की चाल, और कुछ दौड़ें छाया के पीछे।
नाचें बनकर मोर कभी, बगुला जैसी आंखें मीचे॥ ८॥

पूंछ खींच कोई बंदर की, नकल करें बंदर वाली।
चढ़ें पेड़ पर बंदर जैसे, फिर कूदें डाली-डाली॥ ९॥

कुछ खेलते 'छपाक' और दादुर-सी उछल-कूद करते।
प्रतिछबि देख कई खुश होते, पर कुछ प्रतिध्वनि से डरते॥ १०॥

ज्ञानी सन्तों को प्रभु की छबि, ब्रह्मानंद प्रदान करे।
दास्य भाव से भजने वालों के सारे दुख-दैन्य हरे॥
बालक, माने जिनकी आंखों पर माया की छाया है।
प्रभु संग खेल रहे ग्वालों ने सच्चा पुण्य कमाया है॥ ११॥

जन्मों तक तप करके मुनिगण विविध सिद्धियां पा जायें।
उनके लिए न होता संभव, प्रभु की कृपा धूलि-पायें॥
खेलें खेल, करें रक्षा, जो हैं इस जग के रखवाले।
उनकी महिमा कौन जानता, कितने भाग्यवान ग्वाले॥ १२॥

वहां अघासुर आया, उसने देखी ग्वालों की क्रीड़ा।
देख-ग्वाल बालों का सुख, राक्षस को हुई बहुत पीड़ा॥
देव पिये थे अमृत, फिर भी इस राक्षस से डरते थे।
मारा जाये किसी तरह बस, यही प्रतीक्षा करते थे॥ १३॥

उसे कंस ने भेजा था, बक और पूतना का भाई।
देख कृष्ण को उसे पूतना-बक की मृत्यु याद आई॥
सोचा उसने वध इसका, ग्वालों के साथ किया जाये।
बदला बहिन और भाई के वध का आज लिया जाये॥ १४॥

मैं मारूंगा, साथ कृष्ण के, ग्वाल-बाल बछड़े सारे।
मर जायेंगे ब्रज के वासी सारे, इस दुख के मारे॥
प्राण निकलते ही, जैसे प्राणी निर्जीव कहा जाता।
पुत्र प्राण हैं, नहीं जियेंगे इनके बिना पिता-माता॥ १५॥

ऐसा सोच अघासुर ने अजगर का रूप किया धारण।
योजन भर लम्बा शरीर, पर्वत-सा रूप असाधारण॥
सारे ग्वालों को खाने, था दुष्ट मार्ग में शांत पड़ा।
गुफा-द्वार सा खोल रखा था, उसने मुंह का द्वार बड़ा॥ १६॥

धरती से बादल तक फैले ओंठ दुष्ट के बहुत बड़े।
दाढ़ें शैल-शिखर के जैसी, कंदराओं जैसे जबड़े॥
मुख में अंधकार था, आंखों में जैसे दावानल हो।
सांसें आंधी-सी, जिह्वा ज्यों बिछा भूमि पर मखमल हो॥ १७॥

ग्वाले, अजगर को वृन्दावन का ही एक दृश्य समझे।
कौतुक से उत्प्रेक्षा करके, अजगर के सदृश्य समझे॥ १८॥

अजगर जैसा दिखता है यह दृश्य, एक ग्वाला बोला।
नहीं लग रहा क्या ? हम सबको, खाने को हो मुंह खोला॥ १९॥

बादल में दिख रही ओंठ की आकृति सूरज के कारण।
छाया बना रही धरती पर निचला ओंठ असाधारण॥ २०॥

एक ग्वाल बोला - दायें-बायें हैं बड़ी कंदरायें।
वे अजगर के जबड़े की आकृति से बहुत मेल खायें॥
एक पंक्ति से खड़े हुए ये शैल शिखर दिखते ऐसे।
किसी बड़े अजगर की ऊँची-ऊँची दाढ़ें हों जैसे॥ २१॥

कहा एक ने सड़क लग रही जैसे जिह्वा अजगर की।
गिरि श्रृगों के बीच अंधेरा, छबि है मुख के अंदर की॥ २२॥

कहा एक ने लगता है, जंगल में आग जल रही है।
इसीलिए कुछ गरम और कुछ तीखी हवा चल रही है।
जले हुए जीवों की भी दुर्गंध आ रही है ऐसी।
अजगर के पेट में मांस के सड़ने से आती जैसी॥ २३॥

इसके मुंह में अगर घुसे तो क्या यह सबको खायेगा।
ऐसा हुआ तो यह भी, बक जैसा ही मारा जायेगा।
देख-देख प्रभु के मुख की छबि, बक का वध करने वाली।
सब घुस गए दैत्य के मुख में, हंसकर बजा-बजा ताली॥ २४॥

ग्वालों ने समझा था अजगर को कोई भूसंरचना।
किंतु नहीं था संभव अघ का सर्वव्याप्त प्रभु से बचना॥

अजगर बने अधासुर को, जैसे ही प्रभु ने पहचाना।
निश्चय किया कि रोका जाये, ग्वालों का मुंह में जाना॥ २५॥

तब तक चले गए सब अंदर, मुख खोले था हत्यारा।
देख रहा था राह, पूतना-बक को था जिसने मारा॥ २६॥

अभय प्रदाता प्रभु ने सोचा, मैं हूं रखवाला जिनका।
चले गए अघ के शरीर में, जैसे ज्वाला में तिनका॥
इन ग्वालों के लिए भाग्य से यह कैसा अवसर आया।
द्रवित हो गए दया-सिंधु भी, हृदय दया से भर आया॥ २७॥

लगे सोचने प्रभु क्या करूं कि दुष्ट दैत्य जाये मारा।
और सुरक्षित रहे ग्वाल-बालों-बछड़ों का दल सारा॥
करने ग्वालों की रक्षा, उसके मुंह में प्रभु स्वयं घुसे।
प्रभु तो है सर्वज्ञ बाद में देंगे समुचित दण्ड उसे॥ २८॥

देख दृश्य यह देवताओं ने डर कर हाहाकार किया।
कंस आदि अघ के मित्रों ने अघ का जय-जयकार किया॥ २९॥

दुष्ट चाहता था सबको दाढ़ों के बीच कुचल डाले।
गला रुंधा प्रभु के स्वरूप से, पड़े सांस के भी लाले॥ ३०॥

प्रभु का फिर आकार बढ़ा तो, सांस निकलना बंद हुआ।
रहा छटपटाता थोड़ा-सा, फिर शरीर निष्पंद हुआ॥
उलट गयी आंखें, दबाव के कारण ब्रह्मरन्ध्र फूटा।
उसी छिद्र से प्राण पखेरू उड़े, देह-बंधन छूटा॥ ३१॥

अमृतमयी दृष्टि से प्रभु ने, जीवित किए ग्वाल-बछड़े।
प्रभु ले सबको साथ, दुष्ट के मुख से बाहर हुए खड़े॥ ३२॥

अजगर के पार्थिव शरीर से एक ज्योति बाहर आई।
दसों दिशाओं में उसका प्रकाश फैला, आभा छाई॥
थोड़ी देर रुकी नभ में, जैसे विद्युत होती घन में।
प्रभु जैसे ही बाहर निकले, समा गई उनके तन में॥ ३३॥

किया अघासुर का वध प्रभु ने, देवों पर उपकार किया।
सुमन वृष्टि सुर किये, पार्षदों ने प्रभु का जयकार किया॥
गंधर्वों ने गाया, लगी नाचने सभी अप्सरायें।
विद्याधर ने वाद्य बजाये, स्तुतिगान विप्र गायें॥ ३४॥

अद्‌भुत स्तुतियां, वाद्यों की ध्वनियां, प्रभु का जयकारा।
मंगल गीतों के गायन से गूंजा ब्रह्मलोक सारा॥
सुन ध्वनियां अपने वाहन पर चढ़कर ब्रह्माजी आये।
मनमोहन की महिमा देखी, स्वयं विधाता चकराये॥ ३५॥

राजन! सूख गयी जब भारी भरकम अजगर की चमड़ी।
बच्चे रहे खेलते ब्रज के, उसे समझ कर गुफा बड़ी॥ ३६॥

पांच वर्ष की वय में उनकी रक्षा की, अघ को मारा।
एक वर्ष के बाद बताया ग्वालों ने विवरण सारा॥ ३७॥

मूर्तिमान था पाप अघासुर, किंतु मोक्ष को प्राप्त हुआ।
इसमें अचरज नहीं महापापी को प्रभु ने स्वयं छुआ॥ ३८॥

सद्‌गति मिलती अगर मूर्ति भी, प्रभु की रखी रहे मन में।
मुक्ति न क्यों पाये, प्रभु खुद मौजूद रहे अघ के तन में॥ ३९॥

कहने लगे सूत ऋषियों से, नृपति परीक्षित थे ज्ञाता।
उन्हें पता था यदुनंदन ही हैं, उनके जीवन-दाता॥
इच्छुक थे वे सुनें सुधामय प्रभु की लीलाएं सारी।
प्रश्न किया, सुनकर अघ के वध की लीला विस्मयकारी॥ ४०॥

नृप ने पूछा - पांच वर्ष की वय में जब अघ को मारा।
एक वर्ष पश्चात् किस तरह प्रकट हुआ विवरण सारा॥ ४१॥

कौतूहल हो रहा, बतायें, यह क्यों हुआ महायोगी।
निश्चित ही इस घटना में भी प्रभु की कुछ माया होगी॥ ४२॥

हे गुरुदेव! आप मेरी शंका का उचित निदान करें।
भाग्यवान हैं, जो श्री मुख से कृष्ण कथामृत पान करें॥ ४३॥

कहा सूत जी ने, मुनि को नृप का यह प्रश्न बहुत भाया।
मुनि को प्रभु की लीलाओं का गूढ़ रहस्य याद आया॥
ध्यानावस्थित हुए कष्ट से, श्रम से, ब्रह्मज्ञान पाया।
नृपति परीक्षित को मुनि ने सारा रहस्य फिर समझाया॥ ४४॥

तेरहवां अध्याय

ब्रह्माजी का मोह और उसका नाश

बोले श्रीशुक - राजन! तुम हो प्रभु के भक्त भाग्यशाली।
तुम्हें कृष्ण-लीलाएं सुनकर तृप्ति नहीं होने वाली॥
प्रश्न तुम्हारे लीलाओं को, रसमय और बनाते हैं।
साथ-साथ श्रोता के, इससे वक्ता भी सुख पाते हैं॥ १॥

नित्य नया रस देती है, प्रभु-लीला, संतों की वाणी।
जैसे नारी की चर्चा में, रस पाते लम्पट प्राणी॥ २॥

राजन! सुनिये चित्त लगाकर प्रभु-लीला विस्मयकारी।
देते हैं दयालु वक्ता, शिष्यों को गुप्त जानकारी॥ ३॥

अघ का मुख था मृत्यु, बचाकर सबको प्रभु बाहर लाये।
फिर यमुना के रेतीले तट पर ले जाकर समझाये॥४॥

बोले-यमुना के अति रम्य पुलिन हैं, स्वच्छ रेत वाले।
सभी तरह के खेल, खेल सकते है यहां गोप-ग्वाले॥५॥

भूख लग रही है अब आओ, यहीं बैठ भोजन कर लें।
तब तक बछड़े पानी पीलें, तट की नरम-घास चर लें॥६॥

यही ठीक है, यही ठीक है, सारे ग्वाल-बाल बोले।
बछड़ों को छोड़ा चरने को, फिर अपने छींके खोले॥७॥

बैठे थे श्रीकृष्ण बीच में, चारों ओर गोप-ग्वाले।
प्रभु पर सबकी दृष्टि जमी थी, प्रभु थे सबके रखवाले॥
मध्य ग्वाल-मंडल के बैठे, प्रभु शोभायमान कैसे।
पंखड़ियों में कमल कर्णिका होती विद्यमान जैसे॥८॥

पत्थर, पत्ते, पुष्प, छाल, छींके, जिसने जो भी पाया।
उसे बनाकर पात्र, साथ में जो लाये थे, वह खाया॥९॥

अपनी-अपनी रुचि बतलाते, सब भोजन करते जाते।
हंसते और हंसाते, होते लोटपोट खाते-खाते॥१०॥

मुरली बांधे कटि में श्रृंगी और बेत भी पास रखे।
प्रभु अचार के साथ हाथ में दही-भात का ग्रास रखे॥
मध्य विराजे थे ग्वालों के, सबसे मनो-विनोद करें।
प्रमुदित थे वे स्वयं, सभी ग्वालों के मन में मोद भरें॥
करने तृप्त जिन्हें याज्ञिक, यज्ञों का आयोजन करते।
चकित हुए देवता देख, ग्वालों के सँग भोजन करते॥११॥

हे राजन! तन्मय थे सब हंसते-हंसते भोजन करते।
दूर गए बछड़े जंगल में, हरी घास चरते-चरते॥१२॥

बछड़े गायब देख डरे ग्वालों को प्रभु ने समझाया।
तुम सब भोजन करो, अभी मैं बछड़ों को लेकर आया॥१३॥

ऐसा कह कर कृष्ण हाथ में कौर लिए ही निकल पड़े।
गुफा, पहाड़, कुंज, वन, गह्वर में प्रभु ने ढूढ़े बछड़े॥१४॥

ब्रह्मा जी ने देखी थी अघ के वध की लीला सारी।
बाल-कृष्ण की इन लीलाओं से थे वे विस्मित भारी॥
थे चाहते देखना लीला, प्रभु हैं क्या करने वाले।
छुपा लिए थे पहले बछड़े, फिर सब ग्वाल छुपा डाले॥
हुए कमल से पैदा ब्रह्माजी, जड़ की संतान हुए।
करके सारा खेल वहां से ब्रह्मा अंतर्धान हुए॥१५॥

बछड़े नहीं मिले जब प्रभु को, यमुना-तट वापस आये।
देखा यहां-वहां, यमुना-तट से ग्वाले गायब पाये॥१६॥

नहीं मिले जब बछड़े-ग्वाले, जाना जग के ज्ञाता ने।
छुपा रखा है ग्वालों-बछड़ों को तो स्वयं विधाता ने॥१७॥

माताएं खुश रहें, रहें आनंदित ब्रह्मा इस कारण।
प्रभु ने सारे बछड़ों-ग्वालों का कर लिया रूप धारण॥१८॥

राजन! ग्वाले-बछड़े जितने थे, जैसी उनकी काया।
जिसकी जैसी छड़ी, सींग, वंशी, छींका वैसा पाया॥
जैसे वस्त्राभूषण जिसके, जैसी रहीं अवस्थायें।
जैसा रूप, स्वभाव, नाम, गुण, जैसे चलें, पियें, खायें॥
वैसे ही, उतने ही रूपों को प्रभु ने था प्रकटाया।
'विष्णु रूप है जगत' हुआ चरितार्थ, वेद ने जो गाया॥१९॥

आत्म रूप ग्वालों-बछड़ों में, नहीं कमी कुछ सज-धज में।
करते हुए विविध क्रीड़ाएं, हुए प्रविष्ठ कृष्ण ब्रज में॥ २०॥

राजन! अपनी-अपनी गोशाला पहुंचे बछड़े सारे।
भिन्न-भिन्न घर में जा पहुंचे, प्रभु खुद ग्वाल रूप धारे॥ २१॥

सुनी तान वंशी की तो दौड़ी आईं सब माताएं।
ग्वाल रूपधारी कान्हा को उठा हृदय से चिपकाएं॥
वात्सल्य के कारण बहने लगा दूध ललनाओं का।
मय से मादक, मधुर सुधा से, दूध पियें प्रभु मांओं का॥ २२॥

राजन! ग्वाल रूप में हर दिन, प्रभु वन से वापस आते।
अपनी बाल-सुलभ लीलाओं से मांओं को हर्षाते॥
उबटन लगा स्नान करवातीं, वस्त्राभूषण पहनातीं।
भोजन करवातीं, काजल का लगा ढिठौना, सुख पातीं॥ २३॥

वन से जल्दी-जल्दी चरकर वापस आ जातीं गायें।
सुनते ही हुंकार वत्स-रूपी प्रभु, दौड़ पास जायें॥
गायें चाटें उन्हें, दूध की अपने आप बहे धारा।
थी स्नेह की अधिकता, बछड़ा लगने लगा और प्यारा॥ २४॥

थी अनभिज्ञ कृष्ण-लीला से गायें और गोपिकाएं।
फिर भी असली पुत्रों से प्रभु, कुछ ज्यादा ममता पाएं॥
पुत्र बने प्रभु यद्यपि पूरा, प्रेम भाव दिखलाते थे।
मोह रहित प्रभु, पुत्र-मोह का बंधन बंधा न पाते थे॥ २५॥

प्रेम-लता ब्रजवासी जन की दिन-प्रतिदिन परवान चढ़ी।
कान्हा के जैसी ही, अब बच्चों के प्रति भी प्रीत बढ़ी॥ २६॥

एक वर्ष तक सर्वात्मा प्रभु थे बछड़ा भी, ग्वाला भी।
उनकी क्रीड़ाओं से आनंदित थे वन भी, गोशाला भी॥ २७॥

होने को था साल, न था संदेह किसी के भी मन में।
एक दिवस बलदाऊ भी सँग आये, बछड़े ले वन में॥ २८॥

गोवर्धन पर्वत पर गायों को लेकर थे गोप खड़े।
गायों ने देखा पर्वत के नीचे, विचर रहे बछड़े॥ २९॥

बछड़ों को जैसे ही देखा, तो वात्सल्य उमड़ आया।
सुध-बुध खोकर दौड़ीं गायें, जैसा जहां मार्ग पाया॥
पूंछ और सिर ऊपर करके ऐसी दौड़ी, दूध बहे।
तेजी ऐसी थी, धरती पर, चार नहीं दो पैर रहे॥ ३०॥

जिन गायों से जन्म लिए थे, इस दौरान नए बछड़े।
वे गायें भी दौड़ीं आयीं, छोटे से प्रिय लगे बड़े॥
लगी पिलाने दूध अंग-प्रत्यंग चाटतीं थीं ऐसे।
प्रेम विवश हो, बछड़े को उदरस्थ कर रहीं हों जैसे॥ ३१॥

नहीं रुकीं गाये तो गोप हुए लज्जित, गुस्सा आया।
पर जब नीचे आये तो बच्चों को वहां खड़ा पाया॥ ३२॥

बच्चों को देखा तो भूले क्रोध, प्रेम उन पर छाया।
उन्हें उठाया, माथा सूंघा, गले लगाया, सुख पाया॥ ३३॥

वृद्ध-गोप बच्चों का आलिंगन करते, निहाल होते।
बड़े कष्ट से छोड़ा उनको, घर लौटे रोते-रोते॥ ३४॥

दाऊ को गोपों-गायों का परिवर्तित व्यवहार दिखा।
बच्चों के प्रति बूढ़े गोपों के मन में अति-प्यार दिखा॥

दूध पिलाती, पीना छोड़ चुके बछड़ों को क्यों गायें।
ज्ञात न था कारण बलदाऊ, सोच-सोच कर रह जायें॥ ३५॥

जैसा प्रेम कृष्ण से करते थे सब गोप-गोपिकाएं।
ग्वाले-बछड़े भी गोपों-गायों से वही प्रेम पायें॥ ३६॥

दैत्य-देव-मानव किसकी माया मैं समझ नहीं पाया।
मुझको भी जो मोहित करले, वह माया प्रभु की माया॥ ३७॥

ज्ञान दृष्टि से देखा बलदाऊ ने तभी समझ पाये।
ग्वाल-बाल बछड़ों में उनको बस श्रीकृष्ण नजर आये॥ ३८॥

बोले बलदाऊ प्रभु से यह कितने रूप बनाये हो।
देव नहीं, ऋषि नहीं, ग्वाल-बछड़ों में आप समाये हो॥
इस लीला का क्या कारण है, सब बतलाओ सही-सही।
तब प्रभु ने बलदाऊ से, ब्रह्मा की सब करतूत कही॥ ३९॥

ब्रह्मा लौटे क्षण में लेकिन उनका अलग काल होता।
जब तक क्षण उनका होता, धरती पर एक साल होता॥
देखा ब्रह्मा ने प्रभु के सँग, ग्वाले बछड़े हैं वन में।
यह कैसे संभव है, ब्रह्मा ने सोचा मन ही मन में॥ ४०॥

गोकुल में जितने भी ग्वाले थे, जितने भी थे बछड़े।
वे तो मेरी माया की शैया पर अभी अचेत पड़े॥ ४१॥

असली ग्वालों-बछड़ों को तो मैंने स्वयं छिपाया है।
एक साल से वन में खेलें, किसने इन्हें बनाया है॥ ४२॥

दोनों जगह समान दृश्य था, ज्ञान-दृष्टि भी नहीं चली।
समझ न पाये स्वयं विधाता, असली कौन, कौन नकली॥ ४३॥

जिन पर मोहित विश्व समूचा, जिन्हें न छू सकती माया।
ब्रह्माजी खुद हुए विमोहित, जो कुछ किया, वही पाया॥ ४४॥

जैसे जुगनू का प्रकाश, दिन में अस्तित्व-हीन होता।
और रात्रि के अंधकार में कुहरा खुद विलीन होता॥
महापुरुष पर किसी क्षुद्र की माया सफल नहीं होती।
कम होता प्रभाव उसका, उसकी माया प्रभाव खोती॥ ४५॥

ब्रह्मा ने देखा क्षण भर में, सारे ग्वाल-बाल-बछड़े।
श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी बनकर सब श्रीकृष्ण खड़े॥ ४६॥

शंख, चक्र दो कर में, दो में करके कमल, गदा धारण।
कुंडल, मुकुट, किरीट, हार, मालाएं रूप-असाधारण॥ ४७॥

था उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह, स्वर्णिम रेखा।
कंगन दिखे कलाई में, बाहों में बाहुबंध देखा॥
शोभित थी करधनी कमर में, पग में नूपुर और कड़े।
हर उंगली में थी अंगूठियां, जिनमें सुन्दर रत्न जड़े॥ ४८॥

नख से शिख तक, सब अंगों में कोमल तुलसी मालायें।
भक्त भाग्यशाली हैं, प्रभु को यह मालाएं पहनायें॥ ४९॥

थी मुस्कान चांदनी जैसी, उज्जवल एवं सुखदाई।
नेत्रों में थोड़ा कटाक्ष था, थोड़ी सी थी अरुणाई॥
लगा रजोगुण बढ़ा रहा है, भक्तों में अभिलाषाएं।
और सत्व गुण द्वारा पूरी भी सब की सब हो जाएं॥ ५०॥

दिखे कई ब्रह्मा, ब्रह्मा को, उनके साथ जीवधारी।
अलग-अलग प्रभु की उपासना करती दिखी सृष्टि सारी॥ ५१॥

दिखी सिद्धियां-अणिमा-महिमा आदि सभी प्रभु को घेरे।
विभूतियां एवं चौबीसों-तत्व करें प्रभु के फेरे॥५२॥

काल, कामना, संस्कार, फल, सारे मूर्तिमान होकर।
प्रभु की उपासना में रत हैं, सब अपनी महिमा खोकर॥५३॥

हैं अनंत आनंद, एक रस, सत्य, परे सब कालों से।
उनकी महिमा रहे अछूती, तत्व जानने वालों से॥५४॥

परम पिता है कृष्ण, वही सब रूपों को धारित करते।
सचराचर में वे अपने प्रकाश को विस्तारित करते॥५५॥

क्षुब्ध हुई इंद्रियां सभी ग्यारह, ब्रह्मा थे अचरज में।
तेज रहित हो मौन खड़े थे, मूर्ति खड़ी जैसे ब्रज में॥५६॥

राजन! प्रभु हैं स्वयं प्रकाशित, महिमामय, तर्क से परे।
मायातीत नित्य आनंदित, प्रभु का वर्णन कौन करे॥
इसीलिए वेदान्त भिन्न का ही निषेध करते रहते।
करते हैं संकेत मात्र कुछ, लेकिन नेति-नेति कहते॥
नेत्र बंद हो गए विधाता के कुछ समझ नहीं आया।
ब्रह्मा को मोहित पाकर, प्रभु ने समेट ली निज माया॥५७॥

ब्रह्मा हुए सचेत जिस तरह मृत शरीर जीवन पाता।
आंखें खोली, खुद को देखा, जुड़ा जगत से फिर नाता॥५८॥

पहले दिखी दिशाएं उसके बाद मनोहर वन देखा।
सब जीवों को जीवन देने वाला वृन्दावन देखा॥५९॥

स्वाभाविक वैरी भी मिलकर रहते, करते द्वेष नहीं।
प्रभु की लीला भूमि, क्रोध-तृष्णा को मिले प्रवेश नहीं॥६०॥

बने हुए हैं ग्वाले, वन में घूम रहे जग के स्वामी।
ग्वालों-बछड़ों को तलाशते, सर्वेश्वर अंतर्यामी॥
एकमेव एवं अनंत हैं, सारे जग के रखवाले।
दही भात का कौर लिए वन में ढूढ़ें बछड़े-ग्वाले॥६१॥

ब्रह्मा ने प्रभु को देखा तो हंस छोड़ नीचे कूदे।
कर दण्डवत प्रणाम, भूमि पर लेट गए आँखें मूंदे॥
अग्रभाग चारों मुकुटों का चरणों में रखकर रोये।
आनंदित हो अश्रुधार से प्रभु के चरण-कमल धोये॥६२॥

बार-बार स्मरण करें ब्रह्माजी प्रभु की लीलाएं।
बार-बार चरणों में गिरते, फिर उठते फिर गिर जाएं॥६३॥

फिर धीरे से उठे विधाता, थोड़ा अश्रु-प्रवाह रुका।
हो विनम्र-एकाग्र, सामने प्रभु के, चारों शीश झुका॥
प्रभु है मुक्ति प्रदाता, सारे जग को प्रेम प्रदान करें।
हाथ जोड़ गद्‌गद् वाणी में ब्रह्मा स्तुति-गान करें॥६४॥

चौदहवां अध्याय

ब्रह्माजी के द्वारा स्तुति

ब्रह्मा बोले - नील मेघ-सा वर्ण, तड़ित-सा पीताम्बर।
कानों में कुंडल, घुंघची की माला, मोर पंख सिर पर॥
मुख पर कांति अनोखी, वक्षस्थल पर शोभित वनमाला।
नन्हीं एक हथेली में है, कौर दही-चांवल वाला॥
बेत बगल में, सींग और बाँसुरी कमर में कर धारण।
चरण-कमल सुकुमार, बनाया प्रभु ने रूप असाधारण॥१॥

पंच तत्व से रहित, सत्वमय, प्रभु का यह श्रीविग्रह है।
मूर्तिमान है इच्छा प्रभु की, मुझ पर बड़ा अनुग्रह है॥
समाधिस्थ होकर भी कोई, प्रभु-महिमा कैसे जाने।
प्रभु की कृपा जरूरी होती है, सुखानुभूति पाने॥ २॥

ज्ञान प्राप्ति को छोड़, साधु-संतों से लीला-श्रवण करें।
मन-वाणी-काया से हो विनम्र, सात्विक आचरण करें॥
जो सत्संग करें, प्रभु की लीला में नित्य लीन रहते।
अखिल विश्व के स्वामी हैं प्रभु, पर उनके अधीन रहते॥ ३॥

होता है कल्याण उन्हीं का, भक्ति-मार्ग जो अपनाते।
भक्ति छोड़ कर, ज्ञान प्राप्ति में, जो लग जाते, दुख पाते॥
भक्ति छोड़ कर, करे निरंतर श्रम जो सिर्फ ज्ञान पानें।
कूट-कूट भूसी को, भूसी पायें, नहीं मिलें दानें॥ ४॥

लीलाधाम! हुए हैं पहले, जग में बहुतेरे योगी।
समझ गए जो, सिर्फ योग से प्रभु की प्राप्ति नहीं होगी॥
किए समर्पित प्रभु चरणों में लौकिक-वैदिक कर्म सभी।
डूब गए जब लीलाओं में, मिली आपकी भक्ति तभी॥
भक्ति मिली तो योगीगण ने फिर प्रभु का स्वरूप जाना।
दर्शन मिले, मिली सद्गति, आसान हुआ प्रभु-पद पाना॥ ५॥

हे अनंत! निर्गुण स्वरूप को अंतःकरण जान सकता।
है आवरण-विहीन, हृदय तक सीमित उसकी व्यापकता॥
निर्गुण का साक्षात्कार मन को आनंदित करता है।
है अज्ञेय, हृदय को ही अपने प्रकाश से भरता है॥ ६॥

हिमकण, अणु, तारे, नक्षत्रों को समर्थ गिन सकते हैं।
सगुण रूप के गुण को गिनने में पर सारे थकते हैं॥

करने को कल्याण विश्व का, प्रभु साकार रूप धरते।
अपनी महिमा छुपा आप भक्तों को आनंदित करते॥ ७॥

क्षण-क्षण प्रभु की कृपा बनी है, जिसका यह विचार होता।
सुख-दुख को प्रारब्ध मानता, जो जन निर्विकार होता॥
कर्म-वचन-मन प्रभु को अर्पित करता, वही पार पाता।
ज्यों सम्पत्ति पिता की, उसका सुत ही साधिकार पाता॥ ८॥

हे प्रभु! मेरी रही कुटिलता, फैलाई अपनी माया।
मायापति है आप, आपके आगे कौन ठहर पाया॥
नहीं आपके आगे मैं कुछ, प्रभु स्वीकार करें विनती।
प्रखर अग्नि के आगे छोटी चिन्गारी की क्या गिनती॥ ९॥

खुद को कर्ता समझा जग का, जन्म रजो-गुण से पाया।
माया और मोह का अंधकार था आंखों पर छाया॥
भृत्य आपका, हूँ अधीन आपके, आप जग के स्वामी।
मुझ पर कृपा करो प्रभु, मुझको क्षमा करो अंतर्यामी॥ १०॥

प्रभु मेरा ब्रह्माण्ड बहुत सीमित जैसे मेरी काया।
अहंकार, मन, बुद्धि, पंच-भूतों का आच्छादन छाया॥
रहते हैं ब्रह्माण्ड आपके रोम-रोम में प्रभु ऐसे।
छिद्रों से आती किरणों में, रज के अणु उड़ते जैसे॥ ११॥

शिशु गर्भस्थ अगर माता को हाथों-पैरों से मारे।
माता को अपराध नहीं लगते, सुत के करतब सारे॥
भगवन् हैं आपकी कुक्षि में सभी वस्तु, संसृति सारी।
क्षमा करें, हे क्षमा-सिंधु, हम सिर्फ क्षमा के अधिकारी॥ १२॥

श्रुतियां कहतीं, प्रलय हुआ, जलमग्न हुई संसृति सारी।
नारायण के नाभिकमल से, जन्मे चार शीशधारी॥
श्रुतियों में वर्णित है मेरा और आपका जब नाता।
हे प्रभु! फिर क्यों मुझे आपका पुत्र नहीं माना जाता॥ १३॥

हे नारायण! नार-जीव, रक्षक को अयन कहा जाता।
एक अयन का अर्थ प्रवर्तक, सबके आप पिता-माता॥
नार-जीव है, अयन जानने वाला, आप महाज्ञाता।
नीर निवासी होने से नारायण नाम लिया जाता॥ १४॥

जल में यदि प्रभु थे, तो उनको, मैं क्यों नहीं देख पाया।
सौ वर्षों तक कमल नाल से नीचे गया और आया॥
मैंने जब तप किया, हुए दर्शन मुझको हृदस्थल में।
लेकिन अंतर्धान हो गए परमपिता कुछ ही पल में॥
प्रभु माया से परे, किंतु दिखलाते हैं, अपनी माया।
देवि-यशोदा को शरीर में जगत समूचा दिखलाया॥
हे मायापति! मैं तो केवल इतना सार समझ पाया।
यह सचराचर विश्व आपकी माया है, केवल माया॥ १६॥

जैसा बाहर है, वैसा मुख में संसार नजर आया।
माता को जो समझ न आई, यह ही है प्रभु की माया॥ १७॥

खेल जगत को आज आपने मेरे आगे दिखलाया।
आप स्वयं बन गए ग्वाल, बछड़े, यह थी प्रभु की माया॥
फिर हो गए चतुर्भुज सारे, छींके, बेत, ग्वाल, बछड़े।
मेरे साथ तत्व सब-के-सब, सेवा में करबद्ध खड़े॥
अलग-अलग ब्रह्माण्डों की दिखलाकर अलग-अलग झांकी।
अब धारण कर ली है प्रभु ने छबि जो अद्वितीय, बांकी॥ १८॥

प्रभु! रहते जो लोग आपके इस स्वरूप से अनजाने।
माया के परदे के कारण, प्रभु को जीव रूप माने॥
ब्रह्मा को रचयिता सृष्टि का, हरि को जग-पालक कहते।
संहारक मानते रूद्र को, माया के भ्रम में रहते॥ १९॥

आप अजन्मा हैं, सुर, नर, मुनि, पशु, जलचर का रूप धरें।
लें अवतार, हरें सज्जन का दुख, दुष्टों का नाश करें॥ २०॥

योगेश्वर! जब लेती है विस्तार अनंत योगमाया।
कहां, किसलिए, कब, कितनी होती, कब कौन समझ पाया॥ २१॥

जगत असत्य, स्वप्नवत है, अज्ञान-युक्त, दुख का दाता।
परमानंद-स्वरूप आप हैं, सत्य, अनंत, परम-ज्ञाता॥
माया से उत्पन्न हुआ जग, माया में खो जाता है।
सत्ता है आपकी इसलिए सच का भ्रम हो जाता है॥ २२॥

आदिपुरुष हैं, आत्मरूप हैं, पूर्ण सत्य हैं, जगस्वामी।
हैं प्रकाश का श्रोत, अन्य सारे प्रकाश हैं अनुगामी॥
हैं आनंद-अखंड अमृतमय, अलख-निरंजन अविकारी।
नित्य पूर्ण हैं, एकमेव हैं, कम हैं उपाधियां सारी॥ २३॥

सबका है स्वरूप प्रभु जैसा, पर कुछ तत्व-ज्ञान पाते।
दिव्य दृष्टि पा जाते हैं वे, जो गुरु रवि समान पाते॥
दिव्य दृष्टि से जब मनुष्य खुद से साक्षात्कार करते।
वे मनुष्य ही यह असत्य का सागर सदा पार करते॥ २४॥

प्रभु-स्वरूप को आत्मरूप में जो जन नहीं जान पाते।
नाम-रूप के यह प्रपंच उनको जीवन भर उलझाते॥
लेकिन भ्रम मिट जाता है, जैसे ही ज्ञान प्राप्त होता।
रस्सी में दिख रहे सांप का जैसे भय समाप्त होता॥ २५॥

मोक्ष और बंधन दोनों ही हैं बस मात्र कल्पनाएं।
यह केवल अज्ञान, उसी के यह दो नाम कहे जाएं॥
बंधन, मोक्ष समान, हो गया मिलन आत्मा से जिनका।
होता नहीं सूर्य में जैसे भेद रात का या दिन का॥ २६॥

आप आत्मा हैं, अज्ञानी नहीं आपको पहचानें।
आश्चर्य है वे शरीर को कैसे आत्म रूप मानें॥
भिन्न-भिन्न जगहों पर सारे मिल कर प्रभु को ढूढ़ रहे।
है बिडम्वना, नर तन पाया, किंतु मूढ़ के मूढ़ रहे॥ २७॥

हे प्रभु! आप रहा करते हैं सबके अंतःकरणों में।
सब कुछ तज कर संत, लगाते ध्यान आपके चरणों में॥
रस्सी है या सांप, विनिश्चय होता अपने आप नहीं।
सिर्फ संत-गण ही पहचानें, रस्सी है, यह साँप नहीं॥ २८॥

युगल-चरण-अम्बुज की अनुकम्पा का जो भी प्रसाद पाये।
अनुग्रहीत होकर प्रभु की महिमा का तत्व जान जाये॥
कोई साधन अन्य इसे पाने पर्याप्त नहीं होता।
तत्व-ज्ञान प्रभु की महिमा का, तप से प्राप्त नहीं होता॥ २९॥

अगले किसी जन्म में बन पशु-पक्षी प्रभु के पास रहूँ।
चरण-कमल की सेवा पाऊँ, मैं दासों का दास रहूँ॥ ३०॥

बड़े-बड़े यज्ञों ने प्रभु को नहीं पूर्णतः तृप्त किया।
बन बछड़ा-ग्वाला, गायों का, गोपिकाओं का दूध पिया॥
प्रभु, स्तन से अमृत जैसा पीकर दुग्ध तृप्ति पायें।
धन्य-धन्य है ब्रज की सारी, गायें और गोपिकाएं॥ ३१॥

धन्य-धन्य हैं, भाग्यवान हैं, नंद आदि सब ब्रजवासी।
जिनके सुहृद बने प्रभु, परमानंद, ब्रह्म, अज, अविनाशी॥ ३२॥

ग्यारह इन्द्रिय के होते हैं, ग्यारह देव अधिष्ठाता।
इन्हीं इन्द्रियों के माध्यम से उनको अमृत मिल जाता॥
पीते चरण-कमल का अमृत भर इन्द्रिय के प्यालों को।
धन्य-धन्य कहता हूँ, भाग्यवान ब्रजवासी ग्वालों को॥ ३३॥

यह होगा सौभाग्य अगर मैं, किसी योनि में ब्रज पाऊं।
और यहां आ किसी आपके, प्रेमी की पद रज पाऊं॥
प्रभु उनके सर्वस्व, चरण-रज उनकी, प्रभु की ही मानें।
युगों-युगों से श्रुतियां, लालायित हैं प्रभु की रज पानें॥ ३४॥

सेवा के बदले क्या फल पायेंगे ब्रजवासी सारे।
यह फल क्या कम है जो उनके रूप स्वयं प्रभु ने धारे॥
ऐसा ही फल क्रूर पूतना ने भी सपरिवार पाया।
यही देख कर मोहित हूँ मैं, यह कैसी प्रभु की माया॥
जिन ग्वालों ने तन, मन, धन, परिवार, गांव घर को छोड़ा।
उनसे होने उऋण मुझे इतना फल लगता है थोड़ा॥ ३५॥

राग-द्वेष अपहरण करे, निजगृह बंदीगृह बन जाता।
रहती बँधी मोह की बेड़ी, अगर न हो प्रभु से नाता॥ ३६॥

रहें दूर जग के प्रपंच से, पर जब मानव रूप धरें।
भक्तों को आनंदित करने, मानवीय आचरण करें॥ ३७॥

महिमा जाने कौन, न जाने कौन, सोचना व्यर्थ हुआ।
मेरा तन-मन-वचन जानने में महिमा, असमर्थ हुआ॥ ३८॥

हैं सर्वज्ञ, सर्वदृष्टा हैं, और कहूँ क्या हे स्वामी।
अपने लोक चले जाने की आज्ञा दें अंतर्यामी॥ ३९॥

बन कर सूर्य चमकते, जिससे यदुकुल-कमल वृद्धि पाये।
बनें चन्द्रमा, भूमि, विप्र, सुरगण, सागर समृद्धि पाये॥
प्रभु अधर्म के अंधकार को करके नष्ट प्रकाश करें।
भार-भूमि का बने राक्षसों का प्रभु आप विनाश करें॥
देवताओं के परम-पूज्य हैं, हे लीलाधर, यदुनंदन।
महाकल्प पर्यंत रहूंगा करता नमन और वंदन॥४०॥

बोले श्रीशुक - ऐसा कह कर जगसृष्टा ने नमन किया।
तीन बार करके परिक्रमा, सत्यलोक को गमन किया॥४१॥

बिदा किया ब्रह्मा को, वापस सब ग्वाले-बछड़े पाये।
उनको लेकर प्रभु वापस, यमुना जी के तट पर आये॥४२॥

प्राणाधार कृष्ण से बिछुड़े, वर्ष पूर्ण होने आया।
पर ग्वालों को लगा एक क्षण जैसा, थी प्रभु की माया॥४३॥

जीव जगत के, क्या-क्या नहीं भूलते माया के कारण।
आत्मतत्व तक को भूलें, माया की शक्ति असाधारण॥४४॥

स्वागत है, बोले सब ग्वाले, निकट कृष्ण को जब पाया।
आओ खाएं साथ एक भी कौर नहीं हमने खाया॥४५॥

हंसते हुए कृष्ण ने सबके साथ दही-चांवल खाया।
और लौटते हुए, अघासुर का ढांचा भी दिखलाया॥४६॥

तन पर थी रंगीन चित्रकारी, बालों में फूल सजे।
उत्सव-सा माहौल, कभी श्रृंगी तो वंशी कभी बजे॥
लेकर नाम पुकारें बछड़ों को, उनका सिर सहलाते।
पीछे-पीछे ग्वाल-बाल थे, प्रभु की यश-गाथा गाते॥
खड़ी राह में बालाएं, जिसको देखें, सुध खो जाये।
आनंदित श्रीकृष्ण लौटकर, इस प्रकार ब्रज में आये॥४७॥

ग्वालों ने घर जा बतलाया, अघ-वध का विवरण सारा।
नंद-पुत्र ने उन्हें बचाने, भारी अजगर को मारा॥४८॥

क्यों था ब्रज-निवासियों का, प्रभु के प्रति प्रेम असाधारण।
पूछा राजा ने श्रीशुक से, बतलाएं इसका कारण॥
अपने पुत्रों से भी उनको पहले इतना प्रेम न था।
कृष्ण पराये थे फिर भी परवान चढ़ी क्यों प्रेम कथा॥४९॥

बोले श्रीशुक - राजन! सभी आत्मा को अति-प्रिय माने।
और आत्मा प्रेम किया करती सुत-धन से अनजाने॥५०॥

राजन! प्राणी को खुद से ही प्रेम अधिकतम होता है।
धन, सुत, गृह से होता है पर, अपने से कम होता है॥५१॥

जो माने आत्मा देह को, उनको अतिप्रिय देह रहे।
तन से संबंधित लोगों से, तन से कुछ कम स्नेह रहे॥५२॥

पर जब आता समझ, देह मेरी है, पर मैं देह नहीं।
तब आत्मा सदृश्य देह से रहता उतना स्नेह नहीं॥
इसीलिए तो जीर्ण-शीर्ण जब मानव का तन होता है।
बढ़ जाती जिजीविषा, ज्यादा जीने का मन होता है॥५३॥

इससे होता सिद्ध आत्मा ही होती सबसे प्यारी।
और उसी के कारण प्यारी लगती हमें सृष्टि सारी॥५४॥

आत्माओं के आत्मरूप प्रभु ने नर रूप किया धारण।
सबको सर्वाधिक प्रिय लगते थे श्रीकृष्ण इसी कारण॥५५॥

विश्व चराचर स्वयं कृष्ण हैं, जिन्हें स्वरूप समझ आया।
कृष्ण रूप में, ईश्वर के सब रूपों को शामिल पाया॥५६॥

हर पदार्थ का कारण होता, प्रभु हैं कारण के कारण।
प्रभु से भिन्न पदार्थ, किस तरह होगा इसका निर्धारण॥५७॥

जो मनुष्य प्रभु के चरणों की नौका में सवार होते।
बछड़े के खुर के गड्ढे जैसे भवसिंधु पार होते॥
रहती नहीं जगत में उनको फिर पद-पद पर विपदाएं।
प्रभु का पद पाने वाले, सर्वदा परम-पद को पाएं॥५८॥

अघ-वध हुआ कुमार आयु में, पर किशोर में गया कहा।
राजन! जो मैंने बतलाया, इसमें यही रहस्य रहा॥५९॥

अघ-वध लीला, ग्वालों के सँग क्रीड़ा, ब्रह्मा की माया।
ग्वाला-बछड़ा बने कृष्ण ने, ब्रज में जो रस बरसाया॥
लीलाओं को सुने, विधाता की गायी स्तुति गायें।
अर्थ-धर्म-कामादि चार फल पायें और मुक्ति पायें॥६०॥

आंख मिचौनी, सेतु बांध कर, उछल-कूद करते रज में।
कृष्ण और बल की कुमार वय इसी तरह बीती ब्रज में॥६१॥

पन्द्रहवां अध्याय

धेनुकासुर उद्धार एवं गोप-ग्वालों की कालिया नाग के विष से रक्षा

बोले श्रीशुक - कृष्ण और बल ने किशोर वय जब पाई।
अनुमति मिली कि गाय चराने जा सकते दोनों भाई॥१॥

आगे गायें चलीं, बजाते मुरली पीछे श्याम चले।
पीछे यश गाते ग्वाले थे, साथ-साथ बलराम चले॥
हरी घास थी, वृक्ष वहां थे बहुरंगी फूलों वाले।
वन में हुए प्रविष्ठ, कृष्ण, बलराम और गायें-ग्वाले॥२॥

वृन्दावन वह जगह, झुंड में हिरण चौकड़ी भरते हैं।
कलरव करते विहग, मधुप फूलों पर गुन-गुन करते हैं॥
जल से भरे सरोवर में, सन्तों के मन-सी निर्मलता।
लेकर कमल पराग, सुवासित होकर मंद पवन चलता॥
देख मनोहर दृश्य, सोचने लगे कृष्ण मन ही मन में।
होगा उचित विहार किया जाये सुन्दर वृन्दावन में॥३॥

प्रभु ने देखा, लदीं फलों से वृक्षों की डाली-डाली।
रंग बिरंगे पुष्पों की सुन्दरता, कोंपल की लाली॥
बलदाऊ के चरण चूमते, विनत वृक्ष बारी-बारी।
वृन्दावन सा पावन वन पा, हँस कर बोले वनवारी॥४॥

बोले प्रभु - सब देव आपके चरणों का वंदन करते।
यहां वृक्ष, फल-फूल, चढ़ा चरणों का अभिनंदन करते॥
पाने यह सौभाग्य, इन्होंने वृक्ष योनि को अपनाया।
धन्य हो गया इनका जीवन, जो सोचा वह फल पाया॥५॥

आदि-पुरुष, ऐश्वर्य छुपा कर, करते बच्चों की लीला।
किंतु आपसे दूर नहीं रह सकते भक्त पुण्यशीला॥
बनकर मधुप, भक्तगण, गुन-गुन करके गुण का गान करें।
फूलों का रस पियें, आपके दर्शन का रस पान करें॥६॥

करते नृत्य मयूर, कोयलें कुहू-कूहू कर गान करें।
ये वनवासी, सदा अतिथियों को सब श्रेष्ठ प्रदान करें॥
हिरणी की चितवन तिरछी, जैसे देखे ब्रज की बाला।
सभी चाहते हैं, आनंदित हो वन में आने वाला॥७॥

धन्य हुई धरती हरीतिमा-युक्त, आपके चरण छुए।
लता, झाड़ियां, वृक्ष, मिला स्पर्श हाथ का धन्य हुए॥
खग, मृग, शैल, कृतार्थ हुए, जिन पर भी कृपा दृष्टि डाली।
छुएं आपका वक्ष, गोपियां सबसे अधिक भाग्यशाली॥८॥

बोले श्रीशुक - वृन्दावन में लगे चराने प्रभु गायें।
यमुना तट पर, ग्वालों के सँग प्रभु नित करते लीलायें॥९॥
ग्वाले प्रभु की लीलाओं का यशोगान करते, गाते।
प्रभु-बलदाऊ भौरों जैसा, गुन-गुन करते सुख पाते॥१०॥

राजहंस के साथ कूजते, राजहंस ही बन जाते।
करते नृत्य मयूर संग ऐसा, मयूर भी शर्माते॥११॥

पशुओं का ले नाम बुलाते, मंद मेघ-सी वाणी में।
भर जाता आनंद गाय-ग्वालों में क्या, हर प्राणी में॥१२॥

चकवा, मोर, चकोर, पक्षियों की बोली की नकल करें।
पहले गर्जन करें सिंह-सा, फिर गर्जन से स्वयं डरें॥१३॥

जब बलराम, ग्वाल की गोदी में सिर रख विश्राम करें।
तब प्रभु पाँव दबाने का, पंखा झलने का काम करें॥१४॥

वाह-वाह प्रभु करें, लड़ें कुश्ती, नाचें, गायें ग्वाले।
रहते खड़े बड़े भाई की बाहों में बाहें डाले॥१५॥

कभी स्वयं भी कुश्ती लड़ते, फिर थकने का नाम करें।
ग्वाले की गोदी में सिर रख, पत्तों पर विश्राम करें॥१६॥

प्रभु के पांव दबाने का सुख पायें पुण्यवान ग्वाले।
वस्त्रों या पत्तों से पंखा, प्रभु को झलें भाग्यवाले॥१७॥

किसी ग्वाल के मन में बहने लगती अगर प्रेम धारा।
गाने लगता गीत मनोहर, जो प्रभु को लगता प्यारा॥१८॥

माया द्वारा छिपा रखा था, प्रभु ने ऐश्वर्य सारा।
करते लीलाएं ऐसी जो की जातीं ग्वालों द्वारा॥
कमला जिनके चरण-कमल की सेवा में संलग्न रहें।
वे प्रभु ग्राम्य सुलभ क्रीड़ाएं करने में ही मग्न रहें॥१९॥

श्रीदामा था राम-कृष्ण का सखा हमेशा साथ रहा।
सुबल आदि ग्वालों को लेकर आया और सप्रेम कहा॥२०॥

महाबाहु बलराम-कृष्ण करते दुष्टों का नाश सदा।
निकट ताड़ वन है, जिसका हर वृक्ष फलों से रहे लदा॥२१॥

पके फलों का ढेर भूमि पर हर दम वहां पड़ा रहता।
धेनुक दैत्य मगर, उनकी रक्षा में सदा खड़ा रहता॥२२॥

हे बल, हे श्रीकृष्ण, दैत्य गर्दभ का सदा रूप धारे।
उस जैसे बलवान कई हैं, रहते गर्दभ बन सारे॥२३॥

हे बलराम! खा चुका है यह दैत्य, मनुष्य बहुत सारे।
पशु-पक्षी तक नहीं फटकते, उस वन में डर के मारे॥२४॥

वे फल हैं अत्यंत सुगंधित, हमने कभी नहीं खाये।
तनिक ध्यान दो तो सुगंध आये, मुंह में रस आ जाये॥२५॥

कृष्ण सुगंधित फल खाने की इच्छा मचल रही मन में।
फल खाने की अभिलाषा है, दाऊ चलिए उस वन में॥२६॥

हँसे कृष्ण-बलराम, सखा की बातें लगीं भली मन को।
करने ग्वालों को प्रसन्न, दोनों चल दिए ताड़ वन को॥२७॥

गज-शिशु जैसे बल ने हिला दिया पेड़ों को खड़े-खड़े।
मधुर सुगंधित फल के, नीचे ढेर लग गए बड़े-बड़े॥ २८॥

सुन फल की आवाज, देखने दौड़ा धेनुक ताड़ों को।
कम्पित करते हुए वेग से, धरती और पहाड़ों को॥ २९॥

बल की छाती पर बलवान दैत्य ने पाद प्रहार किया।
जाकर दूर स्वयं को अगले हमले को तैयार किया॥ ३०॥

राजन! क्रोधित गर्दभ फिर से आया तेजी से रैंका।
बल की ओर पीठ करके, फिर दोनों पैरों को फेंका॥ ३१॥

बल ने एक हाथ से पैर पकड़ कर घुमा दिया नभ में।
पटका एक ताड़ पर, तब तक प्राण नहीं थे गर्दभ में॥ ३२॥

था वह वृक्ष विशाल बहुत ही, विस्तृत था ऊपरी सिरा।
गर्दभ गिरा तो वृक्ष, साथ लेकर कितने ही वृक्ष गिरा॥ ३३॥

बलदाऊ थे सहज, जिस तरह कोई खेल गया खेला।
पर वन की हालत थी जैसे, झंझावातों को झेला॥ ३४॥

क्या अचरज, बलदाऊ को यह जग, जगदीश्वर कहता है।
ओत-प्रोत हैं जग में, जैसे सूत, वस्त्र में रहता है॥ ३५॥

धेनुक के मरने का उसके परिजन को जब पता चला।
किया उन्होंने एक साथ श्रीकृष्ण और बल पर हमला॥ ३६॥

एक-एक के पांव पकड़ कर ताड़ वृक्ष पर दे मारा।
राम-श्याम ने खेल-खेल में मारा दानव दल सारा॥ ३७॥

मृत शरीर, टूटे तरु, मीठे फल से आच्छादित धरती।
जैसे श्याम घटा नीले नभ को ढंक कर शोभित करती॥ ३८॥

देख कृष्ण-बल की मंगलमय लीला सुरगण हर्षाये।
वाद्य बजाकर की स्तुतियां, फूल सुगंधित बरसाये॥ ३९॥

लोग हो गए निर्भय, ज्यों ही धेनुक दैत्य गया मारा।
मिले मधुर फल लोगों को, गायों को मिला हरा चारा॥ ४०॥

जब ब्रज लौटे कृष्ण, ग्वाल पीछे चलते स्तुति गायें।
पुण्यवान ही कमलनयन की, गाते-सुनते लीलायें॥ ४१॥

वन फूलों से सजीं, कृष्ण की काली अलकें घुंघराली।
सिर पर मोर पंख शोभित, बालों में गो-रज की लाली॥
मधुर-मधुर नयनों की चितवन, मधुर-मधुर प्रभु मुस्काते।
कृष्ण बजाते वंशी, ग्वाले प्रभु की यश गाथा गाते॥
वंशी की ध्वनि सुनते ही बाहर आ गईं गोपिकाएं।
आंखें थीं दर्शन की प्यासी, कब वन से प्रभु ब्रज आएं॥ ४२॥

गोपिकाओं के नयन भ्रमर ने, प्रभु-मुख-कमल-पराग पिया।
प्रभु के दर्शन ने, दिन भर की विरह-अग्नि को शांत किया॥
लज्जायुक्त, विनम्र, प्रेममय चितवन ने सत्कार किया।
ब्रज में हुये प्रविष्ठ, प्रेम सबका प्रभु ने स्वीकार किया॥ ४३॥

देवि-यशोदा और रोहिणी पुत्र-वत्सला माताएं।
थी तैयार, पुत्र जब आयें, करके सभी व्यवस्थाएं॥ ४४॥

करने दूर थकान, तेल-उबटन मल कर फिर नहलाया।
चंदन लगा, हार पहनाया, वस्त्राभूषण मन भाया॥ ४५॥

इसके बाद परोसा भोजन, प्रेम सहित माताओं ने।
करके भोजन राम-श्याम, शैया पर चले गए सोने॥ ४६॥

ब्रज में इसी तरह के करतब करते थे प्रभु नए-नए।
एक दिवस ग्वालों को लेकर प्रभु कालिंदी तीर गए॥४७॥

प्यासे थे गायें-ग्वाले, थी धूप तेज, प्रभु की लीला।
पिया गाय-ग्वालों ने यमुना का जल जो था जहरीला॥४८॥

भूल गए ग्वाले उस तट पर वर्जित था पानी पीना।
पीते ही विषाक्त जल, वहीं गिरे, विष ने जीवन छीना॥४९॥

ग्वालों के सर्वस्व कृष्ण योगेश्वर, वे ही रखवाले।
अमृत-मयी दृष्टि डाली तो जीवित हुए गाय-ग्वाले॥५०॥

ज्यों लौटी चेतना, उठ खड़े हुए गाय-ग्वाले सारे।
एक दूसरे का मुख देख रहे थे अचरज के मारे॥५१॥

याद किया, निष्प्राण हुए थे सब, पीकर जल विष-वाला।
किंतु कृष्ण ने किया अनुग्रह, फिर सब में जीवन डाला॥५२॥

सोलहवां अध्याय

कालिया नाग पर कृपा

श्रीशुक बोले - जल में विष का कारण नाग कालिया था।
उसे भेज अन्यत्र, कृष्ण ने जल को स्वच्छ कर दिया था॥१॥

पूछा राजा ने - जल में क्यों रहता था विषधर काला।
कहें विप्रवर - प्रभु ने कैसे उसका मर्दन कर डाला॥२॥

प्रभु ने जो गोपाल रूप में कीं हैं ब्रज में लीलाएं।
हैं अमृतमय सभी कथाएं, कैसे श्रवण तृप्ति पायें॥३॥

बोले श्रीशुक - कुंड कालिया का अत्यंत विषैला था।
पशु क्या पक्षी तक मर जाते थे, विष नभ तक फैला था॥४॥

जल को छूकर वायु साथ में जल-कण ले बाहर आती।
प्राणी क्या तट के समीप की हरी घास तक मर जाती॥५॥

राजन! प्रभु अवतरित हुए थे, दुष्टों का विनाश करने।
जब प्रभु ने देखा विषधर के विष से लोग लगे मरने॥

करने स्वच्छ नदी को, प्रभु चढ़कर कदंब पर हुए खड़े।
ताल ठोक कर, फेंटा कस कर, फिर यमुना में कूद पड़े॥६॥

पहले से ही उबल रहा था यमुना का जल जहरीला।
लहरे बहुत भयंकर थीं, जिनका रंग था नीला-पीला॥
परम शक्तिशाली प्रभु को इन सब बातों का ज्ञान रहा।
प्रभु कूदे तो हाथ चार सौ तक विष मिश्रित नीर बहा॥७॥

कूंद कुंड में प्रभु उछालने लगे कुंड-जल विषवाला।
जैसे पानी में क्रीड़ा करता है हाथी मतवाला॥
श्रवणहीन विषधर जल की ध्वनियों को सहन न कर पाया।
वह चिढ़ गया और निकला घर से, प्रभु के सम्मुख आया॥८॥

उसने मेघ-वर्ण वाला कोमल सुन्दर बालक देखा।
कटि में पीताम्बर, छाती पर था श्रीवत्स, स्वर्ण-रेखा॥
मंद-मंद मुस्कान अधर पर, आनंदित करने वाली।
चरण सुकोमल सुंदर जिनमें थी पंकज-दल की लाली॥
देखा उसने निर्भय होकर, बालक खेल रहा जल में।
क्रोधित हो जकड़ा प्रभु को फिर डंसा कई मर्मस्थल में॥९॥

नागपश में बंधे कृष्ण को देखा जब अचेत होते।
मूर्छित होकर वहीं गिरे ग्वाले, दुख से रोते-रोते॥ १०॥

देख रहे थे प्रभु को सारे बैल, गाय, बछिया, बछड़े।
क्रंदन करने लगे तीर पर, भय के कारण खड़े-खड़े॥ ११॥

तीन तरह के अपशकुनों ने ब्रज को चिंतित कर डाला।
सबने सोचा निश्चित ही कुछ अशुभ यहां घटने वाला॥ १२॥

नंद आदि गोपों ने अपशकुनों को दुखदायी माना।
नहीं कृष्ण के साथ गए बल, व्यग्र हुए जब यह जाना॥ १३॥

थे मन प्राण कृष्ण उनके, पर थे प्रभाव से अनजानें।
बिना कृष्ण के अपने जीवन को सारे समाप्त मानें॥ १४॥

गो-जैसा वात्सल्य सभी का, कृष्ण जान से थे प्यारे।
उन्हें कृष्ण की चिंता थी सब चले खोजने मन-मारे॥ १५॥

बस बलराम जानते थे प्रभु हैं जग के पालनकर्ता।
हँसे किंतु चुप रहे, देख ब्रज के लोगों की कातरता॥ १६॥

ब्रजवासी पद चिन्ह कृष्ण के पद्म चिन्ह से पहचानें।
देख-देख पद-कमल सभी, यमुना की ओर लगे जानें॥ १७॥

पद चिन्हों में कमल, वज्र, जौ, अंकुश और पताकाएं।
चरण चिन्ह में देख-देख सब ब्रजवासी दौड़े जायें॥ १८॥

दिखे दूर से उन्हें सभी पशु, क्रन्दन करते दूर खड़े।
नाग-कुंड में नागपाश में बंधे कृष्ण निश्चेष्ट पड़े॥
कुण्ड किनारे दिखे, पड़े थे मूर्छित होकर सब ग्वाले।
देख-देख यह दृश्य चेतना-शून्य हो गए ब्रज वाले॥ १९॥

प्रभु के प्रेम रंग में रंगी हुई थी सभी गोपिकाएं।
मधु मुस्कान, मधुर वाणी, तिरछी चितवन प्रभु की पाएं॥
प्रियतम प्राणनाथ को देखा, हुई वर्णनातीत व्यथा।
बिना कृष्ण के, तीनों लोकों में अब कुछ भी शेष न था॥ २०॥

यमुना में कूदने यशोदा दौड़ीं, आखिर थीं माता।
पकड़ा उन्हें गोपियों ने, उनका दुख कौन समझ पाता॥
देख चेतना प्रभु के मुख पर, उनको कहतीं धैर्य धरें।
तनिक कृष्ण की पिछली शौर्य कथाओं को तो याद करें॥
कुछ ही थी जो धैर्य बंधातीं थीं माता को घड़ी-घड़ी।
शेष गोपियां मुर्दों जैसी, धरती पर निश्चेष्ट पड़ीं॥ २१॥

नंद आदि कुछ गोप कूदने यमुना में भागे आये।
उन्हें रोकने को बलशाली बलदाऊ आगे आये॥
कुछ को दी प्रेरणा, और कुछ को रोका बल ने, बल से।
कुछ को समझा कर बलदाऊ खुद ले गए दूर जल से॥ २२॥

राजन! थी नर-लीला प्रभु की, जो स्वीकार किया बंधन।
लेकिन सबको दुखी देख, चैतन्य हो गए यदुनंदन॥
मुझे मानते हैं सब कुछ, दुख इनका दूर किया जाये।
ऐसा सोच मुहूर्त बाद प्रभु बंधन से बाहर आये॥ २३॥

लगी टूटने देह नाग की, प्रभु ने खुद को किया बड़ा।
नाग-पाश को छोड़, नाग हो गया कृष्ण से दूर खड़ा॥
मार रहा फुफकार, नाक से चलती विष की पिचकारी।
आग-बबूला नाग कर रहा था हमले की तैयारी॥

मुख से निकल रहीं थीं लपटें, आंखें जैसे अंगारे।
देख रहा टकटकी लगाकर, कैसे बालक को मारे॥ २४॥

जीभ दो-मुंही लपलप करती, आंखों में विष की ज्वाला।
ज्यों ही झपटा, प्रभु ने जैसे बनकर गरुड़ नचा डाला॥
यह हमला करने का, बचने का क्रम काफी देर चला।
चलता रहा दांव, पर प्रभु के आगे किसकी चले भला॥ २५॥

क्षीण हुआ विषधर का बल, सब उसके व्यर्थ प्रहार हुए।
थोड़ा दबा दिया फन को, फिर फन पर कृष्ण सवार हुए॥
विषधर के हर फन पर थी मणि, हर मणि लाल चमक वाली।
लाल चमक से हुई दो गुनी प्रभु के चरणों की लाली॥

गान-नृत्य इत्यादि कलाओं के प्रभु आदि प्रवर्तक हैं।
नृत्य करें जो विषधर के फन पर, प्रभु पहले नर्तक हैं॥ २६॥

प्रभु की इच्छा देख नृत्य की, सुर, गंधर्व, सिद्ध चारण।
लगे बजाने ढोल, नगाड़े, कर मंत्रों का उच्चारण॥
गाये गीत देव-ललनाओं ने प्रसून भी बरसाये।
ले-लेकर उपहार देवगण करने भेंट वहीं आये॥ २७॥

राजन! विषधर के सौ सिर थे, जिसको तनिक उठाता था।
वही प्रचंड-दण्डधारी प्रभु द्वारा कुचला जाता था॥
क्षीण जीवनी-शक्ति हुई तो, मुख-नथुनों से रक्त बहा।
चक्कर खाने लगा कालिया उसे न तन का होश रहा॥ २८॥

ज्यों ही कुछ चेतना लौटती, सिर को जरा उठाता था।
जिस सिर को ऊपर करता था, वह सिर कुचला जाता था॥
प्रभु पद पर थे पड़े रक्त कण, बढ़ा रहे थे आकर्षण।
चरण-कमल में किए गए हों जैसे रक्त-पुष्प अर्पण॥ २९॥

अद्‌भुत तांडव नृत्य किया प्रभु ने फन सभी कुचल डाले।
चूर-चूर था नाग, लगा हैं प्राण निकलने ही वाले॥

तब विषधर ने आदि-पुरुष नारायण को स्मरण किया।
मन ही मन की विनती, उसने खुद को प्रभु के शरण किया॥ ३०॥

सारा विश्व गर्भ में प्रभु के, जिसका बोझ बहुत भारी।
ढीली पड़ने लगी बोझ से, विषधर की गांठे सारी॥
प्रभु के पद प्रहार से फन के हुए चीथड़े अनगिनती।
शरणागत हो गईं नाग-पत्नियां, लगीं करने विनती॥
बिखरे हुए केश थे उनके, सब करबद्ध विनीत खड़ीं।
वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त थे, सबकी सब भयभीत खड़ीं॥ ३१॥

नाग-पत्नियां सभी साध्वी थीं, पर मन में घबराईं।
प्रभु की पाने कृपा, सामने अपने बच्चों को लाईं॥
सभी प्राणियों के स्वामी हैं प्रभु, उनकी मान्यता रही।
कर दण्डवत प्रणाम, शरण-वत्सल की सबने शरण गही॥ ३२॥

बोली नाग-पत्नियां - प्रभु! दुष्टों को दण्ड दिया करते।
प्रायश्चित उनसे करवाते, फिर कल्याण किया करते॥
इस अपराधी ने पाया जो दण्ड, बड़ा उपकार हुआ।
समदर्शी प्रभु आप, आपका इसीलिए अवतार हुआ॥ ३३॥

दिया आपने दण्ड स्वयं इसमें भी एक रहस्य छिपा।
करते दण्डित स्वयं उसे, जिस पर होती अतिरिक्त कृपा॥
जिन दुष्टों को अपने हाथों से दण्डित प्रभु आप करें।
करते हैं कल्याण दुष्ट का, क्षमा समूचे पाप करें॥
अपराधी है, इसीलिए तो सर्प योनि इसने पाई।
छिपी हुई आपके क्रोध में, हमको कृपा नजर आई॥ ३४॥

पूर्व-जन्म में इसने, संतों का सम्मान किया होगा।
जीवों पर कर दया, किया होगा तप, दान किया होगा॥

यही कृत्य तो, सर्वजीव-रूपी प्रभु को प्रसन्न करते।
ऐसा होता नहीं अगर तो, क्यों प्रभु फन पर पग धरते॥ ३५॥

भगवन्! यह किस तप का फल है, नहीं समझ में यह आया।
कैसे इसने प्रभु की चरण-कमल-रज का स्पर्श पाया॥
चरण-कमल-रज कितनी दुर्लभ यह तो खुद कमला जानें।
करनी पड़ी तपस्या जिनको प्रभु की चरण-धूलि पानें॥ ३६॥

चरण-धूल जो पा जाते, वे राज्य धरा का क्या मांगें।
छोड़ें राज्य रसातल का, स्वामित्व स्वर्ग का भी त्यागें॥
नहीं सिद्धियां चाहें, ब्रह्मा के पद की भी चाह नहीं।
मोक्ष मिले या नहीं मिले, करते ज्यादा परवाह नहीं॥ ३७॥

है तामसी प्रवृत्ति इसलिए वृत्ति क्रोध करने वाली।
लेकिन इसने आज आपकी वह चरणों की रज पा ली॥
जिसके पाने की केवल इच्छा हो मानव के मन में।
मुक्ति मिले संसार चक्र से, बंधे न भव के बंधन में॥ ३८॥

आप प्रकृति से परे किंतु, भूतों में विद्यमान रहते।
है प्रणाम आपको, आपको ही सब परमेश्वर कहते॥ ३९॥

है अनंत सामर्थ्य-शक्ति प्रभु, गुण-विकार से मुक्त रहें।
हैं विज्ञान-ज्ञान की निधि प्रभु, प्रभु को सभी प्रणाम कहें॥ ४०॥

आप काल हैं, आश्रय हैं, उसके अवयव के दृष्टा हैं।
पृथक विश्व से, विश्वरूप हैं, कारण एवं सृष्टा हैं॥ ४१॥

प्राण, बुद्धि, मन, चित्त, इंद्रियां, पंचभूत के स्वामी हैं।
त्रिगुणात्मक माया में छुपे हुए हैं, अंतर्यामी हैं॥ ४२॥

हैं अनंत, अति सूक्ष्म, एक रस, अविकारी सबके ज्ञाता।
जो जिस विधि से चाहे, उस विधि से प्रभु के दर्शन पाता॥
नमस्कार आपको, आप ही शब्द, आप ही अर्थ रहें।
दोनों को धारण करने में केवल आप समर्थ रहें॥ ४३॥

हैं, प्रमाण का मूल, शास्त्र, निर्देश आपसे ही पाते।
हैं प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्ग के कर्ता, वेद कहे जाते॥ ४४॥

आप कृष्ण हैं, वासुदेव हैं, बल का भी स्वरूप धारें।
आप बने प्रद्युम्न, आप अनिरुद्ध नमन प्रभु स्वीकारें॥ ४५॥

गुण के आप प्रकाशक भी हैं, गुण से आच्छादित होते।
इन्हीं वृत्तियों के द्वारा ही कुछ-कुछ आभासित होते॥
आप वृत्तियों और गुणों को लेकिन कभी नहीं धारें।
गुणातीत प्रभु नाग-पत्नियों के प्रणाम को स्वीकारें॥ ४६॥

मूल प्रकृति में रहने वाले सभी सिद्धियों के दाता।
नमस्कार ऋषिकेश आपको, सदा मौन रहना भाता॥ ४७॥

नमस्कार हे विश्वरूप, सारी गतियों के निर्माता।
आप विश्व सम्पूर्ण, विश्व के साक्षी और अधिष्ठाता॥ ४८॥

हे प्रभु आप अकर्ता होते हुए, जगत को रचते हैं।
करते पालन और प्रलय कर, आप अकेले बचते हैं॥
आप सत्यसंकल्प, आपकी हैं अमोघ सब लीलाएं।
जीवों में वृत्तियां, आपके द्वारा जाग्रत की जायें॥ ४९॥

तीन लोक में तीन योनियां, शांत, अशांत, मूढ़ होतीं।
लीलाएं आपकीं सभी, हे प्रभु अत्यंत गूढ़ होतीं॥
शांति वृत्तिधारी सन्तों से, भगवन् प्रेम अपार करें।
हुए अवतरित ताकि धर्म का धरती पर विस्तार करें॥ ५०॥

क्षमा करे अपराध कृपा कर, अपनी हमें प्रजा मानें।
मूढ़ जानता नहीं आपको, भूल हुई है अनजानें॥५१॥

अबलाओं पर साधु-पुरुष सर्वथा दया करते आये।
मरणासन्न हमारा पति, हे प्रभु हमको सौंपा जाये॥५२॥

प्रभु दासी आपकी, हमें आज्ञा दें, सेवा बतलायें।
सदा आपकी सेवा करके, लोग मुक्ति, भय से पायें॥५३॥

बोले श्रीशुक - बेसुध था, सिर थे क्षत-विक्षत विषधर के।
नाग-पत्नियों की विनती सुन, छोड़ा उसे कृपा करके॥५४॥

इन्द्रिय-प्राण सचेत हुए, जब लगी सांस आने-जाने।
हो करबद्ध दीनता से, तब प्रभु से कहा कालिया ने॥५५॥

विषधर बोला - नाग तमोगुण और दुष्टता ले जन्में।
बहुत दिनों तक बदला लेने की प्रवृत्ति रहती मन में॥५६॥

पृथक वीर्य, बल, बीज, योनियां, पृथक स्वभाव बनाये हैं।
पृथक चित्त-आकृति वाले प्राणी प्रभु ने उपजाये हैं॥५७॥

जैसा रचा आपने वैसा ही हम क्रोधी नाग करें।
मोहित है माया में प्रभु की, कैसे उसका त्याग करें॥५८॥

मेरी प्रकृति, आपकी माया, सभी आपके उपजाये।
दया करें या दण्डित, प्रभु वह करे आपको जो भाये॥५९॥

बोले श्रीशुकदेव - सुनी जब विषधर की बातें सारी।
छोड़ो यह स्थान शीघ्र तुम, बोले प्रभु लीलाधारी॥
जाओ सर्प सिंधु में, पत्नी पुत्र और भाई जायें।
यमुना का जल पान कर सकें, जिससे ग्वाल और गायें॥६०॥

मेरा यह आदेश स्मरण करें और कीर्तन गायें।
ऐसे लोग विषधरों के भय से सर्वथा मुक्ति पायें॥६१॥

इस जलक्रीड़ा वाले तट पर जो भी लोग नहायेंगे।
तर्पण, पूजन, भजन करेंगे, मुक्ति पाप से पायेंगे॥६२॥

रमणक द्वीप छोड़ तू आया, रहा गरुड़ से आतंकित।
हुआ सुरक्षित, फन पर तेरे, मेरे चरण चिन्ह अंकित॥६३॥

बोले श्रीशुकदेव - कृष्ण की अद्भुत लीलाएं सारी।
लगीं पूजने प्रभु को सादर, नाग-पत्नियां आभारी॥६४॥

दिव्य वस्त्र-आभूषण, चंदन, दिव्य गंध, मणि-मालायें।
किए समर्पित उत्तम कमल पुष्प जो भगवन् को भायें॥६५॥

पूजा और वंदना प्रभु की, कर विधान से पूर्णतया।
पत्नी-पुत्र-बांधवों को लेकर वह रमणक द्वीप गया॥६६॥

लीलाधारी कृष्ण-कृपा से विष का असर समाप्त हुआ।
अमृत जैसा मधुर स्वाद, यमुना के जल को प्राप्त हुआ॥६७॥

सत्रहवां अध्याय

कालिया नाग के कालियादह में आने की कथा तथा भगवान का ब्रजवासियों को दावानल से बचाना

पूछा नृप ने - क्यों विषधर को नागद्वीप छोड़ना पड़ा।
किया गरुड़ के प्रति क्या कोई कालिय ने अपराध बड़ा॥१॥

बोले श्रीशुक - पूर्व काल में रमणक द्वीप गरुड़ जाते।
नियमों के अनुसार भेंट में एक सर्प की बलि पाते॥२॥

पक्षीराज गरुड़ को देते, अपना-अपना भाग सभी।
चूंकि सुरक्षित रहते थे, इससे सहमत थे नाग सभी॥ ३॥

कद्रू का था पुत्र कालिया, विष-बल था उसमें भारी।
खुद तो देता नहीं, गरुड़ की खा जाता था बलि सारी॥ ४॥

हे राजन्! जब भगवन के प्रिय वेनतेय को पता चला।
मार डालने के विचार से उस पर किया तीव्र हमला॥ ५॥

नाग कालिया ने भी अपने सौ के सौ फन फैलाये।
गड़ा दिया अपने दांतों को जैसे गरुड़ निकट आये॥
जीभें लप-लप करतीं उसकी, सांसें तेज-तेज चलतीं।
आंखें थी अत्यंत भयानक अग्नि-शिखा जैसे जलतीं॥ ६॥

गरुड़, विष्णु के वाहन, अमित-पराक्रम, अमित-शक्तिशाली।
क्रोधित हुए, धृष्टता उसकी थी क्रोधित करने वाली॥
झटका दे अपने शरीर से पहले उसको दूर किया।
बायां पंख चलाया कालिय पर प्रहार भरपूर किया॥ ७॥

खाकर चोट पंख की घायल हुआ कालिया घबराया।
नागद्वीप से डरकर भागा यमुना के तट पर आया॥
गहरा था यह कुंड, नहीं था लोगों का आना-जाना।
और गरुड़ के लिए नहीं था संभव हमला कर पाना॥ ८॥

सौभरि ऋषि के द्वारा प्रतिबंधित था मत्स्याखेट जहां।
क्षुधित गरुड़ ने मत्स्यराज को बना लिया था ग्रास वहां॥ ९॥

दशा देखकर दीन मछलियों की ऋषि ने संज्ञान लिया।
रक्षा करने को जीवों की वेनतेय को शाप दिया॥ १०॥

अगर कुंड में आकर फिर से गरुड़ मछलियां खायेंगे।
मेरा बचन सत्य होगा, वे अपने प्राण गवायेंगे॥ ११॥

हो भयभीत गरुड़ से विषधर, उस जल में रहने आया।
निर्भय करके उसे कृष्ण ने, वापस रमणक भिजवाया॥ १२॥

दिव्य वस्त्र, स्वर्णाभूषण जो उन्हें गए थे पहनाए।
धारण किए दिव्य मणिमाला, प्रभु जल से बाहर आए॥ १३॥

प्रभु को आता देख, उठ गए ऐसे गोप-गोपिकाएं।
जैसे पाकर प्राण, इन्द्रियां फिर से चेतन हो जाएं॥
थे आनंदित सारे ग्वाले, प्रभु को जब देखा आते।
सभी लगाते हृदय कृष्ण को, जैसे ही अवसर पाते॥ १४॥

राजन! नंद, यशोदा और रोहिणी भी चैतन्य हुए।
मिले कृष्ण तो हुए मनोरथ पूरे, सारे-धन्य हुए॥ १५॥

गले मिले, प्रभु के बल के ज्ञाता बलराम प्रसन्न बड़े।
थे प्रसन्न पर्वत-पेड़ों से लेकर गाय-बैल-बछड़े॥ १६॥

गोपों के गुरु-विप्रों ने आ नंदराय से यही कहा।
विषधर से पा मुक्ति, पुत्र आया, भारी सौभाग्य रहा॥ १७॥

होगा उचित कि इस अवसर पर उचित दान ब्राह्मण पायें।
नंद-राय ने दिया दान, विप्रों को स्वर्ण और गायें॥ १८॥

सती-यशोदा बैठीं, वापस आये सुत को चिपकाये।
माता का आनंद, आंख से बनकर अश्रु बहा जाये॥ १९॥

राजन! श्रांत-क्षुधित थे उस दिन ग्वाल-बाल एवं गायें।
नहीं गए ब्रज, और तय किया यमुना-तट पर सो जायें॥ २०॥

अर्ध रात्रि में सबने देखा अग्नि प्रज्वलित है वन में।
घेर लिया लपटों ने सब ग्वालों को आनन-फानन में॥ २१॥

लगी आग की आंच तब उठे, सब ब्रजवासी घबराये।
सभी भाग कर कृष्ण और बल थे जिस जगह, वहाँ आये॥ २२॥

वे बोले - हे कृष्ण भाग्यशाली, बलदाऊ बलशाली।
देखो तो यह आग सभी स्वजनों को है ग्रसने वाली॥ २३॥

हे प्रभु! रक्षा करो, न हम सब दावालन में जल जायें।
नहीं मृत्यु का भय पर, फिर कब प्रभु के चरण-कमल पायें॥ २४॥

प्रभु जगदीश्वर हैं, अनंत हैं, पार नहीं उनके बल का।
व्याकुल स्वजनों की रक्षा को, पान किया दावानल का॥ २५॥

अठारहवां अध्याय

प्रलम्बासुर उद्धार

बोले श्रीशुक - हर्षित स्वजनों सहित कृष्ण ब्रज में आये।
पूरे मार्ग ग्वाल-बालों ने प्रभु के कीर्ति-गान गाये॥ १॥

माया से गोपाल बने प्रभु, ब्रज में करते थे क्रीड़ा।
थी उस समय ग्रीष्म ऋतु, जो दे देहधारियों को पीड़ा॥ २॥

पर बसंत का ही वैभव फैला था वन में, उपवन में।
क्योंकि कर रहे थे विहार, बलराम-कृष्ण वृन्दावन में॥ ३॥

झींगुर की झंकार छुपाते, झर-झर स्वर करते झरने।
साथ हवा के उड़ती बूंदें, वृक्षों को शीतल करने॥ ४॥

नदी-सरोवर को छूकर, जब शीतल चंचल पवन बहे।
उसमें उत्पल आदि कमल-दल के पराग की गंध रहे॥
बहती मंद सुगंध वायु में रहती इतनी शीतलता।
सूर्य-अग्नि के आतप का कानन में पता नहीं चलता॥ ५॥

नदियों में अथाह जल था, लहरें विशाल, तट तक आतीं।
चुंबन लेती तट का, तट को फिर से स्वच्छ बना जातीं॥
इस कारण से नमी भूमि में थी, छाई थी हरियाली।
सुखा न पातीं उसे, सूर्य की किरणें उग्र ताप वाली॥ ६॥

पुष्पाच्छादित वन में मृग दौड़ें, पक्षीगण शोर करें।
भिन्न-भिन्न आवाजें, भौंरे, कोयल, सारस, मोर करें॥ ७॥

ऐसे वन में आये ग्वाल-बाल, आगे-आगे गायें।
और बीच में वेणु बजाते कृष्ण-राम शोभा पायें॥ ८॥

पल्लव, पुष्प, प्रवाल, पंख से, दोनों भाई सजे-धजे।
गाने और नाचने लगते, ग्वाल-बाल जब वेणु बजे॥ ९॥

जब प्रभु स्वयं नाचने लगे, ताली बजा ग्वाल गाते।
सींग फूंकते कुछ, कुछ वंशी, वाह-वाह सब चिल्लाते॥ १०॥

प्रभु के गोप रूप के दर्शन को, सुर गोप रूप धरते।
नट की तरह नाचते, नटनागर प्रभु की स्तुति करते॥ ११॥

कूंद-फांद कर कुश्ती लड़ते, रस्साकसी किया करते।
हाथ पकड़ घूमते, फेंकते ढेले, होड़ लिया करते॥ १२॥

कभी-कभी जब ग्वाल नाचते, राम-श्याम सुर में गाते।
कृष्ण बजाते वंशी, वाह-वाह बलदाऊ चिल्लाते॥ १३॥

कभी जायफल, बेल, आंवले, इस-उस पर फेकें-झेलें।
खग-मृग का अनुसरण करें, फिर आंख-मिचौनी भी खेलें॥ १४॥

झूला झूलें कभी, बना मुख आकृतियां परिहास करें।
कभी नकल करते दादुर की, कभी नृपति का स्वांग भरें॥ १५॥

राम-श्याम खेलते, सरित, सर, घाटी, कुंज और वन में।
जग के साधारण बालक जो खेल खेलते बचपन में॥ १६॥

गाय चराते राम-कृष्ण के पास ग्वाल का वेष धरे।
आया असुर प्रलंब ताकि उन दोनों का अपहरण करे॥ १७॥

हैं सर्वज्ञ कृष्ण फिर भी, प्रस्ताव खेल का स्वीकारा।
लगे सोचने मन में किस विधि से खल जायेगा मारा॥ १८॥

खेलों के आचार्य कृष्ण ने ग्वालों को आहूत किया।
और सभी को उचित रूप से दो भागों में बांट दिया॥ १९॥

चुने गये दो नायक, ग्वालों के द्वारा, दोनों दल के।
कुछ बन गए कृष्ण के साथी, कुछ हो गये साथ बल के॥ २०॥

होते खेल बहुत से, उनमें एक खेल ऐसा होता।
जो जीते वह चढ़े पीठ पर, हारा हुआ उसे ढोता॥ २१॥

चले पीठ चढ़ ग्वाले आगे, गायें थी पीछे-पीछे।
पहुँच गए श्रीकृष्ण सहित सब भाण्डीर बट के नीचे॥ २२॥

राजन! एक बार जीते जब, बलदाऊ के दल वाले।
उनको ढोने लगे कृष्ण के साथ-साथ दल के ग्वाले॥ २३॥

प्रभु हारे तो चढ़ा पीठ पर श्रीदामा सीधा-सादा।
भद्रसेन ने वृषभ, प्रलम्बासुर ने बल को ही लादा॥ २४॥

लाद पीठ पर प्रतिद्वन्द्वी को, हारे ग्वाल तेज भागे।
देख कृष्ण का बल, प्रलंब, बल को ले गया बहुत आगे॥ २५॥

दैत्य, धरणिधर-बल को ज्यादा दूर नहीं ले जा पाया।
फिर उसने अपना स्वाभाविक रूप भयंकर दिखलाया॥
काले तन पर स्वर्णाभूषण, बल अति-गौर वर्ण वाले।
लगा चन्द्रमा को धारे हों, द्युति वाले बादल काले॥ २६॥

आंखें जैसे अग्नि धधकती, दाढ़ें, भौहों तक जायें।
सुर्ख लाल थे बाल, आग की लपटें जैसे लहरायें॥
हाथ-पाँव में कड़े, सिर मुकुट, कानों में कुंडल डाले।
नभ में उड़ा असुर तो घबराये बलदाऊ बल वाले॥ २७॥

क्षण में दूर हुआ भय, ज्यों अपना स्वरूप स्मरण किया।
समझ गए दानव ने चोरी से उनका अपहरण किया॥
बल ने करके क्रोध, असुर के सिर पर तब घूंसा मारा।
पर्वत पर ज्यों किया गया हो, वज्र प्रहार इन्द्र द्वारा॥ २८॥

हुआ चेतना-शून्य असुर, सिर पर प्रहार भरपूर हुआ।
खून उगलने लगा, दुष्ट का सिर भी चकनाचूर हुआ॥
चिल्लाता, चीखता दैत्य, धरती पर गिरा प्राण खोकर।
जैसे पर्वत गिरे, इन्द्र के आयुध से आहत होकर॥ २९॥

बलशाली बल के हाथों जब गया प्रलंबासुर मारा।
साधु-साधु कह उन्हें सराहा गया गोप-ग्वालों द्वारा॥ ३०॥

स्वागत किया सभी ने उनका ज्यों ही बल वापस आये।
आलिंगन करते जैसे बलराम नया जीवन पाये॥ ३१॥

मूर्तिमान था पाप प्रलंबासुर, सारे सुर हरषाये।
साधु-साधु कह बलदाऊ पर पुष्प सुरों ने बरसाये॥ ३२॥

उन्नीसवां अध्याय

गायों एवं गोपों की दावानल से रक्षा

बोले श्रीशुक - एक दिवस रह गए ग्वाल क्रीड़ा करते।
गायें गईं गहन-जंगल में, हरी घास चरते-चरते॥ १॥

गाय, भैंस, बकरियाँ अंत में सरकंडे के वन आईं।
तीव्र ताप से व्याकुल हो घबराईं, गायें डकराईं॥ २॥

गायें नहीं दिखीं तो ग्वाले-राम-श्याम भी पछताये।
खोज-बीन की बहुत, किन्तु पशुओं का पता नहीं पाये॥ ३॥

होने लगे अचेत ग्वाल, जीवन धन होती हैं गायें।
फिर तय किया कि चरी-घास, खुर के निशान खोजे जायें॥ ४॥

मिली अंततः सरकण्डे के वन में पथ भूली गायें।
तब तक ग्वाल थक चुके थे इतना, मुश्किल से चल पायें॥ ५॥

मेघ-गिरा में प्रभु ने तब, ले नाम पुकारा गायों को।
लगी रंभाने उत्तर में, मिल गया किनारा गायों को॥ ६॥

इसी बीच पूरे जंगल को, घेर लिया दावानल ने।
और अग्नि को और प्रज्वलित करने हवा लगी चल ने॥
दावानल वन के जीवों को स्वाहा अकस्मात करती।
चर जीवों के साथ अचर वृक्षों को भस्मसात करती॥ ७॥

बढ़ती दिखी आग तो घबराये ग्वाले एवं गायें।
दौड़े प्रभु के पास, छोड़ कर प्रभु की शरण कहां जायें॥
जैसे डरकर जीव मृत्यु से, प्रभु के चरणों में आते।
ग्वाले आये, कृष्ण-कृष्ण हे, हे बलदाऊ चिल्लाते॥ ८॥

बोले ग्वाले - महावीर श्रीकृष्ण, और बल-बलशाली।
रक्षा करो हमारी, है दावाग्नि भस्म करने वाली॥ ९॥

कृष्ण तुम्हीं सर्वस्व, बंधु-बांधव, सब धर्मों के ज्ञाता।
हमें भरोसा है तुम पर प्रभु, तुम स्वामी, तुम ही त्राता॥ १०॥

बोले श्रीशुक - प्रभु ने ग्वालों को समझाया धैर्य धरो।
डरना बंद करो, सब अपनी-अपनी आंखें बंद करो॥ ११॥

कर ली आंखें बंद सभी ने, आज्ञा का सम्मान किया।
प्रभु ने भारी दावानल का, अपने मुख से पान किया॥ १२॥

आंख खुली तो पाया बट के पास खड़े ग्वाले, गायें।
दावानल से बचे किस तरह, सोच-सोच सब चकरायें॥ १३॥

आंख मूंद कर कृष्ण कृपा से बचे आग से जब ग्वाले।
लगे सोचने, कृष्ण देवता ही हैं योग-सिद्धि वाले॥ १४॥

राजन! ब्रज जाने का हुआ समय ज्योंही संध्या आयी।
सारी गायों को लौटाकर ग्वालों की टोली लायी॥
गायों के पीछे गोपाल चले, वंशी की तान चली।
पीछे ग्वालों की टोली, करती प्रभु का गुणगान चली॥ १५॥

क्षण सौ-सौ युग जैसा लगता, अगर नहीं दर्शन पायें।
प्रभु आये तो दर्शन पाकर, तृप्त हुईं ब्रज-बालायें॥ १६॥

बीसवां अध्याय

वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन

बोले श्रीशुक - जब वन का घटनाक्रम लोगों ने जाना।
वध प्रलंब का और अग्नि से रक्षा को अद्‌भुत माना॥ १॥

राम-कृष्ण की लीलाएं सुनकर ब्रजवासी चकराये।
लगे मानने बड़े देवता, बनकर राम-कृष्ण आये॥ २॥

फिर वर्षा ऋतु आई ब्रज में, सभी तरह के जीव बढ़े।
सूर्य-चंद्र पर मण्डल बैठे, नभ पर घन का रंग चढ़े॥ ३॥

नभ में नीले और घनेरे, घन घनघोर घिरा करते।
तड़ित चमकती और गड़गड़ाती जिससे प्राणी डरते॥
सूर्य-चन्द्र-तारे ढंक जाते, नभ अपनी आभा खोता।
ब्रह्मरूप प्राणी के गुण ढंकते तो यही हाल होता॥ ४॥

राजा-रवि ने, धरा-प्रजा से कर में जितना जल पाया।
आठ माह में जो पाया, वह चार माह में लौटाया॥ ५॥

तड़ित सजे घन, पवन-प्रेरणा से जीवन-जल बरसाते।
जैसे दयावान, पीड़ित पर प्राण निछावर कर जाते॥ ६॥

सूख गई थी धरा ग्रीष्म में, वर्षा हरियाली लाये।
तप में दुर्बल देह, जिस तरह, पुष्ट बने जब फल पाये॥ ७॥

संध्या में जुगनू चमकें, ग्रह-तारे लुप्त हुआ करते।
जैसे कलि में वेद लुप्त होते, पाखण्डी दम भरते॥ ८॥

थे सुसुप्त दादुर, बादल का गर्जन सुनकर टर्राते।
जैसे वैदिक वेद पाठ करते, जब गुरु-आज्ञा पाते॥ ९॥

सूख गई, छोटी नदियों का जल, तट के ऊपर बहता।
जैसे व्यभिचारी का तन-धन नहीं नियंत्रण में रहता॥ १०॥

हरी घास, श्वेतांगी छत्ते, बीरबहूटी की लाली।
लगता नृप के रंग-बिरंगे सैनिक करते रखवाली॥ ११॥

खेत लहलहाये तो कृषक खिले, धनवाले मुरझाये।
अच्छी फसल तो कृषक, धनिक के काबू में कैसे आये॥ १२॥

वर्षा के जल ने की द्विगुणित सब जीवों की सुन्दरता।
प्रभु सेवा से जैसे तन-मन का सौंदर्य बढ़ा करता॥ १३॥

बढ़ जाती सागर की लहरें, नदियां वर्षा-जल लायें।
गुण से मिल ज्यों अपरिपक्व, योगी की बढ़े कामनायें॥ १४॥

भारी वर्षा के प्रहार से पर्वत व्यथित नहीं होते।
दुख आने पर जैसे प्रभु के भक्त नहीं धीरज खोते॥ १५॥

हरियाली ने ढंके मार्ग जिन पर कम था आना जाना।
जैसे भूलें वेद, अगर द्विज भूलें उनको दुहराना॥ १६॥

विद्युत अस्थिर रहे, भले बादल हों कितने हितकारी।
जैसे गुणी जनों के साथ न रह पाती चपला नारी॥ १७॥

नभ में मेघों की हलचल के बीच इन्द्र का धनुष खिले।
तीन गुणों से क्षुब्ध विश्व में जैसे निर्गुण ब्रह्म मिले॥ १८॥

घन शशि से शोभित होता पर शशि को इस प्रकार ढंकता।
जैसे गुण से पैदा होकर, गुण को अहंकार ढंकता॥ १९॥

करते नृत्य मयूर, मनाते उत्सव बादल छाने पर।
ज्यों गृहस्थ आनंदित होता, प्रभु भक्तों के आने पर॥ २०॥

सूखे पेड़ों को जल मिलता, होते ऐसे हरे-भरे।
जैसे दुर्बल तपधारी की, प्रभु पूरी कामना करे॥ २१॥

कीचड़-कांटे हैं पर सारस ऐसे रहें सरोवर में।
कष्ट उठाकर भी गृहस्थ जैसे सुख पाते हैं घर में॥ २२॥

हो जाते क्षतिग्रस्त बांध जब इन्द्र गिराये जल ज्यादा।
कलि में ज्यों पाखंडी करते, ध्वस्त धर्म की मर्यादा॥ २३॥

पवन-प्रेरणा से हितकारी घन अमृत-जल बरसायें।
विप्र प्रेरणा से जैसे धनहीन, धनिक से धन पायें॥ २४॥

लदे हुए जामुन-खजूर थे, हल्के बादल थे छाये।
ऐसे में प्रभु-बल, ग्वाले, गायें ले वृन्दावन आये॥ २५॥

धीमें-धीमें चलती गायें, थन में भरा दूध सारा।
नाम पुकारें प्रभु तब दौड़ें, थन से बह उठती धारा॥ २६॥

प्रभु ने देखा, वनवासी खुश हैं, झर-झर झरते झरने।
पर्वत में हैं कई गुफाएं वर्षा से रक्षा करने॥ २७॥

वर्षा होती तो प्रभु छायादार वृक्ष में छिप जाते।
छिपते कभी गुफा में, खाते कन्द-मूल-फल जो पाते॥ २८॥

कभी शिला पर कृष्ण और बल, जल के पास बैठ जायें।
ग्वालों से मिल कर सब घर का लाया दही-भात खायें॥ २९॥

वर्षा ऋतु में गाय, बैल, बछड़ों के पेट शीघ्र भरते।
हरी घास पर बैठ, बंद कर आँखें, पगुराया करते॥ ३०॥

प्रभु का ही लीला-विलास था, जो कुछ था वृन्दावन में।
पर प्रभु स्वयं प्रशंसा करते, आनंदित होते मन में॥ ३१॥

ब्रज में थे आनंदपूर्वक, राम-कृष्ण दोनों भाई।
वर्षा बीत गई तो ब्रज में छटा शरद ऋतु की छाई॥
स्वच्छ हुआ आकाश, स्वच्छ, निर्मल नदियों का नीर हुआ।
धीमें चलने लगा पवन-चंचल, थोड़ा गंभीर हुआ॥ ३२॥

सहज स्वच्छ हो गए सरोवर, शरद सरोरुह जब छाये।
योगभ्रष्ट ज्यों योग करें तो मन में निर्मलता आये॥ ३३॥

कीचड़, कीट, नीर का मैलापन, तब जब बादल छायें।
जब आती ऋतु शरद, दूर हो जातीं सभी समस्यायें॥
ब्रह्मचर्य, सन्यास, गृहस्थी, वानप्रस्थ की बाधाएं।
जैसे प्रभु की कृपा प्राप्त होते ही समाधान पायें॥ ३४॥

सारे जल का दान कर चुके, बादल धवल कांति पाते।
जैसे सन्यासी कर कामनाओं का त्याग, शांति पाते॥ ३५॥

झरते कुछ झरने, पर कुछ ने रोक लिया पानी ऐसे।
योग्य व्यक्ति को देता, सबको ज्ञान न दे ज्ञानी जैसे॥ ३६॥

सूख रहा था छोटे गड्ढों का जल, जलचर थे भ्रम में।
होता भ्रमित गृहस्थ, आयु घटती जाती है अनुक्रम में॥ ३७॥

उथले जल के जीव, सूर्य की किरणों से संतप्त रहें।
संयमहीन, दरिद्र, कृपण ज्यों, जीवन भर अभिशप्त रहें॥ ३८॥

हरी लता छोड़े कोमलता, कीचड़ को छोड़े धरती।
ज्यों साधक को धीरे-धीरे देह-विरक्ति हुआ करती॥ ३९॥

होता शांत समुद्र शरद में, स्थिर हो जाता पानी।
कर्मकाण्ड को छोड़ जिस तरह होता शांत आत्मज्ञानी॥ ४०॥

कर मेंड़ें मजबूत कृषक-गण पानी का अपव्यय रोकें।
इन्द्रिय संयम कर योगी ज्यों, शेष ज्ञान का क्षय रोकें॥ ४१॥

शारदेय चन्द्रमा जिस तरह, दिन के आतप को हरता।
दैहिक कष्ट गोपियों का ज्यों, प्रभु का मिलन दूर करता॥ ४२॥

वेदों का यथार्थ ज्ञाता-सतगुणी-चित्त शोभा पाता।
मेघ रहित नभ जैसे तारों से ज्योतिर्मय हो जाता॥ ४३॥

तारागण के मध्य व्योम में शशि की छटा हुआ करती।
वृष्णि वंश में कृष्ण जिस तरह आलोकित करते धरती॥ ४४॥

होती हवा सुगंधित समशीतोष्ण बांटती शीतलता।
किंतु कृष्ण की विरहिन गोपिकाओं का इसमें तन जलता॥ ४५॥

हो जाती ऋतुमती नारियां, चिड़ियां, मृगीं और गायें।
कर्मों के पीछे फल चलता, वैसे नर पीछे आयें॥ ४६॥

नहीं कुमुदिनी खिले, कमल खिलते जब सूर्योदय होता।
निर्भय सब रहते राजा से, सिर्फ दस्यु को भय होता॥ ४७॥

पके खेत में अन्न, इन्द्र की पूजा घर-घर की जाती।
कृष्ण और बल जहां सुशोभित, धरती ज्यादा उपजाती॥ ४८॥

वर्षा बाधित छात्र, संत, नृप, वैश्य सभी सक्रिय होते।
आता समय तभी साधक वह तन पाते, जो प्रिय होते॥ ४९॥

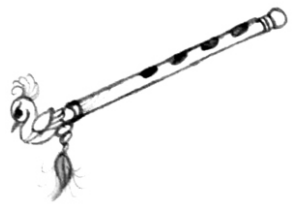

इक्कीसवां अध्याय

वेणुगीत

बोले श्रीशुक - नीर हुआ निर्मल, परागमय पवन हुआ।
वृन्दावन में गायें, ग्वाले, ले प्रभु का आगमन हुआ॥ १॥

पुष्पाच्छादित वृक्ष लताओं पर भंवरे गुनगुना रहे।
सरित, सरोवर, पर्वत को, वन को खग कलरव सुना रहे॥
ग्वाले लगे चराने गायें, वसुंधरा थी सजी-धजी।
इसी समय श्रीकृष्ण, वेणु-वादक की मादक वेणु बजी॥ २॥

गोपिकाओं के मन में वंशी के स्वर निश्छल प्रेम भरें।
फिर गोपियां कृष्ण की छबि, वंशी की ध्वनि की बात करें॥ ३॥

टेर सुनी वंशी की तो प्रभु की स्मृति जागी मन में।
हुई अवाक् गोपियाँ, उनका मन तो था वृन्दावन में॥ ४॥

लगी देखने कृष्ण कर रहे हैं प्रवेश वृन्दावन में।
मोर-पंख माथे, कनेर कानों में, पीताम्बर तन में॥
पांच तरह के पुष्प सुशोभित, गले बैजयन्ती माला।
रूप अनोखा जैसे कोई नट-नाटक करने वाला॥
ग्वाले गाते, कृष्ण वेणु छिद्रों में अधरामृत भरते।
प्रभु अपने पद चिन्हों से वृन्दावन को पावन करते॥ ५॥

राजन! वंशी की ध्वनियां, चेतन क्या जड़ का मन हरतीं।
तन्मय हो गोपियां सिर्फ वंशी-ध्वनि की चर्चा करतीं॥ ६॥

बोली गोपी एक, सफल वे आंखें, सफल आंख वाले।
जो देखते कृष्ण को, बल को, लिए साथ गायें-ग्वाले॥

ब्रज में आते-जाते करें कटाक्ष, अधर पर वेणु धरें।
वे रतनारी आंखें, आंखों वालों को कृतकृत्य करें॥७॥

आम्र कोंपलें, मोरपंख, फूलों के गुच्छे, मालाएं।
कटि में पीताम्बर पहनें प्रभु, अति विचित्र शोभा पाएं।
जब ग्वालों के बीच बैठ जाते हैं ये दोनों भाई।
लगता चतुर नटों की जोड़ी, नाटक करने को आई॥८॥

सखी, वेणु है पुरुष जाति का पूर्व जन्म में पुण्य किए।
हम सबके हिस्से का अधरामृत एकाकी वेणु पिये॥
सभी वंश वाले वंशी के, रोमांचित हर्षित रहते।
वंशी के कुल वाले वृक्षों के आनंद अश्रु बहते॥९॥

अरी सखी, बैकुण्ठ लोक तक कीर्ति हुई वृन्दावन की।
चरणचिन्ह अंकित कर प्रभु ने, भूमि यहां की पावन की॥
होकर मस्त मयूर नाचते, प्रभु वंशी वादन करते।
पर्वत पर पशु-पक्षी रुक कर, शांत रसास्वादन करते॥१०॥

धन्य-धन्य वे वन्य हिरणियां जो अति मूढ़ कहीं जातीं।
वंशी की धुन सुनकर आती, प्रभु-दर्शन का सुख पातीं॥
अति विचित्र प्रभु के वस्त्राभूषण पर न्यौछावर होतीं।
देख कृष्ण की चितवन, बड़े नेत्रवाली सुध-बुध खोतीं॥११॥

रूप-शील के स्वामी की जब वंशी की ध्वनि सुन पायें।
बैठी हुईं विमानों में मूर्छित होतीं सुर-ललनायें॥
प्रभु से मिलने की इच्छा में उन पर छाती चंचलता।
फूल झरें वेणी के, साड़ी सरके, पता नहीं चलता॥१२॥

सखी! छेड़ते जब वंशी पर कृष्ण सुरीली तानों को।
सुन संगीत, उठातीं ऊपर गायें अपने कानों को॥
दूध पी रहे बछड़े धुन सुन, हो स्तब्ध खड़े रहते।
अंतरात्मा को ध्वनि छूती, तो आनंद अश्रु बहते॥१३॥

सुन्दर नई कोंपलों वाले, वृक्षों पर वृन्दावन के।
बड़े-बड़े ऋषि-मुनि बैठे रहते हैं सखि, पक्षी बन के॥
निर्निमेष नयनों से प्रभु की रूप-सुधा का पान करें।
प्रभु की वाणी और वेणु ध्वनि का ही स्वागत कान करें॥१४॥

वंशी की धुन सुन सरिता में उठतीं बड़ी-बड़ी लहरें।
भंवरें कहतीं, बहें न आगे, थोड़ी देर यहीं ठहरें॥
प्रभु का आलिंगन करती लहरें जब चरण-कमल धोतीं।
चरण-कमल पर कमल चढ़ातीं, प्रभु पर न्यौछावर होतीं॥१५॥

अगर धूप में दिखे कृष्ण के साथ राम-ग्वाले-गायें।
सुन वंशी की तान, गगन में बादल छाता बन छायें॥
श्वेत पुष्प की तरह शुभ्र बूंदें फिर नभ से बरसाते।
और श्याम घन, श्याम कृष्ण पर खुद न्यौछावर हो जाते॥१६॥

गोपिकाओं द्वारा छाती पर केसर रोज मली जाती।
प्रभु चरणों तक हृदय पहुंचता, केसर साथ चली जाती॥
प्रभु के चरणों से गिरते कण, प्राप्त करे वन-बालाएँ।
उस केसर का आलेपन, करके शरीर पर, सुख पायें॥१७॥

गोवर्धन गिरिराज सभी भक्तों से श्रेष्ठ कहा जाये।
कृष्ण और बल के चरणों का जो स्पर्श सदा पाये।
हरी घास गायों को, ग्वालों को निर्झर का जल देता।
प्रभु को दे आराम कंदरा में, खाने को फल देता॥१८॥

भाग्यवान सखि, गाय पकड़ते और बांधते जो ग्वाले।
गायों को चरने इस वन से, उस वन ले जाने वाले॥ १९॥

वे सुनते वह तान, जिसे सुनकर प्राणी सुध-बुध खोते।
नदियों का प्रवाह रुक जाता, लता-वृक्ष पुलकित होते।
प्रभु के वन-विहार की ऐसी ही अनेक हैं लीलाएं।
जिनकी आपस में चर्चा कर, तन्मय रहें गोपिकाएं॥ २०॥

बाईसवां अध्याय

चीरहरण लीला

बोले श्रीशुक - ब्रज में ऋतु हेमन्त हुआ करती प्यारी।
कात्यायिनी देवि का व्रत करतीं ब्रज की कन्या सारी॥ १॥

करें स्नान यमुना में, होती पूर्व दिशा में जब लाली।
मूर्ति बनातीं फिर पूजा के लिए रेत-बालू वाली॥ २॥

देवी को शृंगारित करतीं, चढ़ा, फूल-चंदन-माला।
धूप-दीप, चांवल, फल का नैवेद्य लगाती हर बाला॥ ३॥

मंत्र जाप करतीं, हे कात्यायिनी, योगिनी, हे माया।
हे अधीश्वरी, हमें दीजिये, ऐसा पति जो मन भाया॥
कृष्ण बने पति उनके, यह स्तुति वे बार-बार करतीं।
इस आशा के साथ देवि चरणों में नमस्कार करतीं॥ ४॥

था संकल्प कि कृष्ण बने पति, नहीं चाहिए वर दूजा।
एक माह तक कन्याओं ने, मन से देवी को पूजा॥ ५॥

उषा काल में उठकर निकलें, प्रभु के यश का गान करें।
फिर जाकर यमुना के जल में साथ-साथ सब स्नान करें॥ ६॥

एक दिवस, हर दिन जैसे, प्रभु का गुण-गान कर रहीं थीं।
वस्त्रों को तट पर रखकर, यमुना में स्नान कर रहीं थीं॥ ७॥

कन्याओं की अभिलाषा को, जान लिया योगेश्वर ने।
पहुँच गए यमुना के तट, उनकी साधना सफल करने॥ ८॥

वस्त्र उठा प्रभु ने, कदंब पर चढ़, शाखाओं पर डाले।
शुरु किया परिहास जिसे सुन हंसने लगे गोप-ग्वाले॥ ९॥

व्रत करके कृशकाय हो गयी हो तुम सब ब्रज-बालाओ।
हँसी नहीं, सच कहता हूँ आकर वस्त्रों को ले जाओ॥ १०॥

सखा साक्ष्य हैं, झूठ नहीं कहता मैं, एक-एक आओ।
एक साथ आना चाहो तो, एक साथ कपड़े पाओ॥ ११॥

सुन प्रभु का परिहास, गोपियां भरी प्रेम से, सकुचायीं।
देख-देख कर मुख मुसकायीं, बाहर मगर नहीं आयीं॥ १२॥

डूबीं थीं आकंठ गोपियां जल में, तन था कांप रहा।
भरा हुआ था प्रेम कंठ तक, फिर भी प्रभु से यही कहा॥ १३॥

हम सबके प्रिय, नंदलाल, सब लोग तुम्हारा यश गायें।
वापस कर दो वस्त्र, शीत से, जल में कांपें कन्यायें॥ १४॥

तुम धर्मज्ञ, तुम्हारी दासी, हम मानेंगी बात सभी।
नंदराय को बोलेंगीं, वरना लौटाओ वस्त्र अभी॥ १५॥

प्रभु बोले - जब दास्य भाव स्वीकार कर लिया कन्याओ।
मेरी आज्ञा मानो, बाहर आओ और वस्त्र पाओ॥ १६॥

प्रभु की आज्ञा पा सबने की हिम्मत बाहर आने की।
कोशिश थी कांपते करों से कुछ-कुछ अंग छुपाने की॥ १७॥

आता देख गोपियों को, नीचे आये वस्त्रों को ले।
शुद्ध समर्पण भाव देख, आनंदित होकर प्रभु बोले॥ १८॥

वस्त्रहीन होकर तुमने, यमुना जल में जो स्नान किया।
वरुण देव का, यमुना जी का, तुम सबने अपमान किया॥
पहले झुककर हाथ जोड़कर, यह व्यवधान समाप्त करो।
यमुना और वरुण को कर प्रणाम, वस्त्रों को प्राप्त करो॥ १९॥

सुनकर प्रभु की बात, गोपियों ने अपनी त्रुटि को माना।
था जल का अपमान, बिना वस्त्रों के यमुना में जाना॥
किया गोपियों ने झुक करके हाथ जोड़ प्रभु का वंदन।
त्रुटियों-व्यवधानों का परिमार्जन करते हैं यदुनंदन॥ २०॥

जब आज्ञा का पालन करते ब्रज-बालाओं को पाया।
वस्त्र दिए प्रभु ने, मन में करुणा का भाव उमड़ आया॥ २१॥

राजन! प्रभु ने कन्याओं से बहुत हास-परिहास किया।
वस्त्र हरे, संकोच छुड़ाया, छल कर वाग्-विलास किया॥
गोपिकाओं को दिखा न कोई दोष, न मन में रोष हुआ।
प्रियतम का सान्निध्य प्राप्त कर, थी प्रसन्न, संतोष हुआ॥ २२॥

वस्त्र पहिन कर खड़ी रहीं, प्रभु के आगे ब्रज-बालाएं।
तिरछी चितवन पूछ रही थी, फिर सान्निध्य कहां पाएं॥ २३॥

प्रभु पद-सेवा एकमात्र कन्याओं का संकल्प रहा।
पाकर पावन प्रेम कृष्ण ने होकर प्रेमाधीन कहा॥ २४॥

है संकल्प तुम्हारा, मेरी पूजा का अवसर पायें।
मैं अनुमोदन करता हूँ, सच होंगी मनोकामनायें॥ २५॥

पूर्ण समर्पण जहाँ कामनाएं फिर काम नहीं जानें।
होते नहीं अंकुरित जैसे उबले चांवल के दानें॥ २६॥

हुई साधना सिद्ध, सत्य संकल्प हुआ ब्रज-बालाओ।
शरद-रात्रियों में विहार होगा, अब अपने घर जाओ॥ २७॥

बोले श्रीशुक - प्रभु आज्ञा पा, बालाओं ने नमन किया।
पूर्णकाम थीं, किंतु अनिच्छा पूर्वक ब्रज को गमन किया॥ २८॥

एक दिवस श्रीकृष्ण और बल, वृन्दावन से दूर गये।
गायों-ग्वालों को दिखलाने, हरे-भरे वन नए-नए॥ २९॥

सूर्य ग्रीष्म का तीव्र तप्त था, पर तरु देता था छाया।
यह देखा तो प्रभु ने सबको पास बुलाकर समझाया॥ ३०॥

हे श्रीदामा, सुबल, अंशु, हे अर्जुन, ऋषभ, विशाल सुनो।
देव, वरूथम, तेजस्वी, लघुकृष्ण आदि सब ग्वाल सुनो॥ ३१॥

भाग्यवान हैं वृक्ष, दूसरों की सेवा में रत रहते।
हमें बचाते हैं, लेकिन खुद शीत, धूप, वर्षा सहते॥ ३२॥

नहीं लौटता याचक खाली, जो सज्जन के घर जाता।
उपकारी पेड़ों से प्राणी कुछ-ना-कुछ अवश्य पाता॥ ३३॥

पत्र, पुष्प, फल, अंकुर, कोंपल, देते गोंद, छाल, छाया।
लकड़ी, जड़, सुगंध देते, देते कोयला जला काया॥ ३४॥

जीव जगत में बहुत, किंतु सार्थक उनका जीवन होता।
परहित हेतु समर्पित वाणी, अर्पित तन-मन-धन होता॥ ३५॥

फल-फूलों से लदें वृक्ष, डाली विनम्र हो झुक जाये।
वृक्षों की चर्चा करते-करते प्रभु यमुना-तट आये॥ ३६॥

यमुनाजी का जल अति-निर्मल, शीतल, मधुर स्वाद वाला।
गायें-ग्वाले जी भर पीते, पाते तृप्ति नंद-लाला॥ ३७॥

यमुना-तट पर गाय चराते बैठे थे दोनों भाई।
उसी समय भूखे ग्वालों ने अपनी पीड़ा बतलाई॥ ३८॥

तेईसवां अध्याय

यज्ञ करने वाले विप्रों की पत्नियों पर कृपा

सता रही है हमें क्षुधा, प्रभु से आकर बोले ग्वाले।
इसका कुछ निदान करिये, हे दुष्ट-दलन करने वाले॥ १॥

बोले श्रीशुक - राजन! सुनकर ग्वालों की बातें सारी।
विप्र-पत्नियों पर अनुकम्पा करने, बोले वनवारी॥ २॥

आयोजित है निटक अंगिरस यज्ञ स्वर्ग देने वाला।
जाकर वहीं मिलो विप्रों से, होगी वहीं पाकशाला॥ ३॥

हमने भेजा है, विप्रों को नाम हमारा बतलाना।
फिर भोजन मांगना, और जो कुछ वे दें, लेकर आना॥ ४॥

ग्वाले गए यज्ञशाला में, जो प्रभु का आदेश रहा।
कर दण्डवत प्रणाम, विप्रगण से दोनों कर जोड़ कहा॥ ५॥

हे भूदेव, हमारी सुनिये, हम सब हैं ब्रज के ग्वाले।
हमें भेजने वाले कृष्ण और बल हैं अति-बलवाले॥ ६॥

कृष्ण और बलराम साथ गायों के इस वन तक आये।
वे भूखे हैं और चाहते हैं, प्रसाद कुछ मिल जाये॥
आप धर्म का मर्म समझते, श्रद्धा का सम्मान करें।
ठीक लगे तो भोजनार्थियों को कुछ अन्न प्रदान करें॥ ७॥

सौत्रामणी और पशुबलि के दूषित होते आयोजन।
शेष सभी यज्ञों में प्राप्त किया जा सकता है भोजन॥ ८॥

ध्यान नहीं कुछ दिया विप्रगण ने सुनकर, बातें सारी।
स्वर्ग प्राप्ति के लिए कर रहे थे वे यज्ञ-कर्म भारी॥
मान रहे थे विप्र स्वयं को बुद्धिमान एवं ज्ञानी।
किंतु ज्ञान के दृष्टिकोण से, थी बच्चों-सी नादानी॥ ९॥

देश-काल-सामग्री-पद्धति, याज्ञिक या यजमान रहें।
तंत्र-मंत्र-यज्ञाग्नि-धर्म सब चीजों में भगवान रहें॥ १०॥

परम ब्रह्म परमेश्वर प्रभु को, माना मानव साधारण।
मूर्ख समझते हैं शरीर को ही आत्मा, इसी कारण॥ ११॥

जब विप्रों ने उन ग्वालों से, कुछ 'ना' या 'हां' नहीं कहा।
लौटे सभी निराश, टूटने को था धीरज रहा-सहा॥ १२॥

हँस कर बोले कृष्ण, निराशा से कुछ काम नहीं चलता।
ले लेती है रूप सफलता का, प्रयत्न से असफलता॥ १३॥

अब इस बार विप्र-ललनाओं की भोजन-शाला जाओ।
कृष्ण और बलराम यहां बैठे हैं, उनको बतलाओ॥
मुंह-मांगा खाद्यान्न तुम्हें देंगी वे ब्राह्मण ललनायें।
मेरी परम-भक्त हैं वे सब, नित मेरे ही गुण गायें॥ १४॥

विप्र-पत्नियों की शाला में जब ग्वाले इस बार गये।
ललनाएं बैठीं थीं पहने वस्त्राभूषण-नये-नये॥
विप्र-पत्नियों को ग्वालों ने, सिर को झुका प्रणाम कहा।
फिर विनम्रता से आये जिस कारण से, वह काम कहा॥ १५॥

आदरणीया बात हमारी सुनिये, हम करते वंदन।
भेजा हमें जिन्होंने, थोड़ी दूर रुके हैं यदुनंदन॥१६॥

कृष्ण और बलराम यहां आये हैं गाय चराने को।
ग्वाल-बाल भूखे हैं, कृपया कुछ भोजन दें खाने को॥१७॥

सुना नाम प्रभु का उतावलीं हुईं अचानक ललनायें।
सुनतीं थीं लीलाएं, उत्सुक थीं, कब प्रभु-दर्शन पायें॥१८॥

चार तरह का भोजन लेकर स्वयं चल पड़ीं ललनायें।
जैसे सागर से मिलने सरिताएं तेजी से जायें॥१९॥

सुनकर प्रभु का रूप-शील-गुण, थीं सब प्रभु की दीवानीं।
भ्राता-बंधु-पुत्र-पति, सबने रोका मगर नहीं मानीं॥२०॥

यमुना-तट पर थे अशोक जिस जगह नयी कोंपल वाले।
विचरण करते दिखे वहां, बलराम, कृष्ण एवं ग्वाले॥२१॥

श्याम-वर्ण तन पर पीताम्बर, माथे मोरपंख, माला।
चित्रित तन पर सजी कोंपलें, सुन्दर रूप नटों वाला॥
अलकें छुएं कपोल, कान में कमल, अधर मुस्कान भरे।
एक हाथ में कमल, सखा के कंधे दूजा हाथ धरे॥२२॥

राजन! अब तक कानों से थीं सुनीं कृष्ण की लीलाएं।
प्रियतम प्रभु को देख प्रेम में सराबोर थी ललनाएं॥
शांत किया परिताप, नेत्र से उन्हें हृदय तक ले जाकर।
हो जाता अभिमान जिस तरह शीतल, प्रज्ञा को पाकर॥२३॥

अंतर्यामी को उनके आने का कारण ज्ञात रहा।
संसृति के साक्षी-सर्वज्ञ-कृष्ण ने हँसते हुए कहा॥२४॥

भाग्यवती ललनाओ आओ, स्वागत है वृन्दावन में।
हृदय प्रेम से भरा तुम्हारा, दर्शन की इच्छा मन में॥२५॥

बुद्धिमान जो मुझको चाहे, उसका कुशल-क्षेम होता।
जैसा प्रियतम से होता, मुझसे भी वही प्रेम होता॥२६॥

प्राण, बुद्धि, मन, स्वजन, देह, धन को प्रिय माने जग सारा।
पर मैं प्रेमाधार, कौन होगा मुझसे ज्यादा प्यारा॥२७॥

प्रेम तुम्हारा है अभिनंदन योग्य, कठिन था आ पाना।
दर्शन प्राप्त हो चुके अब अच्छा होगा वापस जाना॥
अब पतियों के पास चली जाओ, है जहां यज्ञशाला।
बिना तुम्हारे यज्ञ, देवियो, पूर्ण नहीं होने वाला॥२८॥

विप्र-पत्नियां बोलीं, श्रुतियों की प्रभु सत्य करो वाणी।
नहीं लौटता जग में वापस, प्रभु तक पहुँचे जो प्राणी॥
चूंकि उल्लंघन स्वजनों की आज्ञा का हमने कर डाला।
केशों में पहनेगी प्रभु-पद-पद्म-पड़ी, तुलसी-माला॥२९॥

प्रभु हमको तो लगता है यदि हम सब घर वापस जायें।
माता-पिता, बंधु-भाई, पति-पुत्र न हमको अपनायें॥
हम आई हैं शरण आपकी, पड़े न हमको पछताना।
जिसे सहारा मिले आपका उसको और कहां जाना॥३०॥

प्रभु बोले देवियो! तुम्हें पति-पुत्र, पिता-माता, भ्राता।
सब स्वीकारेंगे, अपनों का कब अपमान किया जाता॥
करते हैं अनुमोदन सुरगण, तुम सब-की-सब हो मेरी।
देख रहा संसार तुम्हारी राह, करो मत अब देरी॥३१॥

नहीं अंग आधार प्रेम का, पर मन अगर लगा लोगी।
इसमें संशय नहीं शीघ्र ही, तुम सब मुझको पा लोगी॥३२॥

बोले श्रीशुक - विप्र-पत्नियों को विप्रों ने स्वीकारा।
उनके साथ बैठकर पूरा किया यज्ञ का क्रम सारा॥ ३३॥

एक विप्र-पत्नी जो प्रभु तक जा न सकी थी हतभागी।
वहीं यज्ञशाला में, प्रभु का करते ध्यान, देह त्यागी॥ ३४॥

चार तरह का अन्न जिसे था, विप्र-पत्नियों ने लाया।
पहले ग्वालों को खिलवाया, फिर प्रभु ने सप्रेम खाया॥ ३५॥

लीलाधारी प्रभु की रूपमाधुरी, वाणी, लीलाएं।
गो-गोपी-गोपों को दें आनंद, स्वयं प्रभु सुख पाएं॥ ३६॥

परमेश्वर हैं कृष्ण, कर रहे हैं नर-लीला, जब जाना।
पश्चाताप किया विप्रों ने, खुद को अपराधी माना॥ ३७॥

देख पत्नियों के मन में प्रभु-प्रेम, हुए सब शर्मिंदा।
करने लगे विप्र अपनी ही करनी की, खुद ही निंदा॥ ३८॥

धिक विद्या, धिक जन्म, ज्ञान-धिक, धिक-धिक वंश निपुणताएं।
बार-बार धिक्कार अगर हम विमुख कृष्ण से हो जाएं॥ ३९॥

हम साधारण विप्र, योगियों को मोहे प्रभु की माया।
गुरु बन गए मनुष्यों के, पर सच्चा ज्ञान नहीं पाया॥ ४०॥

देखो ये नारियां चाहती हैं मन से यदुनंदन को।
हैं गृहस्थ पर काट लिया है जन्म-मृत्यु के बंधन को॥ ४१॥

नहीं किया तप, नहीं बनी द्विज, गुरु से ज्ञान नहीं पाया।
पावनता-सत्कर्म रहित हैं, इन्हें न आध्यात्म भाया॥ ४२॥

फिर भी पुण्यश्लोक परमेश्वर इन ललनाओं को भाये।
हम न कर सके प्रेम कृष्ण से, हम बस संस्कार पाये॥ ४३॥

सच है, हम मद-मस्त, मूढ़-मति, सद्-गृहस्थ का भ्रम पाले।
अहो भाग्य, प्रभु ने तो भेजे थे सचेत करने, ग्वाले॥ ४४॥

पूर्णकाम प्रभु, मोक्ष सहित कामना पूर्ण करने वाले।
करने हमें सचेत भिजाये थे भोजन लेने ग्वाले॥ ४५॥

सभी देवता छोड़े, गर्व और चंचलता को त्यागा।
तभी रमा को मिला प्रभु-चरण छूने का वर मुंह-मांगा॥ ४६॥

देश-काल-सामग्री-पद्धति, याज्ञिक या यजमान रहें।
तंत्र-मंत्र-यज्ञाग्नि-धर्म, सब चीजों में भगवान रहें॥ ४७॥

वही विष्णु योगेश्वर मनुज-देह धर यदुकुल में आये।
यह था हमने सुना, मूढ़ता-वश पहचान नहीं पाये॥ ४८॥

हमें मिलीं पत्नियां भक्ति वालीं, हम बड़े भाग्यशाली।
उनके भक्ति-भाव ने हम सबकी भी बुद्धि बदल डाली॥ ४९॥

जिनकी माया के वश होकर, हम भ्रामक व्यवहार करें।
ज्ञानागार उन्हीं प्रभु का हम वंदन बारंबार करें॥ ५०॥

कर देती है, भ्रमित बुद्धि को पुरुषोत्तम प्रभु की माया।
क्षमा करें प्रभु, इस रहस्य को पहले नहीं समझ पाया॥ ५१॥

तिरस्कार करके प्रभु का, थे विप्र व्यथा से भरे हुए।
दर्शन की इच्छा थी, पर थे सभी कंस से डरे हुए॥ ५२॥

चौबीसवां अध्याय

इन्द्र-यज्ञ-निवारण

बोले श्रीशुक - प्रभु की लीलाएं होतीं हैं हितकारी।
एक दिवस देखी जब होती, इन्द्र-यज्ञ की तैयारी॥१॥

प्रभु तो हैं सर्वज्ञ, हाथ में हैं, जग के ताने-बाने।
लगे पूछने नंद आदि गोपों से बनकर अनजाने॥२॥

तैयारी कर रहे आप किस उपक्रम की कुछ बतलाएं।
क्या होता उद्देश्य और करने वाले क्या फल पाएं॥
आयोजन के लिए जुटाते कौन-कौन साधन सारे।
पिता आपसे पूछ रहा हूँ, मैं उत्सुकता के मारे॥३॥

मुझे बतायें आप, कार्य क्या होने वाला है भारी।
नहीं छुपाते संत-पुरुष अपनों से कभी जानकारी॥४॥

सब रहस्य शत्रुओं-उदासीनों से गोपनीय रहते।
क्या दुराव उनसे जो रहे हृदय में, जिन्हें सुहृद कहते॥५॥

अनुष्ठान कुछ ज्ञात रहें, कुछ का कुछ पता नहीं चलता।
जानकार फल पाता, अनजाने को मिलती असफलता॥६॥

होने वाला यज्ञ शास्त्र-सम्मत है या है परम्परा।
मुझे जानना है सब कुछ, मुझ से भी तो कुछ कहें जरा॥७॥

कहा नंद ने पुत्र, इन्द्र मेघों के स्वामी कहलाते।
वे ही जीवों को जीवन देने वाला जल बरसाते॥८॥

इन्द्र-मेघपति का वर्षों से हम पूजन करते आये।
सभी यज्ञ-वस्तुएं इन्द्र का बरसाया जल, उपजाये॥९॥

तीन फलों के लिए, यज्ञ से बचा अन्न हम सब खाते।
अपने कर्मों का फल भी हम, इन्द्रदेव से ही पाते॥१०॥

यही धर्म, कुल-परम्परा से वर्षों से आ रहा चला।
जो छोड़े भय, लोभ, द्वेष से, उसका होता नहीं भला॥११॥

बोले श्रीशुक - चूंकि रहा उद्देश्य इन्द्र को उकसाना।
कीं इसलिए नंद से प्रभु ने तर्क पूर्ण बातें नाना॥१२॥

प्रभु बोले - है जन्म-मृत्यु की निज कर्मों पर निर्भरता।
कर्मों के अनुसार जीव, सुख-दुख-भय आदि प्राप्त करता॥१३॥

कर्मों का फल ईश्वर देता, यदि यह मान लिया जाये।
तो फिर कर्महीन को कैसे ईश्वर भी फल दे पाये॥१४॥

जब फल देता कर्म, इन्द्र की हमें नहीं आवश्यकता।
इन्द्र हमारे किसी कर्म-फल को तो नहीं बदल सकता॥१५॥

हैं सब प्रकृति अधीन, प्रकृति जैसी, वैसा आचरण करें।
मनुज-असुर-सुर अपने कर्मों के फल का अनुसरण करें॥१६॥

कर्मों के अनुसार जीव उत्तम या अधम देह पाता।
कर्मों के अनुसार शत्रु या मित्र किसी का बन जाता॥
कर्मों के कारण ही मानव जग से उदासीन होता।
ईश्वरत्व एवं गुरुत्व सब कर्मों के अधीन होता॥१७॥

होगा उचित मनुष्य करे, केवल स्वधर्म का ही पालन।
वही इष्ट, जो करे सुगमता से जीवन का संचालन॥१८॥

जीवनदाता देव छोड़ यदि शरण दूसरे की जायें।
पतित्यक्ता नारी के जैसे, वे जन कहीं न सुख पायें॥१९॥

ब्राह्मण वेद पढ़ाते, क्षत्रिय-वर्ग धरा पर राज करे।
वैश्य वार्ता करें, सभी की सेवा शूद्र-समाज करे॥ २०॥

होते वैश्य सूद, कृषि, गोधन, वाणिज्यिक वैभव वाले।
चारों में से बस गोपालन ही करते हैं हम ग्वाले॥ २१॥

सत-रज-तम इस जग का उद्भव पालन और प्रलय करते।
प्राप्त रजोगुण करके, नर-नारी जीवन सुखमय करते॥ २२॥

उसी रजोगुण से पाकर प्रेरणा, मेघ जल बरसाते।
करता नहीं इन्द्र कुछ भी, हम व्यर्थ उसे पूजे जाते॥ २३॥

नहीं हमारे पास राज्य-घर-द्वार, न ग्राम-नगर होते।
हम वनवासी हैं, पहाड़-वन ही हम सबका घर होते॥ २४॥

इसीलिए हम पूजेंगे, गिरिराज, विप्र, एवं गायें।
इन्द्रयज्ञ की सामग्री से, इनके यज्ञ किए जायें॥ २५॥

सारे ब्रज का दूध इकट्ठा करके हलवा खीर बनें।
मूंग-दाल की बने कचौरी, पूरी, पुआ पनीर बनें॥ २६॥

वेदविज्ञ विप्रों के द्वारा, विधिवत यज्ञ किए जायें।
उन्हें दक्षिणा में दी जायें अन्न, वस्त्र एवं गायें॥ २७॥

चाण्डाल-पतितों को देकर भोजन, गायों को चारा।
भोग लगेगा फिर गिरि गोवर्धन को हम सबके द्वारा॥ २८॥

फिर प्रसाद पायें सब, सजधज कर देखें शोभा वन की॥
सब परिक्रमा करें अग्नि-गो-विप्र और गोवर्धन की॥ २९॥

मेरे मत से सहमत यदि सारे ब्रजवासी हो जायें।
मैं तो खुश हूँ, खुश होंगे गोवर्धन, विप्र और गायें॥ ३०॥

बोले श्रीशुक - प्रभु का अभिमत, नंद आदि सब को भाया।
दर्प भंग करने सुरेन्द्र का, प्रभु ने यह अवसर पाया॥ ३१॥

जैसा कहा कृष्ण ने विप्रों ने उस विधि को अपनाया।
गोवर्धन का यज्ञ हुआ, विप्रों ने स्वस्ति-गान गाया॥ ३२॥

गायों ने चारा पाया, विप्रों ने दान, बिना मांगे।
फिर प्रदक्षिणा को निकले सब गायों को करके आगे॥ ३३॥

गिरिवर की प्रदक्षिणा को सज-धज कर चलीं गोपिकायें।
बैलगाड़ियों पर बैठीं सब, यदुनंदन के गुण गायें॥ ३४॥

प्रभु गोवर्धन बन कर प्रकटे, हर सामग्री स्वीकारी।
'मैं गोवर्धन हूँ' जब ऐसा कहा, खुश हुए नर-नारी॥ ३५॥

प्रभु के साथ-साथ गिरि छबि को करने लगे प्रणाम सभी।
आश्चर्य है गिरिवर आये, पूर्ण हुए शुभ काम सभी॥ ३६॥

जो वनवासी करे निरादर, गिरि उनको निष्प्राण करें।
नमन करो इनको ये ग्वालों-गायों का कल्याण करें॥ ३७॥

थी प्रभु की योजना, विप्र, गिरिवर, गो को पूजा जाये।
तदनुसार कर यज्ञ पूर्ण, सब साथ कृष्ण के ब्रज आये॥ ३८॥

पच्चीसवां अध्याय
गोवर्धन-धारण

बंद नंद ने की है पूजा, समाचार इन्द्र ने सुना।
रक्षक हैं श्रीकृष्ण जानकर, क्रोध बढ़ गया कई गुना॥ १॥

क्रुद्ध इंद्र ने ब्रज भेजा सांवर्तक घन प्रलयंकारी।
तीन लोक का अधिपति खुद को मान, कहीं बातें सारी॥ २॥

धन का नशा बढ़ गया है, ब्रजवासी ग्वालों में ज्यादा।
एक कृष्ण के बल पर मेरी तोड़ रहे हैं मर्यादा॥ ३॥

छोड़ ब्रह्म-विद्या के साधन को भवसागर से तरने।
लोग धरा पर टूटी नौका जैसे यज्ञ लगे करने॥ ४॥

कृष्ण, मूर्ख, वाचाल, अनाड़ी, ग्रास मृत्यु का अभिमानी।
उसके बल पर मुझको छोड़ा, की ग्वालों ने नादानी॥ ५॥

दिया बढ़ावा इन्हें कृष्ण ने, धन के मद में हैं सारे।
टूटेगा इनका घमंड जब, जायेंगे सब पशु मारे॥ ६॥

मैं भी ऐरावत हाथी पर चढ़कर पीछे आऊंगा।
करने नष्ट नंद के ब्रज को, साथ मरुद्गण लाऊंगा॥ ७॥

बोले श्रीशुक - पा आदेश इन्द्र का घन प्रलयंकारी।
करने लगे भयंकर वर्षा, पीड़ित हुई प्रजा सारी॥ ८॥

बादल गरजे, बिजली चमकी, वृष्टि मूसलाधार हुई।
आंधी ने भी साथ दिया फिर ओलों की भरमार हुई॥ ९॥

दल के दल बादल बरसायें खम्बे-सी मोटी धारा।
ऊंचा-नीचा कहां क्या पता, लगा डूबने ब्रज सारा॥ १०॥

लगे ठिठुरने पशु-प्राणी सब आंधी-वर्षा के मारे।
आये प्रभु की शरण, आर्त होकर गोपियां-गोप सारे॥ ११॥

झुक कर बच्चों और शीश को बचा रहे थे लोग बड़े।
अति-वर्षा से व्यथित, शरण में प्रभु की ब्रज के लोग खड़े॥ १२॥

वे बोले - हे कृष्ण तुम्हीं हो महाभाग ब्रज के त्राता।
इन्द्र-कोप से हमें बचाओ, कष्ट न और सहा जाता॥ १३॥

प्रभु ने देखा चेतनता खो रहे शीत से नर-नारी।
समझ गए प्रभु, कुपित इन्द्र ने ही की है वर्षा भारी॥ १४॥

प्रभु ने सोचा यज्ञभंग से इन्द्र क्रुद्ध है अभिमानी।
इसीलिए लेकर आया बिजली, आंधी, ओले, पानी॥ १५॥

देने उत्तर उचित इन्द्र को है उपलब्ध योगमाया॥
दर्प और अज्ञान भंग करने का अब अवसर आया॥ १६॥

होता नहीं दर्प देवों में, होते है सतगुणधारी।
दर्पभंग से होगा जन-कल्याण, इन्द्र का हित भारी॥ १७॥

ब्रज मेरे आश्रित है, मेरी शरण समूचा ब्रज आया।
भक्तों की रक्षा के व्रत को पूर्ण करे मेरी माया॥ १८॥

बरसाती छत्ते उखाड़ना जैसे बच्चों को भाता।
गिरि गोवर्धन को उखाड़ कर प्रभु ने बना लिया छाता॥ १९॥

प्रभु ने कहा पिता, माता, ग्वाले, गोपी, बछड़े, गायें।
गोवर्धन के गड्ढे में आकर, सभी सुरक्षित हो जायें॥ २०॥

डरना मत, गिरि के गिरने की आशंका से भी बचना।
बचने को आंधी-पानी से, की मैंने अचूक रचना॥ २१॥

पा प्रभु का आश्वासन गिरि के नीचे गए गोप-ग्वाले।
आश्रित, गोधन, छकड़ों को लाकर सबने डेरे डाले॥ २२॥

नीचे सभी सुरक्षित ऊपर थी वर्षा प्रलयंकारी।
सात दिवस तक रहे उठाये, गोवर्धन को गिरधारी॥ २३॥

इन्द्र हुआ विस्मित जब देखी प्रभु की पराक्रमी माया।
बिना मनोरथ पूर्ण हुए, मेघों को वापस बुलवाया॥ २४॥

देखा चमक रहा है सूरज, बंद हुई वर्षा भारी।
तब ग्वालों को पास बुला कर बोले गोवर्धनधारी॥ २५॥

नदियां उतर गईं, वर्षा भी बंद हो गई है ग्वालो।
निर्भय होकर बाहर आओ, फिर बाहर डेरा डालो॥ २६॥

प्रभु की आज्ञा पाकर, ग्वालों ने लादे अपने छकड़े।
बाहर निकले लेकर गोधन, परिजन, छोटे और बड़े॥ २७॥

लोग देखते रहे चकित हो, प्रभु ठहरे लीलाधारी।
स्थापित कर दिया यथावत प्रभु ने गोवर्धन भारी॥ २८॥

गिरि को नीचे रखते ही सब ब्रजवासी दौड़े आये।
लगे चूमने, गले लगाने, हर्ष न व्यक्त किया जाये॥
गोपिकाओं ने अक्षत और दही से मंगल तिलक किया।
छोटों ने की पूजा और बुजुर्गों ने आशीष दिया॥ २९॥

नंदराय ने हृदय लगाया, गले मिले दोनों भ्राता।
प्रेमाकुल रोहिणी-यशोदा का सुख कहा नहीं जाता॥ ३०॥

पुष्पवृष्टि की देवों ने भी, साध्य, सिद्ध सब हरषाये।
प्रभु के स्तुति गान, चारणों ने, गंधर्वों ने गाये॥ ३१॥

गंधर्वों के प्रमुख तुम्बरु ने, प्रभु की लीला गाई।
शंख और दुन्दुभी बजा कर प्रभु में श्रद्धा दुहराई॥ ३२॥

इसके बाद चले प्रभु ब्रज को, साथ चले बल, बलशाली।
पीछे टोली ग्वाल-बाल की नित सेवा करने वाली॥
उनके पीछे चलीं गोपियां, कृष्ण बसें जिनके मन में।
प्रभु का लीला गान गुंजातीं जातीं थी वृन्दावन में॥ ३३॥

छब्बीसवां अध्याय

नन्द बाबा से गोपों की बातचीत

श्रीशुक बोले - राजन! प्रभु की देख अलौकिक लीलाएं।
करने लगे ग्वाल आपस में तरह-तरह की चर्चाएं॥ १॥

इस बालक के कर्म अलौकिक हैं, विस्मित करने वाले।
यह क्यों जन्मा बीच हमारे, हम ठहरे गंवार-ग्वाले॥ २॥

सात दिवस तक उठा रखा था इसने गोवर्धन ऐसे।
कमल पुष्प को उठा रखा हो सिर पर गजपति ने जैसे॥ ३॥

दूध पिलाने लगी पूतना, जब छोटा-सा था लाला।
मृत्यु पिये ज्यों आयु, कृष्ण ने प्राणों को भी पी डाला॥ ४॥

केवल तीन माह का था जब, तब इसकी ठोकर खाकर।
दूध-दही से लदा, बड़ा छकड़ा भी दूर गिरा जाकर॥ ५॥

एक वर्ष का जब था, उड़ा लिया था इसे बवंडर ने।
वह था तृणावर्त जो आया था इसके हाथों मरने॥ ६॥

और एक दिन जब माता ने बांधा इसको ऊखल में।
इसने ऊखल फंसा उखाड़े, दो-दो वृक्ष एक पल में॥ ७॥

एक दिवस जब वन में चरा रहे थे ग्वाल-बाल, बछड़े।
हमला किया बकासुर ने तो फाड़ा उसको खड़े-खड़े॥ ८॥

इसका वध करने वत्सासुर जब बछड़ा बन कर आया।
पटक कैथ के पेड़ों पर यमलोक उसे भी पहुंचाया॥ ९॥

मिलकर इससे बलदाऊ ने बलशाली धेनुक मारा।
खाने लगा ताड़ वन के मीठे फल तबसे, ब्रज सारा॥१०॥

क्रूर प्रलंबासुर को इसके कहने से मारा बल ने।
रक्षा की गायों-ग्वालों की, जब घेरा दावानल ने॥११॥

भगा दिया कालिय को इसने, फन पर करी नृत्य लीला।
मधुर हो गया यमुना का जल, जो था पहले जहरीला॥१२॥

नंद तुम्हारा पुत्र कृष्ण है, सबकी आँखों का तारा।
इसको सारे ब्रजवासी प्रिय, इसको चाहे ब्रज सारा॥१३॥

सात दिवस तक उठा रखा था, इसने गिरि गोवर्धन को।
सात वर्ष का पुत्र तुम्हारा शंकित करता है मन को॥१४॥

कहा नंद ने सुनो गोप-गण, तुमने जो-जो कार्य कहे।
ऐसा ही होगा पहले से, मुझसे गर्गाचार्य कहे॥१५॥

हर युग में शरीर धरता है यह बालक, था बतलाया।
शुभ्र, पीत, रक्ताभ हो चुके, कृष्ण वर्ण में अब आया॥१६॥

जन्मा था वसुदेव के यहां, पहले यह जो जन जानें।
इस बालक को वे सब ज्ञानी केवल वासुदेव मानें॥२७॥

बोले थे इस सुत के होंगे नाना रूप, नाम नाना।
कर्म और गुण से यह सारे जग में जायेगा जाना॥१८॥

यह सबका कल्याण करेगा, होंगे सुखी गोप-ग्वाले।
आने वाली आपदाओं को यह आसानी से टाले॥१९॥

एक समय थे चोर-लुटेरों से पीड़ित सज्जन सारे।
उनकी रक्षा की थी इसने, इससे सभी दुष्ट हारे॥२०॥

उन्हें न जीतें शत्रु, प्रेम जो इससे करें भाग्यशाली।
रहें सुरक्षित सुर, असुरों से, हरि की अनुकम्पा पा ली॥२१॥

यह मेरा सुत ऐश्वर्य-गुण में हरि के समान होगा।
मत विस्मय करना, प्रभावशाली-यश-रूपवान होगा॥२२॥

जैसा था आदेश गर्गजी का, था छुपा रखा सबसे।
गोपो! इसे मानता हूँ मैं, अंश विष्णु का ही तब से॥२३॥

विस्मय जाता रहा, गोप-गण का, प्रभु का प्रभाव जाना।
कहा नंद को भाग्यवान, खुद को भी भाग्यवान माना॥२४॥

अपना यज्ञ भंग होने से, जब था कुपित इंद्र भारी।
आंधी-ओले-वज्र, साथ में की वर्षा प्रलयंकारी॥
हुए द्रवित प्रभु, जब ब्रजवासी सब कुछ छोड़ शरण आये।
एक नयी लीला करने फिर उद्यत होकर मुस्काये॥
ज्यों बरसाती छत्र उखाड़े जाते बच्चों के द्वारा।
वैसे ही उखाड़ गोवर्धन, किया सुरक्षित ब्रज सारा॥
किया मान-मर्दन महेन्द्र का, हे शरणागत हितकारी।
हम पर हों प्रसन्न, हे गिरधारी, हे गोवर्धनधारी॥२५॥

सत्ताइसवां अध्याय

इन्द्र एवं कामधेनु द्वारा श्रीकृष्ण का अभिषेक

बोले श्रीशुक - सात दिवस तक प्रभु ने थामा गोवर्धन।
कामधेनु के साथ इन्द्र आये, जब हुआ मानमर्दन॥१॥

था शर्मिंदा इंद्र स्वयं के अतिचारी आचरणों पर।
रखा सूर्य जैसा तेजस्वी मुकुट, कृष्ण के चरणों पर॥२॥

तीन लोक का स्वामी हूँ, जब दूर हुआ यह भ्रम भारी।
प्रभु की स्तुति हाथ जोड़ की, इन्द्र हुआ निरहंकारी॥ ३॥

बोले इन्द्र - आप प्रभु शुद्ध, सत्वमय, शांत-रूपधारी।
हैं रज-तम से रहित किंतु प्रभु की माया विस्मयकारी॥
दिखता है गुण का प्रवाह प्रभु में इस माया के कारण।
वे हो जाते भ्रमित न जानें, प्रभु का रूप असाधारण॥ ४॥

लोभ-क्रोध सब गुण शरीर के धारण करें देहधारी।
आप गुणों से परे इसलिए कहलाते हैं अविकारी॥
किंतु धर्म की रक्षा करने को अवतार लिया करते।
मनुज रूप धारण कर दुष्टों का प्रतिकार किया करते॥ ५॥

आप जगतपति, आप जगत-गुरु, आप जगत के निर्माता।
काल रूप हैं आप, आपके द्वारा दण्ड दिया जाता॥
भक्तों की लालसा पूर्ण करने लीला स्वरूप धरते।
जो जगदीश मानते खुद को, उनका दंभ भंग करते॥ ६॥

खुद को मैं जगदीश मानता था अज्ञानी अभिमानी।
संकट में निर्भयता देखी, तब प्रभु की महिमा जानी॥
दुष्टों को दण्डित करते प्रभु, हर लेते अभिमान सभी।
होकर निरभिमान करते हैं, भगवन् का गुण-गान सभी॥ ७॥

मैंने ऐश्वर्य के मद में की है नादानी भारी।
मुझे आपकी प्रभुता की, बल की थी नहीं जानकारी॥
करके कृपा, क्षमा करिये प्रभु, हैं अपराध बहुत मेरे।
ऐसी करिये कृपा कि फिर अभिमान नहीं मुझको घेरे॥ ८॥

स्वार्थ-परायण असुरों का समूह पृथ्वी को भार हुआ।
उनसे मुक्ति दिलाने पृथ्वी को, प्रभु का अवतार हुआ॥
जो भयभीत भक्त है, प्रभु का भजन करे, वह निर्भय हो।
भक्तों की रक्षा करने वाले प्रभु की जय हो, जय हो॥ ९॥

नमस्कार पुरुषोत्तम प्रभु को, नमस्कार अंतर्यामी।
नमस्कार हे वासुदेव श्रीकृष्ण, जगतपति, जगस्वामी॥ १०॥

शुद्ध ज्ञान की मूर्ति, स्वेच्छा से ही तन स्वीकार करें।
सबका बीज, आत्मा सबकी, नम्र नमन स्वीकार करें॥ ११॥

यज्ञ-भंग से कुपित हो गया था, हे प्रभु मैं अभिमानी।
ब्रज को करने नष्ट चलाई आंधी, बरसाया पानी॥ १२॥

दर्प भंग कर, किया अनुग्रह, मुझे बनाया अनुगामी।
आत्म-रूप हैं, गुरु हैं, मैं हूँ शरण आपकी हे स्वामी॥ १३॥

बोले श्रीशुकदेव - इन्द्र की सुनकर स्तुतियां सारी।
गहन-गगन-गंभीर गिरा में हँसकर बोले गिरधारी॥ १४॥

यज्ञभंग था किया, ताकि अभिमान रहित आचरण रहे।
किया अनुग्रह ताकि तुम्हें नित-प्रति मेरा स्मरण रहे॥ १५॥

ऐश्वर्य-मद के अंधों को मेरा दण्ड नहीं दिखता।
किंतु अनुग्रह जब करता हूँ, कभी घमंड नहीं दिखता॥ १६॥

मेरी आज्ञा मानो अब तुम अपने इन्द्रलोक जाओ।
अपने अधिकारों में संयम एवं मर्यादा लाओ॥ १७॥

कामधेनु, सन्तान सहित तब ही आई करने वंदन।
वंदन कर बोली - हे गोप-रूपधारी, प्रभु यदुनंदन॥ १८॥

विश्वरूप हे कृष्ण, समूचा विश्व आपका उपजाया।
हम हो गईं सनाथ, आपके जैसा संरक्षक पाया॥ १९॥

वैसे तो इन्द्रादि देवता, सभी आपका यश गायें।
गो, द्विज, संत और देवों के इन्द्र, आप प्रभु बन जाये॥ २०॥

ब्रह्माजी की आज्ञा से अभिषेक करेंगी हम गायें।
भूमि-भार हरने वाले, गायों के इन्द्र कहे जायें॥ २१॥

बोले श्रीशुक - कामधेनु की बहने लगी दुग्ध-धारा।
किया गया अभिषेक दूध से, प्रभु का सब गायों द्वारा॥ २२॥

फिर प्रभु का अभिषेक हुआ नभ-गंगा के पावन जल से।
सुरमाताओं ने भेजे थे, ऐरावत से भर कलशे॥
पूर्ण हुआ अभिषेक देवताओं-गायों का मन भाया।
इन्द्र बने प्रभु गायों के उस दिन गोविंद नाम पाया॥ २३॥

थे नारद देवर्षि, सिद्ध, चारण, विद्याधर भी आये।
जग का ताप मिटाने वाले प्रभु के कीर्ति गान गाये॥
करने लगी नृत्य, आनंदित होकर सभी अप्सरायें।
तुम्बरु आदि गवैये, होकर मुग्ध, कृष्ण के गुण गायें॥ २४॥

नंदन-वन के पुष्प चढ़ाये गये देवताओं द्वारा।
था इतना आनंद कि आनंदित हो गया विश्व सारा॥
गायों के स्तन से अपने आप दूध की धार बही।
इतना दूध कि दूध-दूध से गीली होने लगी मही॥ २५॥

नदियों में रस बढ़े, सभी वृक्षों से फूटी मधु धारा।
पर्वत उगले रत्न, अन्न, औषधियां धरती के द्वारा॥ २६॥

होने से अभिषेक कृष्ण का कुछ बदलाव विचित्र हुए।
जो प्राकृतिक रूप से वैरी थे, आपस में मित्र हुए॥ २७॥

गो-गोकुल के इन्द्र हो गए इस प्रकार से यदुनंदन।
इन्द्र गया निज लोक, आज्ञा ले प्रभु से, करके वंदन॥ २८॥

अट्ठाइसवां अध्याय

वरुण लोक से नंद को छुड़ा कर लाना

बोले श्रीशुक - नंदरायजी एकादशी मनाते थे।
निराहार रह यमुना में जा, आधी रात नहाते थे॥ १॥

था असुरों का समय नंदजी, जब उतरे यमुना-जल में।
एक असुर ने वरुण लोक पहुंचाया उन्हें एक पल में॥ २॥

लौटे नहीं नंद तो रोने-धोने लगे गोप-ग्वाले।
बोले - राम-श्याम तुम ही हो, सारे ब्रज के रखवाले॥
नंद हुए अपहरित वरुण द्वारा जब मिली जानकारी।
पास वरुण के गए कृष्ण तत्काल भक्तजन भयहारी॥ ३॥

प्रभु को आया देख वरुण ने किया दौड़ कर अभिनंदन।
आनंदित होकर प्रभु की पूजा की, किया चरण-वंदन॥ ४॥

बोला वरुण हो गया सार्थक मेरा तन धारण करना।
चरण-धूल पाकर ही संभव होता भव-सागर तरना॥ ५॥

नमस्कार आपको जगतपति, जो माया से परे रहें।
परमब्रह्म हैं आप, सृष्टिकर्ता हैं, श्रुतियां यही कहें॥ ६॥

सेवक अज्ञानी है, प्रभु की महिमा नहीं जान पाया।
क्षमा करें अपराध, मूढ़ जो यहां नंदजी को लाया॥७॥

पिता आपको प्रिय हैं, हे गोविंद साथ में ले जायें।
हम पर रहे अनुग्रह ऐसा, प्रभु की सदा कृपा पायें॥८॥

बोले श्रीशुकदेव - वरुण ने प्रभु के कीर्ति-गान गाये।
पूरा ब्रज था मुदित, कृष्ण के साथ नंद वापस आये॥९॥

झुक-झुक करे प्रणाम कृष्ण को, वरुण महा-वैभवशाली।
नंद राय थे चकित, गोप-ग्वालों को कथा सुना डाली॥१०॥

राजन! जब जाना ईश्वर हैं कृष्ण, हुए उत्सुक ग्वाले।
परमेश्वर के परमधाम के दर्शन की इच्छा पाले॥११॥

प्रभु सर्वज्ञ सर्वदर्शी है, ग्वालों की इच्छा जानी।
थोड़ा किया विचार और फिर पूरा करने की ठानी॥१२॥

जीव, जगत में करे कामनाएं फिर कर्म करे नाना।
आत्म-स्वरूप न जाने, पड़ता नीच योनियों में जाना॥१३॥

यही सोचकर करुणानिधि को ग्वालों का विचार भाया।
अपना मायातीत धाम, प्रभु ने ग्वालों को दिखलाया॥१४॥

पहले हुए ब्रह्म-दर्शन, जो सत्य-सनातन कहलाते।
ज्योति स्वरूप ब्रह्म का, गुणातीत मुनि ही दर्शन पाते॥१५॥

थे अक्रूर नहाये जिसमें, स्नान किए उसमें सारे।
अपने परम धाम के, परम पुरुष ने फिर खोले द्वारे॥१६॥

स्तुति करते वेद दिखे तो नंद तनिक सा चकराये।
पाया परमानंद, धाम के जैसे ही अंदर आये॥१७॥

उन्नतीसवां अध्याय

रासलीला का प्रारंभ

बोले श्रीशुक - शरद-रात्रि को था पुष्पों ने महकाया।
प्रभु ने देखा, दिव्य बनाया, सक्रिय हुई योगमाया॥१॥

चन्द्रदेव ने प्राची के मुख पर यों कुंमकुम बिखराया।
जैसे दिनों बाद प्रेयसि से मिलने को प्रियतम आया॥
प्रखर सूर्य ने किरणों से दिन भर जितना संताप दिया।
चन्द्रदेव ने प्राची सहित प्राणियों का दुख दूर किया॥२॥

निशा पूर्णिमा की थी, शशि का मुख मंडल था खिला हुआ।
कमला जैसा रूप, रंग में नूतन केसर मिला हुआ॥
लगी चांदनी वन के कोने-कोने में अमृत भरने।
मधुर-तान मुरली की छेड़ी, उसी समय मुरलीधर ने॥३॥

मन पर गोपिकाओं के पहले से ही पूर्ण नियंत्रण था।
ऊपर से वंशी के स्वर में उद्दीपन-आमंत्रण था॥
सबने की थी साथ साधना, किंतु चली छुप कर सबसे।
कुंडल लहरातीं भागीं, था उनको इन्तजार कब से॥४॥

छोड़ा दुहना दूध किसी ने, दूध ओंटना भी छोड़ीं।
लपसी चढ़ी रही चूल्हे पर, सब प्रभु से मिलने दौड़ीं॥५॥

भोजन को परोसना छोड़ा, पति की सेवा भी त्यागी।
दुग्धपान करता शिशु छोड़ा, अपना कौर छोड़ भागी॥६॥

लगा रही थी काजल कोई, कोई अंगराग-चंदन।
अस्त-व्यस्त वस्त्रों में दौड़ी, बुला रहे थे यदुनंदन॥७॥

माता-पिता-बंधु-पति ने रोका अथवा बाधा डाली।
आत्म समर्पित थी प्रभु को, ना रुकी, न थी रुकने वाली॥ ८॥

जिसे न मिला मार्ग जाने का, पार न कर पाई बाधा।
आंख बंदकर, ध्यान लगा कर, मानस में प्रभु को साधा॥ ९॥

दुःसह विरह के तीव्र ताप में, भस्म हुए सारे बंधन।
मिला परम-सुख, परम-शांति, थे आलिंगन में यदुनंदन॥ १०॥

यद्यपि जार भाव था पहले, ब्रह्म भाव जब प्राप्त हुआ।
मिली दिव्यता, तो गुणमय तन का अनुबंध समाप्त हुआ॥ ११॥

नृप ने पूछा - गोपिकाओं की तो लौकिक अनुरक्ति रही।
प्रियतम के प्राकृतिक गुणों में ही उनकी आसक्ति रही॥
ब्रह्म-भाव का था अभाव, प्रभु से लौकिक अनुराग किया।
कैसे पाया ब्रह्म, किस तरह, लौकिक जग का त्याग किया॥ १२॥

बोले श्रीशुक - राजन! जैसा मैंने इसके पूर्व कहा।
प्रभु के लौकिक तन से द्वेष-भाव पीड़ित शिशुपाल रहा॥
नित्य निरंतन चिंतन के कारण उसने जो गति पायी।
क्या विस्मय यदि गोपी पाये, जिसको प्रभु की छबि भायी॥ १३॥

राजन! प्रभु तो अव्यय, अप्रमेय, गुणहीन कहे जाते।
जीवों के कल्याण हेतु ही वे मानव बन कर आते॥ १४॥

काम, क्रोध, सौहार्द, स्नेह, भय जैसा हो प्रभु से नाता।
सभी वृत्तियां प्रभुमय होतीं, नाता प्रभु तक पहुँचता॥ १५॥

राजन! विस्मय व्यर्थ आपका, अवतारी हैं यदुनंदन।
योगेश्वर श्रीकृष्ण काटते, इच्छा से भव के बंधन॥ १६॥

पहुंच चुकीं हैं निकट गोपियां, जैसे ही प्रभु ने देखा।
मधुर वचन प्रभु बोले, ओठों पर थी सहज हास्य-रेखा॥ १७॥

प्रभु बोले - स्वागत है सबका, भाग्यवान ब्रज-ललनाओ।
तुम सबको प्रसन्न करने, क्या कर सकता हूँ बतलाओ॥
ब्रज में है सब कुशल, पड़ी क्या आने की आवश्यकता।
इतनी रात गए आने का, फिर क्या कारण हो सकता॥ १८॥

रात्रिकाल में जीव-जंतुओं का भय होता है मन में।
ब्रज को लौटो, उचित नहीं स्त्रियां रुकें बीहड़ वन में॥ १९॥

होंगे दुखी तुम्हारे माता, पिता, पुत्रगण, पति, भ्राता।
अपने बंधु-बांधवों को, इस तरह न दुखी किया जाता॥ २०॥

देख लिया तुमने वृक्षों पर सजी हुई है फुलवारी।
लगता है ज्यों पूर्ण चन्द्र की किरणें करें चित्रकारी॥
यमुना के जल को छूकर जब बहती शीतल-मंद पवन।
पत्ते हिलने लगते और सुशोभित होता वृन्दावन॥ २१॥

देखो करो न देर सती हो तुम, कुलीन हो ललनाओ।
पति की सेवा करो, शीघ्र ही अपने-अपने घर जाओ॥
बच्चे रोते और रंभाते हैं देखो घर में बछड़े।
दुह कर दूध पिलाओ बच्चों को, हैं बाकी काम पड़े॥ २२॥

यदि मेरे प्रति प्रेम तुम्हारा, बना तुम्हारी लाचारी।
अनुचित नहीं, प्रेम करते हैं, मुझसे सभी जीवधारी॥ २३॥

पति की सेवा परम धर्म है, कल्याणी इसको मानें।
तुम पर निर्भर होंगे परिजन और तुम्हारी संतानें॥ २४॥

हो पति क्रोधी, भाग्यहीन, हो निर्धन, मूर्ख, वृद्ध, रोगी।
करे न पति का त्याग, तभी पत्नी की उत्तम गति होगी॥ २५॥

अन्य पुरुष का साथ, घृणित, निस्सार, कष्ट-कर, भयकारी।
अपयश पाती, लोक और परलोक नष्ट करती नारी॥ २६॥

श्रवण, कीर्तन, ध्यान और दर्शन से परम प्रेम पाओ।
नहीं निकटता देती वैसा प्रेम, इसलिये घर जाओ॥ २७॥

बोले श्रीशुक - गोपिकाओं ने जब प्रभु के विचार जाने।
चिंतित हो, दुःख के सागर में लगीं डूबने-उतराने॥ २८॥

गर्म श्वास से कुंदरू जैसे लाल अधर कुछ मुरझाये।
पैरों के नख से कुरेदने लगी भूमि, मुंह लटकाये॥
काजल लेकर अश्रु बहे, वक्षस्थल की केसर धोने।
खड़ी रही चुपचाप, हृदय की पीड़ा लगी प्रबल होने॥ २९॥

प्रेम गोपियों का प्रगाढ़ था, छोड़ी-भोग कामनाएं।
सुनकर प्रभु की निष्ठुर बातें, वे कब तक चुप रह पायें॥
धर कर धैर्य, लाल आंखों से रोका आंसू का बहना।
गोपिकाओं ने गद्‌गद् वाणी में प्रारंभ किया कहना॥ ३०॥

इतने निष्ठुर बचन न बोलो, कहने लगी गोपिकाएं।
त्याग दिया सर्वस्व, आपके चरण नहीं छोड़े जाएं॥
मोक्ष चाहने वाले, नारायण का सदा स्नेह पाते।
उसी तरह हम ललनाओं को, आप नहीं क्यों अपनाते॥ ३१॥

पति की, स्वजनों की सेवा है धर्म हमारा, ठीक कहा।
प्रभु चरणों पर इसीलिए तो, सदा हमारा ध्यान रहा॥
धर्मों के रहस्य को हमने, प्रेम किया, तब ही जाना।
इसीलिए हमने अपना सर्वस्व, स्वजन प्रभु को माना॥ ३२॥

प्रेम किया परमेश्वर से जो नित्य और सुखदायी हैं।
पति के और पुत्र के सब संबंध दुखद, अस्थायी हैं॥
मत काटो प्रभु जो वर्षों से हमने प्रेम-बेल बोई।
कमल-नयन, अब कृपा करो, है अन्य न अभिलाषा कोई॥ ३३॥

काम-काज में लगता था जो मन, वह तो तुमने लूटा।
सुख-स्वरूप तुम मिले गृहस्थी का, घर का बंधन टूटा॥
चरण तुम्हारे छोड़, पांव अब उठने को तैयार नहीं।
ब्रज में अब क्या काम, हमारा तो है अब संसार यहीं॥ ३४॥

वह वंशी की तान, मधुर मुस्कान और चितवन प्यारी।
लिए मिलन की इच्छा, मन में भड़क रही ज्वाला भारी॥
नहीं बुझायेगी इसको यदि, प्रभु के अधरों की धारा।
विरह-अग्नि में भस्म किया जायेगा तन, सबके द्वारा॥ ३५॥

प्रभु पद-कमल दबाने का सुख कमला पातीं कभी-कभी।
उसी पद-कमल की दासी हैं, कमल-नयन गोपियां सभी॥
जब से यह सौभाग्य मिला है, हमें नहीं कुछ भी भाता।
भूल गई हैं पति की सेवा, नहीं रहा जग से नाता॥ ३६॥

किया आपने कमला को यद्यपि वक्षस्थल पर धारण।
फिर भी चरण दबाती हैं वे, शायद तुलसी के कारण॥
सभी आपके भक्तों ने जब, यह पद-कमल धूल पाई।
हमें इसे देने में क्या है, कमल-नयन को कठिनाई॥ ३७॥

जो भी आता शरण, आपने सबके कष्ट मिटाये हैं।
यही मान कर तो प्रियतम हम, शरण आपकी आये हैं॥
चितवन चारु, मधुर मुस्कानों ने कामग्नि जलाई है।
दासी बना, शांत इसको करने में क्या कठिनाई है॥ ३८॥

देख तुम्हारा मुख, जिस पर शोभित हैं अलकें घुघराली।
हैं कमनीय कपोल, चूमते हैं कुंडल जिनकी लाली॥
अमृत भरे हुए अधरों पर रहती है मुस्कान सदा।
तिरछी चितवन मनोहारिणी, करती प्रेम प्रदान सदा॥
लक्ष्मी का क्रीड़ांगन विस्तृत वक्ष, अभय देती बाहें।
देख-देख यह रूप तुम्हारा, हम दासी बनना चाहें॥ ३९॥

मुरली की मादक ध्वनि सुनकर, देख मनोहर छबि प्यारी।
छोड़े नहीं आर्य मर्यादा, कहीं नहीं ऐसी नारी॥
एक बूंद सौंदर्य आपका पाकर जग शोभा पाये।
खग-मृग-गायें-वृक्ष समूची संसृति सुंदर हो जाये॥ ४०॥

नारायण उद्यत रहते हैं, देवों की रक्षा करने।
प्रकट हुए प्रभु आप कष्ट-भय इस ब्रज-मंडल का हरने॥
सभी जानते आप दीन-दुखियों पर सदा कृपा करते।
हम दुखियों के वक्ष और सिर पर क्यों नहीं हाथ धरते॥ ४१॥

बोले श्रीशुक - द्रवित हुए जब सुनी गोपियों की पीड़ा।
आत्म-निष्ठ योगेश्वर हँस कर, करने लगे प्रेम क्रीड़ा॥ ४२॥

की प्रभु ने अनुरूप गोपियों के जब सभी चेष्टाएं।
जिन्हें देख, आनंद-मग्न हो गईं प्रफुल्लित ललनाएं॥
कृष्ण हँसें तो कंदकली की तरह दांत शोभा पाएं।
घिरे गोपियों से, शशि को ज्यों घेरे रहें तारिकाएं॥ ४३॥

धारण करें वैजयन्ती प्रभु विचरण करें, गीत गाएं।
सौ-सौ दल में प्रभु को घेरे, गीत गोपियां दुहरायें॥ ४४॥

यमुना के तट पर कपूर सी श्वेत चमकती रेत जहां।
क्रीड़ा करते हुए गये प्रभु, सब गोपियों समेत वहां॥
तरल तरंगों वाले यमुना जल से लेकर शीतलता।
लेकर गंध कुमुदिनी से, तीरों पर मंद पवन चलता॥ ४५॥

कर फैला आलिंगन करते, हाथ दबाते, मुस्काते।
चोटी, जंघा, नीवी, स्तन को छूते, हँसते जाते॥
नखक्षत करने, फिर विनोद करने जैसे सब काम करें।
दिव्य काम के उद्दीपन का, काम कृष्ण निष्काम करें॥ ४६॥

करके कृपा कृष्ण ने गोपिकाओं को प्रेम प्रदान किया।
किंतु गोपियां समझी खुद को श्रेष्ठ और अभिमान किया॥ ४७॥

देख नहीं सकते प्रभु उनके प्रेमी को अभिमान हुए।
उनका गर्व शांत करने प्रभु, तत्क्षण अंतर्धान हुए॥ ४८॥

तीसवां अध्याय

श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की दशा

अंतर्धान हुए प्रभु तो, गोपियां कि जैसे प्राण छिना।
हालत हुई हथनियों-सी, वन में जो हों गजराज बिना॥ १॥

कर स्मरण कृष्ण की गज-सी चाल और तिरछी चितवन।
भाव-भंगिमाएं-लीलाएं, चुरा चुकीं थीं उनका मन॥
कृष्ण-प्रेम में हुई कृष्णमय, खुद को भूलीं ललनाएं।
दुहराने लग गई प्रेम-वश प्रेमी की सब लीलाएं॥ २॥

हास-विलास, चाल, चितवन, गति, वाणी, भाव-भंगिमाएं।
उन्हें प्राप्त हो गईं, कृष्ण के जैसी सभी नजर आएं॥
मैं हूँ कृष्ण लगीं कहने, उनका अस्तित्व समाप्त हुआ।
लगा प्रिया को अपने भीतर, जैसे प्रियतम प्राप्त हुआ॥ ३॥

लगीं ढूढ़ने फिर प्रभु को सब, इस वन से उस वन जातीं।
ऊँचे स्वर में मिलकर प्रभु की लीलाओं का यश गातीं॥
कृष्ण व्याप्त सर्वत्र, समूची संसृति में, जड़-चेतन में।
पता पूछती फिरें गोपियां, प्रभु का, पेड़ों से, वन में॥ ४॥

पीपल, पाकर, बरगद, तूने क्या देखा यदुनंदन को।
चुरा ले गए हँसी और चितवन से, वे सबके मन को॥ ५॥

हे चम्पा, पुन्नाग, नागकेसर, अशोक, कुरबक तरुवर।
मान मानिनी का मेटें जो, तुमको दिखे श्यामसुन्दर॥ ६॥

तुलसी प्रभु के चरण तुम्हें प्रिय, प्रभु पहने तुलसी माला।
तुम्हें दिखे हैं कहीं तुम्हारे प्रियतम कृष्ण नंदलाला॥ ७॥

क्या मालती, मल्लिका, जूही, प्रियतम कृष्ण यहां आये।
क्या तुमको आनंदित करने फूल तुम्हारे सहलाये॥ ८॥

कटहल, जामुन, आम, बेल, कचनार, कदंब, रसाल सुनो।
आक, मौलश्री, नीम, शाल, अंगूर हमारा हाल सुनो॥
मार्ग बताओ प्रभु को पाने का, तरुवर पर-हितकारी।
यमुना तट पर तुम सुख पाते, हम पर छाया दुख भारी॥ ९॥

भूमि, किया क्या तप जो प्रभु पद का स्पर्श सदा पातीं।
परमानंद तुम्हारा, हरी घास की नौंकें बतलातीं॥
वामन बनकर तीन पगों में तुम्हें नाप कर प्राप्त किया।
बन वाराह तुम्हें जल से ऊपर ला, कष्ट समाप्त किया॥ १०॥

प्रियतम जिनके अंग-अंग से बहती सौंदर्य धारा।
दिया गया क्या तुम्हें हिरणियो, दर्शन-सुख उनके द्वारा॥
उनकी कुंदकली की माला की ले गंध हवा बहती।
प्रेयसियों के कुच-कुंमकुम की भी सुगंध शामिल रहती॥ ११॥

उनकी तुलसी की माला पर रहते भौंरे मंडराते।
हाथ प्रिया के कंधे पर रख, कमल लिये आते-जाते॥
वृक्षो! तुमने देखा होगा, झुके हुए हो वंदन में।
क्या तुम पर चितवन डाली थी, प्रियतम ने अभिनंदन में॥ १२॥

पति-वृक्षों के आलिंगन में पुलकित हैं बेलें ऐसे।
प्रभु ने आते-जाते अपने नख से इन्हें छुआ जैसे॥ १३॥

इस प्रकार प्रभु को तलाशतीं कातर हुईं गोपिकाएं।
हुईं कृष्ण मय ऐसे, करने लगी कृष्ण की लीलाएं॥ १४॥

एक पूतना बनी, कृष्ण बन दूजी ने स्तन पकड़ा।
एक कृष्ण बन ठोकर मारे, गिरे दूसरी बन छकड़ा॥ १५॥

कान्हा बनी एक, बन तृणावर्त दूजी अपहरण करे।
चल घुटनों पर एक, बजा पायल, प्रभु का अनुकरण करे॥ १६॥

एक बनी वत्सासुर, दूजी बनी बकासुर भयकारी।
दो सखियों ने कृष्ण और बलदाऊ जैसी छबि धारी॥
शेष गोपियों ने ग्वालों का बछड़ों का स्वरूप धारा।
कृष्ण बनी गोपी ने, असुर बनी दो सखियों को मारा॥ १७॥

बजा बांसुरी कृष्ण बुलाया करते थे जैसे गायें।
एक करे वैसी ही लीला, वाह-वाह सब चिल्लायें॥ १८॥

रख कंधे पर हाथ सखी के बोली गोपी मतवाली।
मैं हूँ कृष्ण, देख लो मेरी चाल हृदय हरने वाली॥ १९॥

गोपी एक कृष्ण बन कहती, डरो न आंधी-पानी से।
है उपाय ऐसा बच सकते, ब्रजवासी आसानी से॥
गोपी उठा ओढ़नी अपनी, अपने ही सिर पर तानें।
खुद को समझे कृष्ण, ओढ़नी को गिरि गोवर्धन मानें॥ २०॥

एक कालिया बनी, दूसरी उसके सिर चढ़ चिल्लाई।
मैं दुष्टों का दलन करूंगा, भाग यहां से दुखदायी॥ २१॥

बोली गोपी एक लगी है, वन में दावानल भारी।
आंख बंद तुम करो, बचाने की मेरी जिम्मेदारी॥ २२॥

एक गोपिका बनी यशोदा, बनी दूसरी यदुनंदन।
लीला करने लगीं, हुआ था जैसे ऊखल से बंधन॥
भय का अभिनय करने, कृष्ण बनी गोपी मुंह को ढांकी।
वाह-वाह कर उठी गोपियां देख-देख बांकी-झांकी॥ २३॥

इसके बाद गोपियों ने, फिर शुरू किया पूछना पता।
उनको लगा जानते होंगे, वृन्दावन के वृक्ष-लता॥
लगी पूछने वे उनसे, क्या प्रियतम कृष्ण यहां आये।
तभी एक गोपी ने रज में, प्रभु के चरण-चिन्ह पाये॥ २४॥

ध्वज, अंकुश, जौ, कमल, वज्र यह सब प्रभु की पहचान बनें।
गये यहां से हैं, इस कारण से ही यहां निशान बनें॥ २५॥

प्रभु के साथ-साथ जब ब्रज-युवती के चरण-चिन्ह पायीं।
चर्चा करने लगी गोपियां, व्याकुलता से मुरझायीं॥ २६॥

भाग्यवती है जिसके कंधे पर कर रख ब्रजराज चले।
मस्त हस्तिनी को लेकर, जैसे कोई गजराज चले॥ २७॥

वे अवश्य ही यदुनंदन की आराधिका रहीं होंगीं।
किया हमारा त्याग चलो, ढूढ़ें वे यहीं-कहीं होंगीं॥ २८॥

अशुभ नष्ट करती है प्रभु के चरणों की रज इस कारण।
सखियो! ब्रह्मा, शंकर, कमला करें इसे सिर पर धारण॥ २९॥

अधरामृत पी रही कृष्ण का, सखि! यह युवती एकाकी।
और हमारे हृदयों में है, केवल व्याकुलता बाकी॥ ३०॥

चुभें न तृण उसको, प्रभु ने होगा कंधे पर बैठाया।
इसीलिए आगे हमने उसका पद-चिन्ह नहीं पाया॥ ३१॥

देखो सखियो! यहां कृष्ण के चरण-चिन्ह गहराये हैं।
निश्चित ही उस बाला को वे, कंधे पर बैठाये हैं॥ ३२॥

यहां उतारा होगा प्रभु ने, यहां चिन्ह हैं पाओं के।
और प्रिया के लिए, यहां से तोड़े फूल लताओं के॥
चुने कृष्ण ने पुष्प यहां, केवल पंजों पर रहे खड़े।
नहीं निशान यहां एड़ी के, हैं पंजे के चिन्ह बड़े॥ ३३॥

केश कामिनी के केशव ने, यहां बैठ सुलझाये हैं।
कामी-जन जैसे उसकी वेणी में फूल सजाये हैं॥ ३४॥

कृष्ण, आत्म-रत, आत्म-तुष्ठ, अविभाजित अव्यय अविकारी।
लीला की दिखलाने, कामी होता दीन, कुटिल नारी॥ ३५॥

सुध-बुध खोकर यहां गोपियां, इस वन से उस वन जायें।
भटक रहीं थीं, प्रियतम के पद चिन्हों के दर्शन पायें॥ ३६॥

जिस गोपी को कृष्ण साथ लाये थे उसका मान बढ़ा।
मैं ही केवल प्रिय हूँ प्रभु को, सोचा तो अभिमान बढ़ा॥ ३७॥

बोली - मेरे पद कोमल, थक गए, कठिन है चल पाना।
मुझे बिठाओ कंधे पर, यदि और दूर तक हो जाना॥ ३८॥

गोपी का प्रस्ताव सुना तो, सहमत कृष्ण अवश्य हुए।
लगी बैठने जैसे गोपी, प्रभु तत्क्षण अदृश्य हुए॥ ३९॥

हे प्रियतम, हे नाथ, हे रमण, कहकर गोपी पछतायी।
तुम हो कहां कृष्ण दर्शन दो, शरण तुम्हारी मैं आयी॥ ४०॥

चरण चिन्ह को देख-देखकर पहुंच गई गोपियां वहां।
पा प्रभु का वियोग, होकर निश्चेष्ट, पड़ी थी सखी जहां॥ ४१॥

उठी सखी तो उसने प्रभु से कैसा मान-प्रेम पाया।
कैसे उनको खोया, सारा विवरण सबको बतलाया॥ ४२॥

चरण-चिन्ह ढूढ़े सखियों ने, जहां-जहां चांदनी दिखी।
आगे अंधकार था, पेड़ों की छाया भी घनी दिखी॥
कहीं न कृष्ण गए हों इतने अंधकार में इस वन में।
लौट पड़ी गोपियों, कृष्ण की चिंता थी उनके मन में॥ ४३॥

उनका तो था हृदय कृष्ण-मय, प्रभु-मय सभी चेष्टाएं।
तन की जिनको याद नहीं, घर याद उन्हें कैसे आएं॥ ४४॥

यमुना के अति-पावन तट पर लौटीं सभी गोपिकाएं।
बैठ रेत में, मिल कर सब, प्रभु की लीलाओं को गाएं॥ ४५॥

इकतीसवां अध्याय

गोपिका गीत

गाने लगीं गोपियां - प्रियतम! तुम जब से ब्रज में आये।
स्वर्ग-लोक की तुलना में ब्रज की महिमा बढ़ती जाये॥
कमल-नयन की सेवा में कमला नित यहां निवास करें।
हम करके सर्वस्व समर्पण, बस दर्शन की आस करें॥ १॥

शरद-सरोवर के सरसिज की सुन्दरता हरने वाले।
यही नयन हैं, हम बालाओं को आहत करने वाले॥
क्या अस्त्रों से मारा जाना ही केवल, वध कहलाता।
उसे नहीं वध कहते क्या, जो नेत्रों से मारा जाता॥ २॥

यमुना के जहरीले जल से, अजगर बने अघासुर से।
रुष्ट इन्द्र की वर्षा, बिजली, ओलों से, वृषभासुर से॥
व्योमासुर से, दावानल से, बच पाये ग्वाले-गायें।
बार-बार हम सब ब्रजवासी, प्रभु का संरक्षण पायें॥ ३॥

नहीं यशोदा-नंदन केवल, तुम हृदयों के स्वामी हो।
प्राण-प्राणियों के तुम हो, साक्षी हो, अंतर्यामी हो॥
ब्रह्मा की विनती पर प्रभु ने यदुकुल में अवतार लिया।
भारी भार भूमि का कम करने का प्रभु ने भार लिया॥ ४॥

जो संसार-चक्र से डर कर प्राणी चरण-शरण आयें।
उनकी रक्षा करें कर-कमल, वे सब अभय दान पायें॥
वह कर-कमल पकड़ कर जिसमें सदा रमा का हाथ रखें।
वही कर-कमल हम दीनों के सिर पर दीनानाथ रखें॥ ५॥

ब्रज के सारे दूर किए दुख, वीर शिरोमणि भयहारी।
मन्द-मन्द मुस्कान ध्वस्त कर देती मोह-मान भारी॥
हमें चाहिए प्रेम, न रूठें हमसे, हम सब हैं दासी।
दिखला दो मुख-कमल, हमारी आंखें दर्शन की प्यासी॥६॥

कमला के कर-कमल हमेशा जो पद-कमल दबाते हैं।
छूकर जो पद-कमल समूचे पाप नष्ट हो जाते हैं॥
बछड़ों के पीछे चलते, फन कुचलें क्रूर कालिया के।
जलन मिटेगी, वही पद-कमल रखो वक्ष पर प्रभु आ के॥७॥

मधुर शब्द, अति मधुर वाक्य हैं, भाषा मधुर, मधुर वाणी।
सुन विद्वान निछावर होते, होते मुग्ध सभी प्राणी॥
वचनामृत के बाद चाहती हैं हम अधरामृत पीना।
दानवीर दो दान, हो रहा है अब तो मुश्किल जीना॥८॥

हम संतप्त गोपियों को अमृत बन जाती लीलाएं।
पाप मिटाने वाली लीलाओं को कवि-पण्डित गाएं॥
श्रवण मात्र से मंगल करतीं श्री, ऐश्वर्य प्रदान करें।
दानी सबसे श्रेष्ठ वही जो कृष्ण कथा का गान करें॥९॥

एक समय था, जब चितवन, मुस्कान और सब क्रीड़ायें।
करती थी हम याद, और मन में आनंदित हो जायें॥
पर तुमने करके बातें मनमोहक, मन को मोह लिया।
हृदय क्षुब्ध है, पता नहीं था तुम हो कृष्ण बड़े छलिया॥१०॥

चरण, कमल से कोमल, सुंदर बसते हैं सबके मन में।
पर जब ब्रज से गायें लेकर जाते हो पैदल वन में॥
देते होंगे कष्ट चरण को, कुश, कंकड़, कांटे, तिनके।
रहतीं हैं बेचैन हम सभी, दिन कटता क्षण गिन-गिन के॥११॥

दिन ढलने पर जब तुम लौटा करते हो लेकर गायें।
मुख पर गो-रज और नीलवर्णी अलकें शोभा पायें॥
बार-बार मुख-कमल मनोहर, दिखलाते आते-आते।
मिलने की कामना हृदय में और तीव्र करते जाते॥१२॥

रमा दबातीं जिनको जो भक्तों को सुख प्रदान करते।
भू-भूषण तुम, सभी समस्याओं का समाधान करते॥
वक्षस्थल पर अपने वही चरण रख दो हे गिरधारी।
तभी शांत होगी हे स्वामी, व्यथा हमारी है भारी॥१३॥

अधरामृत सबको सुख देता, सबके शोक समाप्त करे।
अधर चूमने का अवसर बांसुरी अधिकतर प्राप्त करे॥
इस वंशी ने अन्य किसी के लिए नहीं अवसर छोड़ा।
वितरण करें वीर अधरामृत, हम सब भी पाये थोड़ा॥१४॥

युग जैसे पल होते दिन में जब तुम होते हो वन में।
संध्या को लौटते, झूलतीं रहतीं अलके आनन में॥
दर्शन करते समय भार इन पलकों का बढ़ जाता है।
पलकों का निर्माण किया जिसने वह मूर्ख विधाता है॥१५॥

हम आईं हैं छोड़ सभी को, पति, सुत, बंधु और भ्राता।
किया उल्लंघन उनकी आज्ञा का, तोड़ा सबसे नाता॥
हम आईं, हमने वंशी की धुन को आमंत्रण माना।
अर्ध-रात्रि में हमें छोड़ अनुचित है, दूर चले जाना॥१६॥

मीठी बातें करके प्रियतम, मन में प्रेम जगाते थे।
प्रेम भरी चितवन से हमें, देखते थे, मुस्काते थे॥
लक्ष्मी जिस पर वास करे, देखा जबसे वक्षस्थल को।
मोह लिया मन को ऐसे, हम भूले नहीं एक पल को॥१७॥

तुम अवतरित हुए, सम्पूर्ण जगत का जब मंगल करने।
और समूचे ब्रज-मंडल का सब दुख-ताप-कष्ट हरने॥
हम सब का भी कष्ट बड़ा है, प्रभु हरने का कष्ट करें।
'मिलने' की औषधि देकर यह रोग हृदय का नष्ट करें॥ १८॥

चरण, कमल से भी कोमल हैं, और हमारे वक्ष कड़े।
धीरे रखतीं चरण वक्ष पर, कहीं न उन पर जोर पड़े॥
उन कोमल चरणों पर चलकर, करते छुपने की क्रीड़ा।
कंकड़-पत्थर लगने से क्या होती नहीं तुम्हें पीड़ा॥
तुम्हें चोट लग सकती है, यह सोच-सोच सब हारीं हैं।
प्राणनाथ, जी रहीं तुम्हारे लिए, सदैव तुम्हारीं हैं॥१९॥

बत्तीसवां अध्याय

भगवान का प्रकट होकर गोपियों को सांत्वना देना

बोले श्रीशुक - राजन्! प्रभु के दर्शन की लालसा लिए।
पहले गाये गीत गोपियों ने, फिर करुण विलाप किए॥ १॥

उसी समय प्रभु प्रकट हुए पहने पीताम्बर, वन-माला।
रूप कि मन को मथने वाले मन्मथ को मथने वाला॥ २॥

हुई प्रफुल्लित, आनंदित गोपियां देख कर प्रभु आये।
खड़ी हो गई सभी, प्राण, निष्प्राण देह जैसे पाये॥ ३॥

ले कर में कर-कमल कृष्ण के, एक सखी ने सहलाये।
कंधे पर भुजदण्ड कृष्ण के रखकर दूजी सुख पाये॥ ४॥

प्रभु के द्वारा गया चबाया पान, तीसरी ने पाया।
चौथी ने प्रभु के चरणों को, वक्षस्थल से चिपकाया॥ ५॥

सखी पांचवी, भौंह चढ़ाकर, दांत अधर पर धर-धर के।
ताक रही प्रभु को, कटाक्ष के तिरछे तीर चला करके॥ ६॥

प्रभु मुख-कमल पराग पी रही छठवीं, पलक न झपकाये।
थी अतृप्त ज्यों संत, पद-कमल पाकर भी न तृप्ति पाये॥ ७॥

नेत्र मार्ग से तप्त हृदय तक, एक सखी प्रभु को लाई।
पलकें करके बंद, किया आलिंगन, शीतलता पाई॥
कहना कठिन आत्म-रति पाकर कितनी आनंदित होगी।
शायद ऐसे ही पाते हैं, परमानंद महायोगी॥ ८॥

प्रभु को पा गोपियां हुईं हर्षित, संताप समाप्त हुआ।
ज्यों मुमुक्षुओं को सत्संग, परम-ज्ञानी का प्राप्त हुआ॥ ९॥

व्यथा मुक्त सखियों से घिर कर बढ़ी कृष्ण की सुन्दरता।
नर की शोभा बढ़े ज्ञान-बल को जब वह धारण करता॥ १०॥

मंद पवन, मंदार-कुंद की गंध, भ्रमित होते भंवरे।
सखियों संग गए प्रभु, यमुना तट थे जहां सजे-संवरे॥ ११॥

शरद-चन्द्र की विमल चांदनी ने तम दूर भगाया था।
तट को नरम रेत से कालिंदी ने स्वयं सजाया था॥ १२॥

दर्शन-रस ऐसा जिससे सब आधि-व्याधियां मिट जाएं।
जैसे श्रुतियों को सुनने से मिटती मनोकामनाएं॥
पूर्णकाम गोपी ने अपनी चूनर कुच-कुंमकुम वाली।
आत्म-रूप प्रभु की आसन के लिए बालुका पर डाली॥ १३॥

योगी अंतरमन में आसन प्रभु के लिए बनाते हैं।
पर अंतरमन के आसन पर प्रभु मुश्किल से आते हैं॥
और उसी प्रभु को बैठाने चुनरी डालें बालायें।
उनके बीच बैठकर प्रभु भी और अधिक शोभा पायें॥
प्रभु की शोभा अमित, अपरिमित होती प्रभु की सुन्दरता।
एक बूंद सौंदर्य कृष्ण का, जग में सुन्दरता भरता॥१४॥

प्रभु के सौंदर्य ने सखियों की इच्छायें भड़काईं।
कुछ ने देखा तिरछी चितवन से, कुछ धीमें मुस्काईं॥
रखे एक ने चरण गोद में, एक कर-कमल सहलाये।
एक प्रशंसा करे, एक छिपने पर खड़ी खार खाये॥१५॥

पूछा गोपी ने - कुछ करते प्रेम, कि प्रेम समान मिले।
कुछ का प्रेम बना रहता है, भले न कुछ प्रतिदान मिले॥
कुछ होते हैं लोग कि जिनसे कोई नहीं प्रेम पाता।
बतलाओ प्रभु तीनों में से, कैसा प्रेम तुम्हें भाता॥१६॥

प्रभु बोले - जो करे परस्पर प्रेम, प्रेम के व्यापारी।
ऐसा प्रेम स्वार्थ से होता, या होती है लाचारी॥
धर्म बिना, सौहार्द बिना, वह प्रेम नहीं जो लोग करें।
लेन-देन उद्देश्य, एक दूजे का बस उपयोग करें॥१७॥

प्रेम न करने वालों से जो करते प्रेम, श्रेष्ठ होते।
होते करुणाशील, हितैषी, माता-पिता ज्येष्ठ होते॥
स्वार्थ रहित यह प्रेम, भरी होती है, इसमें निश्छलता।
सत्य और सद्धर्म जहां होते हैं, वहीं प्रेम पलता॥१८॥

प्रेम-हीन हो या प्रेमी हो, जिनको कुछ परवाह नहीं।
आत्म-तुष्ठ या आत्म-निष्ठ को अन्य किसी की चाह नहीं॥
लोग किसी से प्रेम न करते, होते निर्मम-निर्मोही।
या तो वे कृतघ्न कहलाते, या कहलाते गुरु-द्रोही॥१९॥

मुझसे करते प्रेम लोग जो, मैं भी उन्हें प्रेम करता।
किंतु प्रेम में मेरे रहती नहीं नितान्त निरंतरता॥
जैसे धन मिलकर खो जाये, रहता ध्यान उसी धन में।
मेरे मिलने-छिपने से रहती है, कातरता मन में॥२०॥

छोड़े मेरे लिए स्वजन, श्रुति-रीति और कुल मर्यादा।
मैं जब ओझल हुआ, दिखा तुम सब में मुझे प्रेम ज्यादा॥
ऐसे समय याद तुमको, सौंदर्य-सुहाग नहीं आया।
तुम करती हो प्रेम, सर्वथा प्रेम योग्य तुमको पाया॥२१॥

लेकर कई जन्म भी मैं, इस ऋण से मुक्त न हो सकता।
कर सकती है उऋण, मुझे मन की विशालता-व्यापकता॥
मेरे लिए तोड़ दीं घर-कुटुम्ब की सभी श्रंखलाएं।
ये ऐसे बंधन हैं जिनको योगी भी न तोड़ पाएं॥२२॥

तैंतीसवां अध्याय

महारास

बोले श्रीशुक - प्रभु की वाणी से संताप समाप्त हुए।
संग मिला प्रभु का सखियों को, मन चाहे सुख प्राप्त हुए॥१॥

खड़ी हुईं थीं बाहों में बाहें डाले सखियां सारी।
की प्रभु ने रसपूर्ण रासलीला करने की तैयारी॥२॥

प्रभु ने मध्य गोपियों के इतने रूपों को प्रकटाया।
दो गोपी के दल ने दोनों ओर कृष्ण को ही पाया॥ ३॥

दो गोपी फिर एक कृष्ण, फिर दो गोपी थी, यह क्रम था।
कृष्ण खड़े हैं साथ उसी के, हर गोपी को यह भ्रम था॥
रासोत्सव प्रारंभ हुआ, नभ में शत-शत विमान आये।
देवी और देवता-गण उत्सुकता रोक नहीं पाये॥ ४॥

बजी दिव्य दुन्दुभियां खुद ही, सुमन सुरों ने बरसाये।
गंधर्वों ने और अप्सराओं ने प्रभु के यश गाये॥ ५॥

थी असंख्य गोपियां सभी नूपुर, करधन, कंगन पहने।
महारास में नृत्य किया तो बजने लगे सभी गहने॥ ६॥

गोपिकाओं के मध्य नाचते प्रभु शोभायमान ऐसे।
स्वर्णिम मणियों में मरकत मणि हो देदीप्यमान जैसे॥ ७॥

नाच रहीं गोपियां, उठाकर पांव, शीघ्र रखती नीचे।
कदम बढ़ाये आगे धीरे-धीरे, फिर खींचे पीछे॥
कभी चक्र की तरह घूमतीं, फिर भोंहों को मटकातीं।
हाथ घुमातीं, कटि लचकातीं, बल-खातीं, फिर मुस्कातीं॥
उड़ते वस्त्र और हिलते कुच, कुंडल गालों तक आते।
नीवी और चोटियों के बंधन ढीले होते जाते॥
इतने सारे कृष्ण लग रहा था नीलाभ मेघ छाया।
बिजली जैसी लगे गोपियों की गोरी-गोरी काया॥ ८॥

प्रभु से सटकर नाच रहीं गोपियां उच्च स्वर में गातीं।
हो जातीं आनंद-मग्न, स्पर्श कृष्ण का जब पातीं॥ ९॥

मिला कृष्ण के सुर में सुर, गोपी ने एक गीत गाया।
जब गोपी ने ऊँचे स्वर में गाया, तो प्रभु को भाया॥
उसी गीत का अन्य सखी ने ध्रुपद राग में गान किया।
प्रभु ने दोनों ही की, खूब प्रशंसा की, सम्मान किया॥ १०॥

एक श्रांत गोपी को ऐसा लगा कि कंगन अब खसके।
पकड़ लिया उसने प्रभु के कंधे को बाहों से कसके॥ ११॥

कंधे पर कर-कमल कृष्ण का, था चंदन-सुगंध वाला।
रोमांचित हो गई, चूमने लगी हाथ को ब्रज-बाला॥ १२॥

एक सखी के कुंडल हिलकर गालों तक आ जाते थे।
उसके गालों की शोभा को कुंडल और बढ़ाते थे॥
उसने अपने गालों को प्रभु के गालों से मिलवाया॥
प्रभु ने अपना आधा खाया पान, सखी को खिलवाया॥ १३॥

गोपी एक नाचती गाती, नूपुर-करधन खनकाती।
थककर प्रभु के हाथ वक्ष पर रखकर शीतलता पाती॥ १४॥

कमला तो एकांत वल्लभा, गोपिकाओं के भाग्य बड़े।
जिनके साथ रमापति गाते, डाल बांह में बांह खड़े॥ १५॥

नील-कमल के कुंडल कानों में कपोल पर थी अलकें।
छटा निराली थी आनन की, जिस पर श्रम-सीकर छलकें॥
नृत्य करें गोपियां, करधनी, नूपुर कंगन खनकातीं।
प्रभु के साथ नाचतीं-गातीं ललनाएं शोभा पातीं॥
फूल सुगंधित, जूड़ों और वेणियों से, गिरते जाते।
उनके पीछे उड़ते भंवरे, उसी ताल-लय में गाते॥ १६॥

गोपी के अंगों को प्रभु स्पर्श करें फिर मुस्कायें।
प्रेमभरी चितवन से देखें, लगती गले गोपिकाएं॥
जैसे अपनी छाया से, हो आनंदित, बालक खेलें।
गोपिकाओं के साथ जगत के स्वामी, जगपालक खेलें॥ १७॥

प्रभु के संग, अंग से लगकर विह्वल हुई गोपिकाएँ।
अस्त-व्यस्त हो गए वस्त्र आभूषण, केश खुले जायें॥
खिसक रही कंचुकी, फूल की मालाएं टूटी जायें।
प्रेम-मग्न गोपियां कठिनता से खुद को सम्हाल पायें॥ १८॥

देख कृष्ण को क्रीड़ा करते, मोहित हुई अप्सरायें।
चकित चन्द्र, नक्षत्र चमत्कृत, तारागण विस्मय खायें॥ १९॥

आत्म-रमण-रत हैं प्रभु पर, जब रसक्रीड़ा करने आये।
जितनी थी गोपियां, रूप उतने ही प्रभु ने प्रकटाये॥ २०॥

बहुत देर के नृत्य-गान से सखियां दिखीं थकीं हारीं।
करुणाकर ने, कर-कमलों से पौंछी श्रम बूंदे सारीं॥ २१॥

गालों पर बालों की लट, लटकी थी काली घुंघराली।
स्वर्ण जड़ित कुंडल टकराकर, और बढ़ाते थे लाली॥
प्रभु का पा स्पर्श गोपियां आनंदित हो मुस्काईं।
प्रेम भरी चितवन से कर सम्मान कृष्ण के गुण गाईं॥ २२॥

साथ हथनियों के जल में ज्यों थका हुआ गजराज घुसे।
साथ गोपियों को लेकर यमुना-जल में ब्रजराज घुसे॥
सखियों के वक्षस्थल की खा रगड़, कृष्ण की वनमाला।
थी क्षतिग्रस्त, अंग-केसर ने, उसका रंग बदल डाला॥
केसर की सुगंध के पीछे, भंवरे गुन-गुन कर आते।
ज्यों गंधर्व चल रहे पीछे-पीछे प्रभु का यश गाते॥ २३॥

हँस-हँस कर गोपियां डालने लगी कृष्ण पर बौछारें।
प्रभु के चारों ओर खड़ी हो पानी के छींटे मारें॥
स्तुति करते सुर, पुष्पों की वर्षा बार-बार करते।
प्रभु गजेन्द्र जैसे यमुना के जल में जल-विहार करते॥ २४॥

जल से निकल गोपियों को लेकर प्रभु उपवन में आये।
खिले हुए थे फूल सुगंधित, पवन गंध को बिखराये॥
विचरण करते कृष्ण, हाथ में ललनाओं का हाथ लिए।
ज्यों मदमस्त घूमता है गज, कई हथनियां साथ लिए॥ २५॥

पुंजीभूत अनेक रात्रियां थीं, वह थी अति-दिव्य निशा।
चारों ओर चांदनी फैली, आलोकित थी दिशा-दिशा॥
सभी शरद के काव्य-कथित रस से अनुप्राणित कण-कण था।
किंतु काम की चेष्टाओं पर प्रभु का पूर्ण नियंत्रण था॥ २६॥

कहा परीक्षित ने - प्रभु तो धरती पर इस कारण आये।
हो स्थापित धर्म और दुष्टों का नाश किया जाये॥ २७॥

दें उपदेश, करें रक्षा, प्रभु करें धर्म का निर्धारण।
पर-नारी का फिर प्रभु ने, स्पर्श किया मुनि! किस कारण॥ २८॥

पूर्ण काम थे कृष्ण, नहीं थी उनमें शेष कामनाएं।
दूर करें संशय, प्रभु ने क्यों की यह निंदित लीलाएं॥ २९॥

बोले श्रीशुक - रवि देखे सब, और अग्नि सब कुछ खाये।
तेजस्वी सामर्थ्यवान पर कोई दोष नहीं आये॥ ३०॥

सभी नहीं वह कर सकते, जो कुछ सामर्थ्यवान करता।
कार्यकरण की होती है, सामर्थ्य-शक्ति पर निर्भरता॥
शिव ने पिया हलाहल विष को, अन्य न कोई पी सकता।
करने को अनुकरण, शक्ति की होती है आवश्यकता॥ ३१॥

संभव नहीं दिव्य-दैवी-लीलाओं का अनुकरण करें।
यही उचित उनके उत्तम उपदेशों का अनुसरण करें॥ ३२॥

किसी कृत्य में स्वार्थ न होता और न अहंकार होता।
होता नहीं अनर्थ अगर शुभ करने का विचार होता॥ ३३॥

जिस जग के निर्माता ने जग के सब जीव बनाये हैं।
उनके लिए अशुभ-शुभ के, मन में विचार क्यों आये हैं॥ ३४॥

कटें कर्म-बंधन, जिनके पद-पंकज का पराग पाकर।
योगी पाते योग, भक्त-जन होते तृप्त जिन्हें गाकर॥
प्रभु को जो तत्वतः जानता हर बंधन कट जाता है।
उसे कर्मबंधन क्या बांधे, जो खुद मुक्ति प्रदाता है॥ ३५॥

जिससे अनुप्राणित गोपी, गोपीपति, सभी जीवधारी।
आत्म-रूप से बैठ सभी में, वही करे लीला सारी॥ ३६॥

होते प्रकट मनुष्य रूप में करते ऐसी लीलाएं।
जिन्हें देखकर-सुनकर प्राणी भक्ति-परायण हो जाएं॥ ३७॥

गोपों ने कुछ दोष न देखा, प्रभु ने की ऐसी माया।
हैं गोपियां पास उनके ही ऐसा उन्हें समझ आया॥ ३८॥

ब्रह्म-रात्रि बीती, प्रभु ने दी आज्ञा सब घर को जायें।
गई अनिच्छापूर्वक, प्रभु की प्यारी सभी गोपिकायें॥ ३९॥

साथ गोपियों के प्रभु की यह महारास की लीलायें।
जो श्रद्धा से सुनें, करें वर्णन, वे परा-भक्ति पायें॥
हृदय-रोग है काम-वासना, इससे मिलता छुटकारा।
होते ही निष्काम, हृदय में बहती कृष्ण-भक्ति धारा॥ ४०॥

चौतीसवां अध्याय

सुदर्शन और शंखचूड़ का उद्धार

बोले श्रीशुकदेव - एक दिन नंद, अम्बिका वन आये।
ग्वाले, पूजन की सामग्री भर-भर छकड़ों में लाये॥ १॥

सरस्वती में स्नान किया फिर मंदिर गए नंद-ग्वाले।
पूजन किया अम्बिका का, शिव का, जो सबके रखवाले॥ २॥

नंद चाहते थे, वे देवताओं की सदा कृपा पायें।
दान किए विप्रों को सोना, वस्त्र, मधुर भोजन, गायें॥ ३॥

नंद-सुनंद आदि ग्वालों ने व्रत में केवल नीर पिया।
थके हुए थे, शयन रात्रि में, सरस्वती के तीर किया॥ ४॥

आया अजगर एक, रात्रि में जहां नंद का था छकड़ा।
सोते हुए नंद को भूखे अजगर ने कस कर जकड़ा॥ ५॥

जल्दी आओ कृष्ण! नंद घबराये, प्रभु को चिल्लाये।
नहीं तुम्हारे सिवा अन्य कोई जो मुझे बचा पाये॥ ६॥

सुन आवाज नंद की, जागा गोपों का समूह सारा।
जलती हुई लकड़ियों से गोपों ने अजगर को मारा॥ ७॥

घायल होकर भी अजगर ने नहीं नंदजी को छोड़ा।
इसी बीच आ गए कृष्ण, चरणों से उसे छुआ थोड़ा॥ ८॥

पा स्पर्श कृष्ण का, अजगर का अभिशाप समाप्त हुआ।
क्षण भर में विद्याधर जैसा रूपवान तन प्राप्त हुआ॥ ९॥

उस तेजस्वी दिव्य पुरुष ने, प्रभु का किया चरण-वंदन।
हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ तो लगे पूछने यदुनंदन॥ १०॥

हो तुम कौन, तुम्हारे अंग-अंग में सुन्दरता छाई।
किसी विवशता के कारण अजगर की घृणित योनि पाई॥ ११॥

वह बोला मैं विद्याधर हूँ, खुश था पाकर सुन्दरता।
नाम सुदर्शन है, विमान पर यहां-वहां घूमा करता॥ १२॥

रूप-गर्व में, रूप-हीन ऋषियों की हँसी उड़ायी थी।
पाकर उनसे शाप, योनि अजगर की मैंने पायी थी॥ १३॥

शाप बना वरदान जगतगुरु ने चरणों से मुझे छुआ।
हुआ अनुग्रह ऋषियों का, जिससे मेरा कल्याण हुआ॥ १४॥

भव के भय से निर्भय हो जाता जो कृष्ण-शरण पाये।
शाप-मुक्त मैं हुआ जिस तरह मैंने कृष्ण-चरण पाये॥ १५॥

हे पुरुषोत्तम, हे लोकेश्वर, हे योगेश्वर अविकारी।
आज्ञा दो हे देव मुझे होकर प्रसन्न भवभयहारी॥ १६॥

पा स्पर्श चरण का, ऋषियों का अभिशाप समाप्त हुआ।
इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, जो प्रतिफल मुझको प्राप्त हुआ॥
प्रभु के नामों का श्रद्धा से जो जन उच्चारण करते।
कहने-सुनने वाले दोनों ही भवसागर से तरते॥ १७॥

आज्ञा पाई, की परिक्रमा, स्तुति की, प्रभु-चरण छुए।
अपने लोक गया विद्याधर, नंद सर्प से मुक्त हुए॥ १८॥

देख प्रभाव कृष्ण का राजन! विस्मित सभी गोप-ग्वाले।
पूरे किए विधान शेष थे, जो भी व्रत-पूजा वाले॥
नंद आदि सब गोप पूर्ण कर पूजा ब्रज वापस आये।
और राह में ग्वालों ने प्रभु के सारे चरित्र गाये॥ १९॥

राम-श्याम करते रहते थे ब्रज में अद्‌भुत लीलाएं।
एक दिवस बन गए विचरने, साथ ग्वाल, गोपी, गायें॥ २०॥

सजे वस्त्र-आभूषण-आलेपन से पहनें मालाएं।
दोनों का यश-गान कर रहीं थीं, आनंदित बालाएं॥ २१॥

निशारंभ था, चमक रहा था चंद्र, उग चुके थे तारे।
महका पवन कुमुदिनी-बेला से, थे भ्रमित भ्रमर सारे॥ २२॥

उसी समय पर राम-श्याम ने सुन्दर युगल गीत गाया।
मोहित हुआ चराचर जग, कानों को, प्राणों को भाया॥ २३॥

राजन! सुनकर गायन, हुई विमोहित सभी गोपिकाएं।
खिसक रहे, वस्त्रों को, पुष्पों को भी नहीं रोक पाएं॥ २४॥

कृष्ण और बल के द्वारा जब गीत जा रहा था गाया।
शंखचूड़ नामक कुबेर का अनुचर तभी वहां आया॥ २५॥

ले वह सभी गोपियों को उत्तर की ओर लगा जाने।
जिनके स्वामी स्वयं कृष्ण, वह लगीं गोपियां चिल्लाने॥ २६॥

राम-श्याम ने देखा, जैसे डाकू ले जाते गायें।
यक्ष हरे गोपियां, कृष्ण हे, हे बल चिल्लाती जायें॥ २७॥

डरो नहीं, ऐसा कह दौड़े, तेजी से दोनों भाई।
शाल-वृक्ष ले निकट गए तो, समझा यक्ष, मृत्यु आई॥ २८॥

जब देखे दो काल यक्ष ने, वहीं गोपियों को छोड़ा।
घबरा कर फिर अपनी जान बचाने, तेजी से दौड़ा॥ २९॥

बलदाऊ रुक गए, सुरक्षित जिससे रहें गोपिकाएं।
कृष्ण गए पीछे, उसका वध कर उसकी मणि ले आएं॥ ३०॥

तनिक दूर पकड़ा प्रभु ने, सिर पर कस कर घूंसा मारा।
मणि वाला सिर फटा, हो गया क्षत-विक्षत शरीर सारा॥ ३१॥

शंख-चूड़ को मार कृष्ण, उसकी चमकीली मणि लाये।
बलदाऊ को मणि दी, प्रभु के चरित गोपियों ने गाये॥ ३२॥

पैंतीसवां अध्याय

युगल गीत

बोले श्रीशुक - दिन में गायें ले प्रभु जब जाते वन को।
ले जाया करते थे अपने साथ गोपियों के मन को॥
दिन का समय बितातीं बेचैनी में सभी गोपिकाएं।
करें कृष्ण की चर्चा दिन भर और कृष्ण के यश गाएं॥ १॥

बोली गोपी एक - इस तरह वंशी कृष्ण बजाते हैं।
रख बायां कपोल बायें कंधे पर, भौंह नचाते हैं॥
फिर मुरली ओठों पर रख, कोमल उंगलियां चलाते हैं।
छेड़ें ऐसी तान, सभी प्राणी मोहित हो जाते हैं॥ २॥

सिद्ध-पत्नियां सुनने को वंशी-ध्वनि यानों से आतीं।
होतीं मोहित किंतु साथ में पति होने से शरमातीं॥
क्षण भर में जैसे ही काम-मार्ग पर उनका मन जाता।
सुधबुध खोतीं ऐसी, वस्त्रों तक का होश न रह पाता॥ ३॥

जब हंसते प्रभु दंत-पंक्ति बन जाती मोती की माला।
रेख वक्ष की जैसे घन पर बिजली ने डेरा डाला॥
वंशी की ध्वनि दुखी-जनों के मन को आनंदित करती।
विरहनियों के मृत शरीर में नया प्राण वंशी भरती॥ ४॥

सुन मुरली की तान दौड़ कर आते वृषभ, हिरन, गायें।
मुंह का चारा मुंह में रहता, सकें न उगल, न खा पायें॥
कान उठा ऊपर, स्थिर रह जाते, दशा विचित्र बनें।
लगता खड़े-खड़े सोये, या दीवारों पर चित्र बनें॥ ५॥

मोर-पंख सिर पर धारण कर, पुष्प सजाते बालों में।
कंधों पर पल्लव, विभिन्न रंगों का लेपन गालों में॥
बल के साथ ग्वाल-बालों के बीच बैठ शोभा पायें।
फिर बांसुरी बजाते जिसको सुन गायें दौड़ीं आयें॥ ६॥

सुन वंशी की तान रोक लेतीं प्रवाह को सरिताएं।
उनकी भी कामना कृष्ण के चरण-कमल की रज पायें।
ऊपर उठकर वे भी प्रभु का आलिंगन करना चाहें।
पर उठकर स्तंभित हो जातीं हैं लहरों की बाहें॥ ७॥

आदि-पुरुष नारायण के बल का ज्यों देव बखान करें।
गोप, कृष्ण की लीलाओं का, ऐश्वर्य का गान करें॥
गिरि गोवर्धन की तराइयों में चरती हैं जो गायें।
सुन मुरली की धुन में अपना नाम शीघ्रता से आयें॥ ८॥

वन के वृक्ष-लताएं, फूलों और फलों से लद जायें।
करतीं हों प्रणाम धरती को, ऐसे झुकतीं शाखायें॥
पाकर प्रभु का प्रेम प्रफुल्लित-रोमांचित सब हो जायें।
वृक्षों और लताओं से बहने लगतीं मधु-धारायें॥ ९॥

माथे सुन्दर तिलक, गले में शोभित सुन्दर वनमाला।
तुलसी की सुगंध ने भंवरों को मतवाला कर डाला॥
भंवरे गुन-गुन करते, अपनी मस्त रागिनी में गाते।
कृष्ण बजाते उसी राग में वंशी, तो स्वर मिल जाते॥ १०॥

ध्वनि सुन, सारस, हंस आदि पक्षी जल में रहने वाले।
होकर विवश बैठ जाते हैं, आसपास डेरा डाले॥
करके आंखें बंद, शांत हो सुनते मुरली के स्वर को।
जैसे परमहंस कोई, स्मरण करे परमेश्वर को॥ ११॥

कानों में फूलों के कुंडल, धारण करके मुरलीधर।
लेकर बल को साथ, खड़े हो जाते हैं गोवर्धन पर॥
विश्व विमोहित करने को फिर मुरली मधुर बजाते हैं।
सुर के माध्यम से सारी संसृति को गले लगाते हैं॥ १२॥

सुनकर मुरली की धुन को घन मंद-मंद गर्जन करता।
कहीं न हो स्वर भंग इसलिये तेज गर्जने से डरता॥
प्रभु को धूप न लगे, मेघ ऊपर छाकर छाया करता।
श्वेत-पुष्प नन्हीं-नन्हीं बूंदों के बरसाया करता॥ १३॥

देवि-यशोदा, पुत्र तुम्हारा, सब खेलों का ज्ञाता है।
बिना किसी से सीखे, मुरली कितनी मधुर बजाता है॥
बिम्बा फल जैसे अधरों पर, जब उसकी बांसुरी सजे।
अपने आप बांसुरी से हर स्वर निकले, हर राग बजे॥ १४॥

जब वंशी पर कृष्ण छेड़ते हैं कुछ मधुर नई तानें।
ब्रह्मा-शंकर-इन्द्र आदि मर्मज्ञ न उसको पहचानें॥
कोशिश करके भी वे अपने मन को नहीं रोक पाते।
सुध-बुध खो देते, वंशी की धुन में तन्मय हो जाते॥ १५॥

चरण-कमल में, वज्र, कमल, ध्वज, अंकुश चिन्ह हुआ करते।
खुर से खुदी भूमि की पीड़ा, रखकर चरण-कमल हरते॥
मन्द-मन्द गति से चलते, जैसे कोई गजराज चले।
चलते कृष्ण साथ में उनकी, मुरली की आवाज चले॥ १६॥

वह वंशी ध्वनि मस्त, चाल मदमाती, वह तिरछी चितवन।
ले मिलने की चाह, उन्हीं के पास चला जाता है मन॥
जड़वत होतीं, मुश्किल होता अंगों का हिलना-डुलना।
ज्ञात न रहता, वस्त्र सरक जाना या जूड़े का खुलना॥ १७॥

शोभा पातीं ग्रीवा में तुलसी की, मणि की मालायें।
तुलसी की सुगंध लेते, मणिमाला से गिनते गायें॥
कंधे पर रख हाथ सखा के, जब हो जाते कृष्ण खड़े।
गाते और बजाते वंशी, मोहित होते बड़े-बड़े॥ १८॥

सुनकर मुरली, मुरलीधर की, जैसे हम सब सुख पातीं।
काम-काज सब छोड़, स्वयं को उनके ही सम्मुख पातीं॥
मोहित होतीं कृष्णसार हिरणियां, पास दौड़ीं आतीं।
देखा करतीं उन्हें एकटक, फिर घर लौट नहीं पातीं॥ १९॥

देवि-यशोदा पुण्यवान हैं, ऐसे सुन्दर सुत पाये।
घेरे रहते गोप और गायें, सब के मन को भाये॥
कुंदकली के फूलों से वे खुद को खूब सजाते हैं।
यमुना-तट पर ग्वालों को ले खेल खेलने जाते हैं॥ २०॥

शीतल-मंद-पवन बहता, ले गंध मलय के चंदन की।
करता है इस तरह पवन भी सेवा, प्रिय यदुनंदन की॥
बंदी-जन, उपदेव और गंधर्व, बजाते-गाते हैं।
सभी कृष्ण को खुश करने, सेवा करने को आते हैं॥ २१॥

अपनी प्रिय गायों को लेकर आते होंगे यदुनंदन।
रोक लिए होंगे ब्रह्मा, शिवशंकर करने को वंदन॥
मुरली मधुर बजाते अब तो मुरलीधर आते होंगे।
आगे गायें होंगी, पीछे ग्वाले यश गाते होंगे॥ २२॥

देखो तो गोधूलि उड़ाते हुए कृष्ण ब्रज में आये।
वनमाला पर धूल पड़ी, माला के पुष्प न मुरझाये॥
थोड़ी तो थकान होगी ही, दिन भर रहते हैं वन में।
किंतु भर रहे हैं आनंद, हमारी आंखों में, मन में॥ २३॥

आंखें हैं मदभरी, लालिमा लिए और हैं कुछ भारी।
वन-फूलों की माला लहराते आते है वनवारी॥
बिदा कर रहे ग्वालों को, कानों में कुंडल लहराते।
स्वर्ण-चमक से गाल, अधपकी बेरी जैसी छबि पाते॥ २४॥

संध्या की बेला में ब्रज की गलियों में ब्रजराज चलें।
जैसे मद से भरी चाल से, जंगल में गजराज चलें॥
दिन भर था परिताप, विरह से हृदय हमारा था जलता।
जग को शीतल करे चन्द्रमा, प्रभु दें मन को शीतलता॥ २५॥

बोले श्रीशुक - राजन! कृष्णमयी थी सब ब्रज-बालायें।
दिन भर करती चर्चा, संध्या में प्रभु के दर्शन पायें॥ २६॥

छत्तीसवां अध्याय

अरिष्टासुर का उद्धार और कंस का अक्रूर जी को ब्रज भेजना

बोले श्रीशुक - एक दिवस ब्रज में बन बैल असुर आया।
नाम अरिष्टासुर था, कंधा था विशाल, भारी काया॥
पटक रहा था खुर तेजी से, थी कम्पायमान धरती।
खुर से उड़ती धूल समूचे नभ को आच्छादित करती॥ १॥

पूंछ उठाकर ऊपर, वह भारी गर्जन करता आया।
मेंड़ों एवं दीवारों को उसने सींगों से ढाया॥ २॥

दौड़ रहा था, मूत्र-विसर्जन करता, गोबर फैलाता।
सींग उठा कर, आंखें फैलाए, दहाड़ता, गुर्राता॥ ३॥

गर्भ नारियों के, गायों के, गर्जन सुन गिर जाते थे।
पर्वत समझ दुष्ट के कंधे पर बादल घिर आते थे॥ ४॥

हुए भयातुर पैने सींगों से सब गोप-गोपिकायें।
पशुशाला को छोड़ दूर भागे सारे बछड़े-गायें॥ ५॥

ब्रजवासी, हे कृष्ण-कृष्ण कहकर, गोविंद शरण आये।
प्रभु ने देखा सारे ब्रजवासी हैं भय से घबराये॥ ६॥

प्रभु ने कहा 'डरो मत' तब आश्वस्त हो गया ब्रज सारा।
'डरा रहा क्यों गायों-ग्वालों को' कह प्रभु ने ललकारा॥ ७॥

मैं हूँ यहां दुष्ट-दैत्यों का दर्प भंग करने वाला।
उकसाने को ताल ठोंक कर खड़े हो गए नँद लाला॥ ८॥

हाथ गले में एक सखा के डाल, कृष्ण ने उकसाया।
देख चुनौती प्रभु की वृषभासुर क्रोधित हो गुर्राया॥
झपटा प्रभु की ओर, नुकीले खुर से खोद-खोद धरती।
उठी पूंछ नभ के मेघों के दल को तितर-बितर करती॥ ९॥

प्रभु पर लगा टकटकी, सींग उठा दौड़ा, छलांग भरता।
सही लक्ष्य की ओर इन्द्र का जैसे वज्र चला करता॥ १०॥

पकड़े सींग अठारह पग तक, प्रभु ने धकियाया पीछे।
गज से ज्यों गज भिड़ें, गिराया प्रभु ने दानव को नीचे॥ ११॥

लेकर लम्बी सांस, क्रुद्ध वृषभासुर झट हो गया खड़ा।
था तरबतर पसीने से पर फिर भी प्रभु पर टूट पड़ा॥ १२॥

सींग पकड़ कर उसे गिराया नीचे, प्रभु ने की लीला।
रखकर उस पर पांव, निचोड़ा, जैसे हो कपड़ा गीला।
दबा पांव से प्रभु ने उसके दोनों सींग उखाड़ लिए।
उसके ही सीगों से उस पर, फिर अनगिनत प्रहार किए॥ १३॥

पैर पटकने लगा दैत्य, उसमें उठने का बल न रहा।
गोबर और मूत्र तो निकला ही, मुँह से भी रक्त बहा॥
आंखें पलट गई, मुश्किल से उसके प्राण निकल पाये।
सुमन देवताओं ने बरसाये, स्तुति की, हरषाये॥ १४॥

मार अरिष्टासुर को प्रभु, बलराम सहित ब्रज में आये।
हुई प्रसन्न गोपिकाएं, गोपों ने प्रभु के यश गाये॥ १५॥

प्रभु की लीला है विचित्र, जब गया अरिष्टासुर मारा।
मिले कंस से नारद जाकर, बतलाया रहस्य सारा॥ १६॥

देवि-यशोदा की पुत्री थी, जो कन्या आकाश गई।
कृष्ण, देवकी का सुत है, जिसने मारे हैं दैत्य कई॥ १७॥

यह वसुदेव, रोहिणी को सुत-सहित नंद घर पहुंचाया।
सुन नारद की सारी बातें, कंस क्रोध से थर्राया॥ १८॥

ली निकाल तलवार कंस ने, तब नारद ने समझाया।
निरपराध वसुदेव, काल यदि उनका सुत बनकर आया॥ १९॥

पर वसुदेव-देवकी को बंदीगृह में डाला खल ने।
नारद गए, बुलाया केशी को कुछ नई चाल चलने॥ २०॥

केशी को आज्ञा दी, राम-कृष्ण को ब्रज जाकर मारे।
फिर बुलवाये शल, तोशल, मुष्टिक, चाणूर मल्ल सारे॥ २१॥

बुलवाये खल ने सब मंत्री और महावत भी आये।
सबको उनका काम बताया, था भीतर से भय खाये॥ २२॥

राम-कृष्ण वसुदेव-पुत्र हैं, दोनों ब्रज में रहते हैं।
मेरी मृत्यु उन्ही के हाथों होगी, सुरगण कहते हैं॥ २३॥

दंगल का आयोजन है, वे इसे देखने आयेंगे।
यहीं अखाड़े में मल्लों के हाथों मारे जायेंगे॥
दंगल को देखने नगर के, जनपद के दर्शक आयें।
मंच बनाये जायें, की जायें सब उचित व्यवस्थायें॥ २४॥

रहे कुबलिया-पीड़ द्वार पर लगातार डेरा डाले।
कुचल दिए जायें दोनों बालक, ब्रज से आने वाले॥ २५॥

चतुर्दशी से ही करना है, धनुष-यज्ञ की तैयारी।
भैरव को पशु भेजे जायें, है जिनकी बलि की बारी॥ २६॥

यदुवंशी अक्रूर बुलाये गए, क्रूर जब चले गए।
लिए हाथ में हाथ, दिखाये दुष्ट कंस ने दांव नए॥ २७॥

भोज और यादव वंशों का भला आप, हे आर्य करें।
माननीय, दानी हैं, मेरा एक मित्रवत कार्य करें॥ २८॥

काम बड़ा है, बिना आपके आश्रय, पूर्ण न हो सकता।
हरि के पास इन्द्र जाता, जब भी होती आवश्यकता॥ २९॥

रथ लेकर प्रिय मित्र आप, तत्काल नंद के ब्रज जायें।
दो वसुदेव पुत्र रहते हैं वहां, उन्हें लेकर आयें॥ ३०॥

मुझे मृत्यु देंगे वे दोनों, हरि-आश्रित सब देव कहें।
लाओ उन्हें भले ही उनके साथ नंद या गोप रहें॥ ३१॥

वे दोनों जब आ जायेंगे, हाथी से मरवा दूंगा॥
हाथी से बच गए अगर, मल्लों से वध करवा दूंगा॥ ३२॥

वे दोनों यदि मरे, शोक में डूबेंगे यादव सारे।
वृष्णि, दशार्ह, भोज जायेंगे, फिर मेरे हाथों मारे॥ ३३॥

उग्रसेन हैं वृद्ध, राज्य संचालन की इच्छा पाले।
देवक आदि सभी को मारूंगा, जो हैं जलने वाले॥ ३४॥

मित्र, राज्य निष्कंटक होगा, पूर्ण समर्थ हाथ होंगे।
जरासंध हैं श्वसुर, द्विविद है साथी, सभी साथ होंगे॥ ३५॥

शम्बर, बाण और नरकासुर सब हैं मेरे सहयोगी।
देव-भक्त नृप मारे जायेंगे, धरती मेरी होगी॥ ३६॥

राम-कृष्ण के आने पर ही यह सब कुछ निर्भर करता।
उन्हें दिखाने लाओ, धनुष-यज्ञ, मथुरा की सुन्दरता॥ ३७॥

बोले श्रीअक्रूर - उचित हैं राजन, सभी योजनायें।
हम करते कर्तव्य, सफलता दैव प्रेरणा से पायें॥ ३८॥

भाग्यवान-हतभाग्य सभी की होतीं उच्च कामनायें।
भाग्यवान हर्षित होते हैं, किंतु अभागे दुख पायें॥
राजाज्ञा का पालन करना मेरा मुख्य कार्य होगा।
मिले सफलता या असफलता सब कुछ शिरोधार्य होगा॥ ३९॥

बोले शुक - इस तरह कंस ने काम सभी को बतलाये।
गया कंस निज गृह चिंतित, अक्रूर शांत निज गृह आये॥ ४०॥

सैंतीसवां अध्याय

केशी और व्योमासुर का उद्धार तथा नारद जी द्वारा भगवान की स्तुति

बोले श्रीशुकदेव - कंस का अनुचर केशी ब्रज आया।
मन जैसा था वेग, पर्वताकार अश्व जैसी काया॥
ग्रीवा से नभ के यानों, मेघों को तितर-बितर करता।
खुर से मही खोदता, गर्जन से लोगों में भय भरता॥ १॥

मुख कोटर जैसा, विशाल आंखें, गरदन थी बहुत बड़ी।
था विशाल इतना धरती पर जैसे काली घटा खड़ी॥
आया था वह धूर्त कृष्ण का वध करने के आशय से।
कांप रही थी धरती, कांप रहे थे ब्रजवासी भय से॥ २॥

बादल उसकी उठी पूंछ से लगकर तितर-बितर होते।
प्रभु ने देखा ब्रज के लोगों को भय से धीरज खोते॥
समझ गए प्रभु, मुझे मारने आया है यह बेचारा।
सिंह-गर्जन करके प्रभु ने उस दुष्ट दैत्य को ललकारा॥ ३॥

सम्मुख देख कृष्ण को केशी, बड़े वेग से झपट पड़ा।
जैसे नभ को पी जायेगा, मुख खोले था बहुत बड़ा॥
उसे पकड़ पाना मुश्किल था, उसकी गति से सब हारे।
आकर प्रभु के पास पैर पिछले उसने प्रभु को मारे॥ ४॥

जैसे गरुड़ पकड़ लेता है पलक झपकते नाग बड़ा।
प्रभु ने इसी तरह घोड़े के पिछले पैरों को पकड़ा॥
उसे चार सौ हाथ दूर फेंका प्रभु ने आसानी से।
एक और हमले की आशा थी प्रभु को अभिमानी से॥ ५॥

ज्यों ही हुआ सचेत दैत्य, उठ खड़ा हुआ, फिर से दौड़ा।
पर इस बार क्रोध ज्यादा था, वेग घट गया था थोड़ा॥
बांया हाथ घुसेड़ा प्रभु ने, खल आया मुंह फैलाये।
जैसे आसानी से बिल में कोई बड़ा नाग जाये॥ ६॥

केशी को यों लगा कि मुंह में, गया गर्म लोहा डाला।
टूटे दांत, समझ में आया, यहां न वश चलने वाला॥
ध्यान न देने से जैसे बढ़ती जाती है बीमारी।
खल के मुंह में, प्रभु इच्छा से होने लगी भुजा भारी॥ ७॥

मार्ग, सांस के आने-जाने के, अवरुद्ध हुए सारे।
लथ-पथ हुआ पसीने में धरती पर बहुत पैर मारे॥
आंखें पलट गईं, मल त्यागा, फिर हो गया धराशायी।
पड़ा रहा निश्चेष्ट, बड़ी मुश्किल से उसे मृत्यु आयी॥ ८॥

वह फट गया भूमि पर गिरकर रक्त स्राव ने गति पकड़ी।
धरती पर गिरने से जैसे फटती पकी हुई ककड़ी॥
प्रभु ने बांह निकाली बाहर, हर्ष-गर्व से परे रहें।
पर विस्मित सुरगण बरसायें पुष्प, हर्ष से भरे रहें॥ ९॥

हे नृप! प्रभु के श्रेष्ठ भक्त नारद मथुरा से ब्रज आये।
मिले अकेले में प्रभु से, स्तुति की प्रभु के यश गाये॥ १०॥

हे योगेश्वर, हे जगदीश्वर, अखिलेश्वर, अंतर्यामी।
जगतनियंता वासुदेव प्रभु, अप्रमेय सबके स्वामी॥ ११॥

जलती हुई लकड़ियों में ज्यों आग एक ही व्याप्त रहे।
हैं अति-गुप्त, गूढ़, ईश्वर पर, साक्ष्य सर्वदा प्राप्त रहे॥ १२॥

माया से गुण रचे आपने, आप सृष्टि के निर्माता।
पालन और प्रलयकर्ता, संकल्प-सत्य आश्रयदाता॥ १३॥

आप अवतरित हुए भूमि पर, भू का बढ़ा भार हरने।
असुरों का विनाश करने, सत्पुरुषों की रक्षा करने॥ १४॥

अश्व-रूपधारी केशी को प्रभु ने पल भर में मारा।
जिसके डर से देव, रिक्त करते थे देवलोक सारा॥ १५॥

दो दिन बाद दुष्ट हाथी, मुष्टिक, चाणूर मल्ल सारे।
प्रभु के हाथों, साथ कंस के, निश्चित जायेंगे मारे॥ १६॥

शंख, यवन, मुर, नरकासुर, सारे ही मारे जायेंगे।
जीत इन्द्र को, आप स्वर्ग से पारिजात भी लायेंगे। १७॥

करके कृपा, वीर बालाओं से कर ब्याह मान देंगे।
जायेंगे द्वारका और नृग को भी मुक्तिदान देंगे॥ १८॥

साथ स्यमन्तक मणि के पुत्री, जाम्बवान से पायेंगे।
गुरु को, उनका मरा हुआ बेटा जीवित लौटायेंगे॥ १९॥

काशीपुरी जलेगी, पौण्ड्रक की लीला समाप्त होगी।
दन्तवक्त्र-शिशुपाल आदि को प्रभु से मृत्यु प्राप्त होगी॥ २०॥

जायेंगे द्वारका, समस्याओं के समाधान होंगे।
मैं देखूंगा, कवियों द्वारा प्रभु के कीर्ति गान होंगे॥ २१॥

काल-रूप धारण कर, अर्जुन का रथ आप चलायेंगे।
मैं देूखंगा, जहां अनगिनत, पापी मारे जायेंगे॥ २२॥

हैं विशुद्ध-विज्ञान आप अपने में ही पर्याप्त रहें।
शेष नहीं अभिलाषा, हैं अमोघ, सब वांछित प्राप्त रहें॥
दूर रहें गुण की माया से, स्वयं प्रकाशित प्रभु रहते।
मैं आया हूँ शरण, आप को सभी भक्त-वत्सल कहते॥ २३॥

विश्व, आपकी इच्छा के अनुसार रचा करती माया।
आप स्वयं पर आश्रित, संसृति ने प्रभु का आश्रय पाया॥
करने मानव-लीला प्रभु अवतरित हुए बन यदुनंदन।
हे ईश्वर, हे जगतनियंता, स्वीकारें मेरा वंदन॥ २४॥

बोले श्रीशुक - मुनि ने इस प्रकार प्रभु का गुण गान किया।
दर्शन से अति-आनंदित थे, कर प्रणाम, प्रस्थान किया॥ २५॥

केशी-वध के बाद कृष्ण जाते थे वन, लेकर गायें।
ग्वालों के सँग समय बिताते, विविध खेल खेले जायें॥ २६॥

एक दिवस पर्वत पर गायें चरा रहे थे कुछ ग्वाले।
लगे खेलने कुछ प्रभु के सँग, खेल चोर-रक्षक वाले॥ २७॥

कुछ चोरों, कुछ भेड़ों का, कुछ रक्षक का अभिनय करते।
खेल रहे थे सब निर्भय हो, प्रभु सबको निर्भय करते॥ २८॥

मय का पुत्र व्योम, मायावी बन कर वहां ग्वाल आया।
बन कर चोर कई ग्वालों को छुप कर कहीं डाल आया॥ २९॥

रखा कन्दरा में ग्वालों को, मुंह पर बड़ी शिला ढांकी।
छुपा दिए थे सभी, बचे थे केवल चार-पांच बाकी॥ ३०॥

समझ गए करतूत कृष्ण, वह जैसे अंतिम बार चला।
उसे दबोचा, शेर भेड़िया पर जैसे करता हमला॥ ३१॥

व्योमासुर ने शीघ्र, रूप अपना पर्वत-सा प्रकटाया।
हाथ-पांव मारे पर खुद को प्रभु से नहीं छुड़ा पाया॥ ३२॥

देख रहे थे देव, किया जब प्रभु ने उसे धराशायी।
गला दबाया प्रभु ने, राक्षस ने पाशविक मृत्यु पायी॥ ३३॥

तोड़ गुफा का शिलाद्वार, प्रभु ग्वालों को वापस लाये।
ब्रज आये प्रभु, देवों ने, ग्वालों ने कीर्ति गान गाये॥ ३४॥

अड़तीसवां अध्याय

अक्रूर जी की ब्रज यात्रा

बोले श्रीशुक राजन - रात बितायी मथुरा में सोकर।
सुबह चले अक्रूर नंद के ब्रज, रथ पर सवार होकर॥ १॥

भक्ति प्रगाढ़ हुई, ब्रज जाने को ज्यों ही बैठे रथ में।
सोच रहे अक्रूर करूंगा पूरे आज मनोरथ मैं॥ २॥

मैंने किस शुभकर्म, दान अथवा तप का यह फल पाया।
जिसके कारण प्रभु के दर्शन करने का अवसर आया॥ ३॥

मुझसा विषयासक्त कहां संभव, प्रभु के दर्शन पाये।
जैसे कोई शूद्रपुत्र वेदों का ब्रह्म-ज्ञान गाये॥ ४॥

मुझ पापी को होंगे दर्शन, ऐसा बार-बार लगता।
ज्यों तृण क्षुद्र, समय सरिता में बहते हुए पार लगता॥ ५॥

होंगे अशुभ समाप्त, कामना मेरी आज सफल होगी।
चरण-कमल देखूंगा, जिनका करते ध्यान महायोगी॥ ६॥

करके कृपा कंस ने ब्रज भेजा है, उसका आभारी।
देखूंगा पदकमल कृष्ण के, जो हैं हरि के अवतारी॥
जिनके नख-मंडल की आभा पर, ऋषि तिमिर-सिंधु तरते।
वही विष्णु अवतरित हुए जो दुष्टों का विनाश करते॥ ७॥

ब्रह्मा-शंकर आदि देवता, जिन चरणों का ध्यान धरें।
लक्ष्मी चरण दबातीं रहतीं, ज्ञानी-जन गुण गान करें॥
केसर गोपिकाओं के वक्षस्थल का जिनमें लग जाये।
लेकर वही चरण प्रभु को, वन में विचरण करना भाये॥ ८॥

प्रभु के दर्शन होंगे, हिरण गए हैं दायीं ओर अभी।
प्रभु की जब अनुकम्पा होती, होते है शुभ शकुन तभी॥
देखूंगा मुख-कमल, मधुर-मुस्कान, कपोलों पर अलकें।
सुंदर नाक, नयन रतनारे, कमल-पंखरी सी पलकें॥ ९॥

स्वयं विष्णु ने अपनी इच्छा से मानव का रूप धरा।
नर-लीला कर रहे भार से मुक्त करेंगे वसुंधरा॥
हैं लावण्यधाम प्रभु जैसे मूर्तिमान सुन्दरता हो।
वही वास्तविक आंखों वाला जो प्रभु दर्शन करता हो॥ १०॥

प्रभु सृष्टा हैं, दृष्टा हैं, लेकिन अभिमान नहीं होता।
तेजोमय प्रभु के समक्ष भ्रम, तम, अज्ञान नहीं होता।
वैसी रचना करे योगमाया, प्रभु जो सोचें मन में।
लीला करते कभी घरों में और कभी वृन्दावन में॥ ११॥

प्रभु के जन्म, कर्म, गुण का गायन करती है जब वाणी।
सुनकर प्राणवान हो जाते है जग के सारे प्राणी॥
शुभ ही शुभ होता जीवन में, ऐसी पावनता आती।
प्रभु गुण-गान-हीन गाथा तो प्राण-रहित ही कहलाती॥ १२॥

यदुकुल में अवतरित हुए प्रभु, ब्रज में करते लीलाएं।
नाश कर रहे हैं दुष्टों का, ग्वाले उनके गुण गायें॥
मर्यादा में रहने वाले सुर भी संरक्षण पाते।
होता है कल्याण इसलिए सुर भी प्रभु का यश गाते॥ १३॥

वे गुरु हैं सम्पूर्ण जगत के, तीनों लोकों के स्वामी।
आंखें होतीं तृप्त, देखकर मन हो जाता अनुगामी॥
लक्ष्मी हैं लावण्यमयी पर प्रभु-दर्शन को ललचायें।
मुझको दर्शन होंगे निश्चित, सभी शुभ शकुन बतलायें॥ १४॥

रथ से कूदूंगा तुरंत, जैसे ही प्रभु पर दृष्टि पड़े।
चरणों में सिर रख दूंगा, प्रत्यक्ष मिले प्रभु भाग्य बड़े॥
नमन करूंगा ग्वालों को जो सखा कृष्ण के कहलाते।
योगी धरते ध्यान, किंतु दर्शन साक्षात नहीं पाते॥ १५॥

मेरा सिर जब रखा हुआ, भगवन् के चरणों पर होगा।
तब निश्चित ही मेरे सिर पर प्रभु का कोमल कर होगा॥
काल-सर्प से घबराकर जो लोग शरण प्रभु की आये।
प्रभु के इसी कमल से कोमल कर से अभय-दान पाये॥ १६॥

दैत्य-राज बलि और इन्द्र को, प्रभु के यह कर-कमल छुए।
अभय-दान दोनों ने पापा, सभी मनोरथ सिद्ध हुए॥
महारास के समय श्रांत होतीं थीं, जब ब्रज-बालाएं।
इन्हीं कर-कमल की सुगंध पा, ऊर्जावान रहीं आएं॥ १७॥

मुझे कंस ने भेजा है, वे शत्रु न समझें मुझे कहीं।
सर्वसाक्षी हैं वे इससे, ऐसी संभावना नहीं॥
भीतर-बाहर सभी देखते, उनकी दृष्टि दूरगामी।
प्रभु सर्वज्ञ और समदर्शी हैं अच्युत-अंतर्यामी॥ १८॥

मैं करबद्ध करूंगा प्रभु की स्तुति तब तक खड़े-खड़े।
दिखे नहीं मुस्कान मधुर, जब तक न दयामय दृष्टि पड़े॥
उनकी दृष्टि पड़ेगी तो सब मेरे अशुभ नष्ट होंगे
परमानंद प्राप्त हो जायेगा, सब दूर कष्ट होंगे॥ १९॥

हैं मेरे आराध्य, सुहृद् को जब चरणों में पायेंगे।
उठा मुझे दोनों हाथों से अपने गले लगायेंगे॥
जैसे ही आलिंगन से बांधेंगे मुझको यदुनंदन।
हो जायेगी मेरी देह पवित्र, कटेंगे भव-बंधन॥ २०॥

बावजूद इसके मेरा सिर झुका रहे, कर बंधे रहें।
जब तक कृष्ण न अपने श्री-मुख से ''काका अक्रूर'' कहें॥
मैं कृतार्थ हो जाऊंगा, प्रभु का यश जायेगा गाया।
है धिक्कार योग्य वह जीवन, जिसे न प्रभु ने अपनाया॥ २१॥

प्रिय-अप्रिय, रिपु-मित्र न होते, पाते प्रभु की कृपा सभी।
राग-द्वेष से परे, उपेक्षा नहीं किसी की करें कभी॥
जैसे कल्पवृक्ष से वह फल मिलता, जो मांगा जाता।
भजता भक्त जिस तरह प्रभु को, प्रभु से वैसा फल पाता॥ २२॥

जैसे ही बलराम मुझे, कर-बद्ध सामने पायेंगे।
हँसते हुए मुझे हलधर भी अपने हृदय लगायेंगे॥
मुझे मान देंगे, घर में ले जायेंगे, मन कहता है।
पूछेंगे, स्वजनों से क्या व्यवहार कंस का रहता है॥ २३॥

बोले श्रीशुक - उनके मन में केवल कृष्ण समाये थे।
शाम हो रही थी ब्रज में, अक्रूर जिस समय आये थे॥ २४॥

चरण-धूल जिनकी, किरीट पर लोकपाल धरते आये।
श्रीअक्रूर चाहते थे, पदचिन्ह धूल में दिख जाये॥
अंकुश-कमल आदि से प्रभु-पद की पहचान हुआ करती।
चरण-चिन्ह को पाकर आनंदित-शोभित होती धरती॥ २५॥

चरण-चिन्ह के दर्शन से ही रोमांचित अक्रूर हुए।
बहे अश्रु आंखों से, विह्वल, आनंदित भरपूर हुए।
रोक न पाये खुद को, रथ से कूदे, सब थे अचरज में।
लगे लोटने आनंदित अक्रूर, कृष्ण की पद-रज में॥ २६॥

ले संदेश चले जब से अक्रूर दशा थी जो मन की।
यही भाव रखने में सार्थकता होती है जीवन की॥
शोक, दम्भ, भय त्याग, कृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करें।
मग्न रहे प्रभु की लीलाओं में, प्रभु का गुण गान करें॥ २७॥

जब पहुंचे अक्रूर गोष्ठ में बैठे थे दोनों भाई।
नीले-पीले वस्त्र, नयन में शरद-कमल की अरुणाई॥ २८॥

श्यामल-गौर किशोर, हृदय को मोहित करती सुन्दरता।
थे आजानुबाहु, चलते जैसे गज-तनय चला करता॥ २९॥

चलने पर ध्वज, कमल, वज्र अंकुश से चिन्हित हो धरती।
मंद-मंद मुस्कान और चितवन से उदारता झरती॥ ३०॥

प्रभु करते उदार क्रीड़ाएं, सुन्दर होती लीलाएं।
मणिमाला के साथ गले में शोभित थी वनमालाएं॥
अभी-अभी था स्नान किया, प्रभु ने आकर वृन्दावन से।
निर्मल वस्त्र किए थे धारण, लेप किया था चंदन से॥ ३१॥

परम-पुरुष जगदीश्वर, जग की रक्षा करने को जन्में।
बल भी हैं अंशावतार, जग का हित है उनके मन में॥ ३२॥

अंग-कान्ति की शोभा फैल रही थी कोने-कोने में।
मरकत और रजत पर्वत चमकें ज्यों मढ़कर सोने में॥ ३३॥

उन्हें देख अक्रूर, प्रेम विह्वल होकर रथ से कूदे।
राम-कृष्ण के आगे, साष्टांग हो गए नयन मूंदे॥ ३४॥

राजन! प्रभु को देख अश्रु सूखे इतना आनंद हुआ।
बोल न पाये नाम, गला रुंध गया बोलना बंद हुआ॥ ३५॥

शरणागत-वत्सल प्रभु जानें भाव, न तनिक विलंब किया।
उठा लिया चक्रांकित कर से और हृदय से लगा लिया॥ ३६॥

गले लगे बल के, जैसा सोचे, अक्रूर वही पाये।
हाथ पकड़ कर एक-एक दोनों घर के अंदर लाये॥ ३७॥

ऊंचे आसन पर बैठाया, उनका कुशल-क्षेम जाना।
पांव पखारे, प्रस्तुत कीं मधुपर्क सहित चीजें नाना॥ ३८॥

एक गाय दी भेंट, दबाये पांव थकान मिटाने को।
श्रद्धा से स्वादिष्ट वस्तुएं भी प्रस्तुत कीं खाने को॥ ३९॥

जब भोजन कर चुके, किए प्रस्तुत मुखवास और माला।
कृष्ण और बल का आदर था, आनंदित करने वाला॥ ४०॥

इसके बाद नंद ने पूछा हालचाल सब कैसा है।
मथुरा में जीवन भेड़ों सा, कंस कसाई जैसा है॥ ४१॥

जिस पापी ने रोतीं हुई बहिन के बच्चों को मारा।
कैसा कुशल-क्षेम मथुरा में, पीड़ित है समाज सारा॥ ४२॥

नंदराय के मधुर वचन सुन आनंदित अक्रूर हुए।
हुई थकावट दूर और मन के भ्रम-संशय दूर हुए॥ ४३॥

उन्तालीसवां अध्याय

श्रीकृष्ण-बलराम का मथुरा आगमन

बोले शुक - अक्रूर सोचते थे जैसा, वैसा पाया।
बल ने और कृष्ण ने सादर उन्हें पलंग पर बैठाया॥ १॥

राजन! लक्ष्मीपति प्रसन्न तो दुर्लभ क्या फिर हो सकता।
नहीं वस्तुओं की होती फिर, भक्तों को आवश्यकता॥ २॥

जब बैठे अक्रूर, कृष्ण के साथ, शाम का कर भोजन।
प्रभु ने पूछा, कंस कर रहा मथुरा में कुछ आयोजन॥ ३॥

कहा कृष्ण ने - सौम्यहृदय, आपके सदा मंगल होंगे।
मथुरा में सब स्वजन हमारे स्वस्थ और सकुशल होंगे॥ ४॥

नाम मात्र का मामा, कुल की व्याधि, कंस जब शासक है।
कुशल-क्षेम क्या होगा, यह खल कुशल-क्षेम का नाशक है॥ ५॥

माता-पिता झेलते मेरे कारण कठिन यातनायें।
निरपराध शिशु मारे जायें, और जेल में दुख पायें॥ ६॥

थी मेरी इच्छा मथुरा से कोई स्वजन यहां आयें।
किस निमित्त से हुआ आगमन आप कृपा कर बतलायें॥ ७॥

बोले शुक - इस तरह प्रश्न जब किया गया प्रभु के द्वारा।
क्रूर कंस की योजनाओं का वर्णन किया गया सारा॥ ८॥

बतलाये अक्रूर किस तरह बन कर दूत यहां आये।
बतलाया उद्देश्य और संदेश कंस का जो लाये॥
यह भी बता दिया, नारद ने खल को सब बतलाया है।
बाद जन्म के कैसे तुम्हें नंद के घर पहुंचाया है॥ ९॥

दुष्ट-दमन करने वाले प्रभु सुनकर विवरण हर्षाये।
कहा नंद से, मथुरा चलकर धनुष-यज्ञ देखा जाये॥ १०॥

नंद दिये निर्देश, सभी तैयार किए जायें छकड़े।
और भेंट के लिए भरे जाये, गोरस के बड़े घड़े॥ ११॥

गोरस देंगे भेंट कंस को, कल सब मथुरा जायेंगे।
आयोजन है वहां बड़ा, उसका आनंद उठायेंगे॥
मथुरा में एकत्रित होंगे, जनपद के रहने वाले।
धनुष-यज्ञ देखने चलेंगे, सारे गोप और ग्वाले॥ १२॥

राम-कृष्ण को मथुरा ले जाने अक्रूर यहां आये।
सुना गोपियों ने तो व्यथित हुईं, दुख के बादल छाये॥ १३॥

सांसें गर्म हुईं, चेतनता गई, मुख-कमल मुरझाया।
कंगन-जूड़ा खुला, ओढ़नी सरकी, पता न चल पाया॥ १४॥

चित्त-वृत्तियों से निवृत्त हो, कुछ ध्यानस्थ लगीं होने।
प्रभु में ध्यान लगाया, जग का, खुद का ध्यान लगीं खोने॥ १५॥

कुछ को दिखते प्रेम भरे प्रभु, कुछ को दिखते मुस्काते।
कुछ लगतीं नाचने, याद आते प्रभु मधुर गीत गाते॥ १६॥

चाल मनोहर, तिरछी चितवन, मधु-मुस्कान चेष्टाएं।
शोक मिटाती हंसी-ठिठोली, करती याद गोपिकाएं॥ १७॥

विरह भयातुर, कातर गोपिकाओं के अश्रु लगे बहने।
एकत्रित हो एक दूसरे से, इस तरह लगीं कहने॥ १८॥

कहने लगीं गोपियां ब्रह्मा द्वारा विश्व रचा जाता।
प्रेम और सौहार्द प्राणियों में विकसित करते नाता॥
तृप्त नहीं हो पाते, पूर्ण न हो पाती अभिलाषायें।
कर खिलवाड़ बड़ी निर्दयता से फिर पृथक किए जायें॥ १९॥

पहले सुंदर मुख, कपोल तक अलकों वाला दिखलाया।
शुक जैसी नासिका, वर्ण मरकत-मणि सा सबको भाया॥
मन्द-मन्द मुस्कान अधर पर, शोक नष्ट करने वाली।
यह वियोग की बुरी योजना विधि ने व्यर्थ बना डाली॥ २०॥

क्रूर नहीं अक्रूर, विधाता बन अक्रूर यहां आये।
हमें दिए थे नेत्र विधाता ने, हमसे वापस पाये॥
प्रभु के अंग-अंग में दिखती थी, ब्रह्मा की सृष्टि हमें।
है अन्याय पूर्ण यह निर्णय, वापस कर दो दृष्टि हमें॥ २१॥

ऐसा लगता क्षणिक प्रेम करते हैं सखी नंद-लाला।
कल से नया प्रेम होगा, भूलेंगे प्रेम आज वाला॥
हमने उनके लिए स्वजन, घर, द्वार, पुत्र, पति को छोड़ा।
और उन्होंने हमको छोड़ा, आसानी से मुँह मोड़ा॥ २२॥

नंदलाल के दर्शन पायेंगीं मथुरा की ललनायें।
मंगल-मय प्रभात होगा, कल होंगीं पूर्ण कामनायें॥
वहां बहेगी प्रभु के मादक सौंदर्य की मधु-धारा।
करके जिसका पान, धन्य हो जायेगा मथुरा सारा॥ २३॥

मधु से मधुर वचन बोलेंगीं जब मथुरा की बालाएं।
चित्त चुरायेगीं यदुनंदन का ज्यों ही मौका पायें॥
देख लजीली भाव-भंगिमा, मथुरा में रम जायेंगे।
हम ग्वालिनें गंवार, हमें मिलने फिर कभी न आयेंगे॥ २४॥

वृष्णि, भोज, अंधक, दशार्ह कुल तो परमानंदित होंगे।
उत्सव होगा जहां देवकी-नंदन अभिनंदित होंगे॥
रमारमण-गुणसागर प्रभु जब ब्रज से मथुरा जायेंगे।
लोग राह में दर्शन पायेंगे, उनके गुण गायेंगे॥ २५॥

है अक्रूर नाम पर देखो करनी कितनी क्रूर करे।
नंद-दुलारे, प्रियतम-प्यारे को आंखों से दूर करे॥
निष्ठुर, हृदय-हीन है, देख रहा है हम सबको रोता।
नहीं बंधाता धीरज अच्छा होता, नाम क्रूर होता॥ २६॥

बैठ गए रथ पर यदुनंदन, कठिन-कठोर हृदय वाले।
सजा रहे हैं छकड़े होकर मग्न, मूर्ख हैं ये ग्वाले॥
वृद्धजनों ने किया उपेक्षित, कुछ भी कहा न जाता है।
हम क्या करें, हमारा तो लगता प्रतिकूल विधाता है॥ २७॥

चलो-चलो हम सब मिलकर, रोकेंगीं अपने प्रियतम को।
वृद्ध-बन्धुजन क्या कर लेंगे, रोक न पायेंगे हमको॥
आधे क्षण भी जिन्हें, नहीं आखों से ओझल कर पायें।
यह कैसा दुर्भाग्य वही, हम सबको छोड़ चले जायें॥ २८॥

उनकी चितवन मधुर, मधुर मुस्कान और मीठी बातें।
क्षण-सी लगती रात्रि रास की, थी जिसमें कितनी रातें॥
कैसे संभव होगा, उनके बिना यहां जीवित रहना।
उनके बिना नहीं है संभव, उनकी विरह व्यथा सहना॥ २९॥

संध्या को ब्रज आते, लेकर साथ गोप-ग्वाले-गायें।
अलकें घुंघराली, वन-मालाएं, गो-रज से ढंक जायें॥
वह तिरछी चितवन, मुस्कान मधुर, वंशी की तान नहीं।
यह सब नहीं, इसलिए ब्रज में अब जीना आसान नहीं॥ ३०॥

बोले श्रीशुकदेव - कर रहीं थी विलाप ब्रज-बालाएं।
मन ही मन लेकिन वे प्रभु को आलिंगन में ही पाएं॥
उन्हें लगा जब प्रभु को वे अंततः जा रहीं हैं खोने।
कहकर दामोदर, माधव, गोविंद लगीं खुलकर रोने॥ ३१॥

रोती रही गोपियां, पौ फटते ही सब तैयार हुए।
कर संध्या अक्रूर हांकने रथ पर शीघ्र सवार हुए॥ ३२॥

नंद आदि सब गोप चले पीछे-पीछे लेकर छकड़े।
रखे हुए थे छकड़ों में गोरस के मटके बड़े-बड़े॥ ३३।

रंगी हुई अनुराग रंग में, पहुंचीं वहां गोपिकाएं।
चाह रहीं थीं कुछ भी तो संदेश उन्हें प्रभु दे जाएं॥ ३४॥

ब्रज-बालाओं को प्रभु ने जब जाने से शोकित पाया।
'मैं आऊंगा' प्रेम भरा संदेश दूत से भिजवाया॥ ३५॥

मनमोहन के साथ गया मन, गोपिकाओं का उसी घड़ी।
ध्वजा-धूल जब तक दिख पाई, चित्रलिखित थी देह खड़ी॥ ३६॥

कृष्ण नहीं लौटे निराश होकर, घर गईं गोपिकाएं।
विरह-व्यथा कम करने, प्रभु की लीला करें, गीत गाएं॥ ३७॥

आनंदित अक्रूर हवा की गति से रथ को दौड़ाये।
और शीघ्र ही राम-कृष्ण को लेकर यमुना-तट आये॥ ३८॥

यमुना का जल पिया सुधा-सा, मरकत की आभा वाला।
बल के साथ, वृक्ष के नीचे, रथ में बैठे नँद लाला॥ ३९॥

रथ में दोनों को बैठाकर, दोनों से आज्ञा पाकर।
करने स्नान घुसे जल में अक्रूर, ब्रह्मनद में जाकर॥ ४०॥

करके स्नान, जाप करने अक्रूर गए गहरे जल में।
उन्हें दिखे बलराम-कृष्ण विश्राम हेतु ठहरे, जल में॥ ४१॥

भ्रमित हुए अक्रूर, दिखे जल में बैठे दोनों भाई।
रथ से आये यहां, सोच कर दृष्टि भूमि पर दौड़ाई॥ ४२॥

रथ पर बैठे दिखे पूर्ववत, सोचा, भ्रम होगा जल में।
भ्रम को करने दूर लगाई डुबकी अगले ही पल में॥ ४३॥

अबकी बार उन्हें जल में बैठे श्रीशेष-अनंत दिखे।
करते स्तुति शीश झुका, गंधर्व, असुर, सुर, संत दिखे॥ ४४॥

दिखे हजारों शीश-शेष के, मणियां चमकें हर फन पर।
नीलाम्बर शोभित था उनके कमल-नाल जैसे तन पर॥
होता था प्रतीत जैसे हिमगिरि हजार शिखरों वाले।
स्वयं श्रेष्ठ कैलाश खड़े हों, यमुना में डेरा डाले॥४५॥

दिखे उन्हें घनश्याम, श्यामघन जैसे, पीताम्बर धारे।
शांत चतुर्भुज रूप, नेत्र थे रक्त-कमल से रतनारे॥४६॥

सुन्दर बदन, चारू चितवन, मुस्काते अधरों पर लाली।
सुन्दर भृकुटि, कपोल, कान अति सुन्दर, नाक नोंक वाली॥४७॥

जंघा गज की सूंड, सिमटती कटि में सुन्दरता सारी।
पुष्ट नितम्ब, जानु अति सुन्दर, पिंडलियों की छबि-प्यारी॥४९॥

एड़ी की गांठे उन्नत, नख में जगमग करती लाली।
है अंगुष्ठ-उंगलियों में कोमलता नए कमल वाली॥५०॥

माथे मणि का मुकुट, करधनी, कुंडल, बाजूबंद बड़े।
कंधे पर यज्ञोपवीत, मणिमाला, नूपुर और कड़े॥५१॥

गदा, चक्र, शुभ शंख, कमल कर में, ग्रीवा में वनमाला।
कौस्तुभ मणि, श्रीवत्स चिन्ह, मन आनंदित करने वाला॥५२॥

नंद-सुनंद आदि पार्षद-गण, सनकादिक ऋषि-गण देखे।
ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र दिखे, सारे उत्तम ब्राह्मण देखे॥५३॥

आठों वसु, प्रहलाद और नारदजी जैसे भक्त दिखे।
सब कर रहे स्तुति प्रभु की, सब प्रभु में अनुरक्त दिखे॥५४॥

श्री, सरस्वती, शक्ति, कांति, संवित, ह्लादिनी, इला, माया।
कीर्ति, ऊर्जा, पुष्टि, तुष्टि को, प्रभु की सेवा में पाया॥५५॥

आनंदित अक्रूर हुए, जब साक्षात दर्शन पाये।
प्रभु की पावन भक्ति मिली, आंखों में अश्रु उमड़ आये॥५६॥

रोमांचित अक्रूर, जुटाने में साहस थी कठिनाई।
हो करबद्ध, प्रणाम किया, फिर गद्‌गद् हो स्तुति गाई॥५७॥

चालीसवां अध्याय

अक्रूर जी द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति

बोले श्रीअक्रूर - आप प्रभु सभी कारणों के कारण।
अविनाशी, पुरुषोत्तम, नारायण, अत्यंत-असाधारण॥
नाभिकमल पर बैठ विधाता द्वारा विश्व रचा जाता।
नमस्कार-आपको, आप है ब्रह्मा के आश्रयदाता॥१॥

अहंकार, मन, बुद्धि, गगन, जल, वायु, अग्नि एवं धरती।
प्रकृति, पुरुष, इन्द्रियां, इन्हीं पर निर्भर सृष्टि रहा करती॥
सभी इन्द्रियों के विषयों के प्रभु हैं आप अधिष्ठाता।
इन सारे तत्वों को भी प्रभु का ही अंग कहा जाता॥२॥

जड़ है प्रकृति और जड़ होतीं सभी प्राकृतिक रचनाएं।
आप परम-आत्मा, आपको जड़ किस तरह जान पाएं॥
आत्मयुक्त हैं ब्रह्मा, किंतु रजोगण उनमें वास करे।
वे न जानते, रूप आपका, सभी गुणों से रहे परे॥३॥

अंतर्यामी बन कर रहते, आप योगियों के मन में।
बन कर इष्ट-देवता भरते हैं प्रकाश हर जीवन में॥
परमेश्वर, पुरुषोत्तम, परमात्मा आपही कहलाते।
भिन्न नाम से भिन्न प्राणियों द्वारा प्रभु पूजे जाते॥४॥

ले आधार त्रयी विद्या का, द्विज आपका यजन करते।
करते यज्ञ भिन्न नामों से पर आपका भजन करते॥५॥

कर्मों से सन्यस्त, ज्ञान का यज्ञ किया करते ज्ञानी।
उन्हें आपकी इस उपासना में होती है आसानी॥६॥

संस्कार वाले वैष्णव जन, अन्य विधाएं अपनाते।
पर उनके द्वारा भी प्रभु-नारायण ही पूजे जाते॥७॥

कई योगियों द्वारा शिवशंकर की पूजा की जाती।
वह पूजा भी शिव स्वरूप में प्रभु की पूजा कहलाती॥८॥

भिन्न मान कर प्रभु से, अन्य देव-गण भी पूजे जाते।
आप वहां भी पूजे जाते, सभी आपसे फल पाते॥९॥

सागर में मिलती जैसे पर्वत से निकली सरिताएं।
सब उपासना मार्ग घूम कर प्रभु के चरणों में आएं॥१०॥

सत-रज-तम गुण तीन प्रकृति के, जग इनसे अभिभूत रहे।
ब्रह्मा से जड़ तक व्यापक हैं, ज्यों वस्त्रों में सूत रहे॥११॥

हैं अज्ञान रूप तीनों गुण, इनकी इतनी व्यापकता।
सुर, नर, पशु, पक्षी कोई भी, इनसे दूर न रह सकता॥
आप रहें निर्लिप्त गुणों से, सभी वृत्तियों के स्वामी।
स्वीकारें मेरा प्रणाम हे सर्वरूप अंतर्यामी॥१२॥

मुख है अग्नि, पैर पृथ्वी हैं, आंखें सूर्य-चन्द्रमा हैं।
नभ है नाभि, स्वर्ग सिर, कान दिशायें, सुरगण हैं बांहें॥
सीमित सदा कुक्षि तक प्रभु की, सागर की सीमा रहती।
है प्रकल्पना, प्रभु की सांसों से ही प्राण-वायु बहती॥१३॥

सिर के केश मेघ हैं, प्रभु के रोम वृक्ष औषधियां हैं।
पृथ्वी के पर्वत समूह, प्रभु के नख सुदृढ़ अस्थियां हैं॥
नेत्र खोलने और बंद करने से ही दिन-रात बनें।
है जननांग प्रजापति और शुक्रकण से बरसात बनें॥१४॥

गूलर में ज्यों कीट रहें, जल में ज्यों अमित जीव बहते।
प्रभु के विश्वरूप में ऐसे ही अनगिनत लोक रहते॥१५॥

लेते हैं अवतार आप प्रभु, करते हैं नर-लीलाएं।
शोक-मोह होता समाप्त, जब लोग आपका यश गायें॥१६॥

नमस्कार प्रभु महाप्रलय में मत्स्य रूप धरने वाले।
धर हयग्रीव रूप मधु-कैटभ का विनाश करने वाले॥१७॥

नमन आपने कच्छप बन कर, किया मंदराचल धारण।
रूप धरा शूकर का, धरती डूब गई थी, इस कारण॥१८॥

नरसिंह प्रभु को नमन, साधु-पुरुषों का सब भय दूर किया।
वामन प्रभु को नमन, तीन पग में त्रिलोक को नाप लिया॥१९॥

परशुराम को नमन, जिन्होंने धर्महीन क्षत्रिय मारे।
राम-रूप को नमन, वध किए रावण सहित दैत्य सारे॥२०॥

संकर्षण, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न सहित प्रभु यदुनंदन।
संतों की रक्षा को जन्में, करता चारों का वंदन॥२१॥

बन कर बुद्ध अहिंसा का पथ, असुरों को दिखलायेंगे।
क्षत्रिय म्लेच्छ बनेंगे, तब प्रभु कल्कि रूप में आयेंगे॥२२॥

''यह मैं हूँ'' ''यह मेरा है'' इस भ्रम में रखती है माया।
हर प्राणी को इसी मोह ने कर्म-मार्ग में भटकाया॥२३॥

देह, गेह, धन, स्वजन, पुत्र, पत्नी से मुझको मोह बड़ा।
हे प्रभु! मुझे स्वप्न-वत झूठे बंधन ने कसकर जकड़ा॥ २४॥

मेरी उल्टी बुद्धि अनश्वर माना मैंने नश्वर को।
बिलकुल भूल गया मैं, अपने सबसे प्रिय परमेश्वर को॥
दुख को सुख समझा, अनात्म को मैंने आत्मवान माना।
फंसा रहा दुख-सुख के द्वंद्वों में, यथार्थ से अनजाना॥ २५॥

जैसे जल पर देख घास को मूर्ख जलाशय को त्यागे।
बनी सूर्य की किरणों से, मृगतृष्णा के पीछे भागे॥
वैसे ही मैं भी प्रभु से हो विमुख फिरूं मारा-मारा।
विषयों में सुख खोज-खोज कर बीत गया जीवन सारा॥ २६॥

नित्य कर्म करता हूँ, पर कम होती नहीं कामनाएं।
नाशवान वस्तुएं हमेशा ही मेरे मन को भाएं॥
दुर्दमनीय इन्द्रियां हैं, जो मन को मथ कर भटकातीं।
इतनी प्रबल इन्द्रियां हैं जो नहीं नियंत्रण में आतीं॥ २७॥

चरण-कमल की मिली छत्रछाया, मैं रहा भाग्यशाली।
दुष्टों को दुर्लभ है जो, मैंने वह कृष्ण-कृपा पा ली।
जैसे-जैसे जीव जगत से पाने लगता छुटकारा।
करने में प्रभु की उपासना, लगता तभी चित्त सारा॥ २८॥

हे विज्ञान-स्वरूप आप हैं, सभी वृत्तियों के कारण।
नमस्कार पुरुषोत्तम परम-ब्रह्म, है शक्ति असाधारण॥ २९॥

वासुदेव का वंदन, जिनका आश्रय जीवों ने पाया।
वंदन हे हृषिकेश, करें रक्षा, मैं आज शरण आया॥ ३०॥

इकतालीसवां अध्याय

श्रीकृष्ण का मथुरा में प्रवेश

बोले शुक - अक्रूर कर रहे थे प्रभु की स्तुति जल में।
नट की तरह हटाया प्रभु ने सारा दृश्य एक पल में॥ १॥

दृश्य हटा तो जल से बाहर श्रीअक्रूर शीघ्र आये।
करके कार्य समाप्त, पास रथ के आये, थे चकराये॥ २॥

प्रभु ने पूछा आप दिख रहे हैं चाचाजी, घबराये।
लगता है जल-थल-नभ में कुछ अद्‌भुत वस्तु देख आये॥ ३॥

बोले श्रीअक्रूर - देख ली है प्रभु की अद्‌भुत झांकी।
जल-थल-नभ में विश्वरूप से बढ़कर कौन वस्तु बांकी॥ ४॥

जल-थल-नभ के सारे विस्मय, प्रभु में स्वयं समा जाते।
उन्हें न विस्मय विस्मित करते, जो प्रभु के दर्शन पाते॥ ५॥

ऐसा कहते हुए गान्दिनीनंदन रथ को दौड़ाए।
राम-कृष्ण को ले दिन ढलने के पहले मथुरा आये॥ ६॥

राम-कृष्ण से मिलने पथ में कई ग्रामवासी आते।
रूप देख वसुदेव-सुतों का, लोग न दृष्टि हटा पाते॥ ७॥

नंद आदि सब गोप रुक गए थे मथुरा के उपवन में।
देख रहे थे राह कृष्ण की, चिंतित थे मन ही मन में॥ ८॥

रथ से उतर गए जगदीश्वर, जैसे ही उपवन आया।
जोड़े थे अक्रूर हाथ, ले हाथ-हाथ में समझाया॥ ९॥

आप अकेले ही चाचाजी, रथ लेकर घर को जायें।
हम पैदल जायेंगे, जिससे पुर को ठीक देख पायें॥ १०॥

बोले श्रीअक्रूर - नाथ को छोड़ किस तरह घर जाऊं।
छोड़ा अगर भक्त वत्सल को, जाने कब दर्शन पाऊं॥ ११॥

नंदराय, बलराम, ग्वाल सब, मेरे घर चलिए कृपया।
परम हितैषी, परम सुहृद, स्वामी मुझ पर कीजिए दया॥ १२॥

मेरा घर पवित्र होगा, जब पायेगा पद-धूल तभी।
चरणामृत पा तृप्त रहेंगे, पितर, देवता, अग्नि सभी॥ १३॥

प्रभु के चरण-पखार, भक्त बलि ने जैसी सद्गति पायी।
उनके ऐश्वर्य-यश की तो गाथा संतों ने गायी॥ १४॥

करे पवित्र तीन लोकों को, चरणोदक गंगा बनकर।
तरे सगर के पुत्र, शीश पर धारण करते शिवशंकर॥ १५॥

हे देवाधिदेव, जगदीश्वर, हे नारायण, यदुनंदन।
श्रवण-कीर्तन मंगल-मय है, स्वीकारें मेरा वंदन॥ १६॥

प्रभु बोले - दाऊ को लेकर गेह आपके आऊंगा।
मार कंस यदु-द्रोही को, स्वजनों को सुख पहुंचाऊंगा॥ १७॥

बोले शुक - अक्रूर वहां से होकर तनिक उदास गए।
समाचार सब दिया कंस को, फिर अपने आवास गए॥ १८॥

अगले दिन, तीसरे प्रहर प्रभु, बलदाऊ एवं ग्वाले।
चले देखने को मथुरा, सब बांहों में बाहें डाले॥ १९॥

प्रभु ने परकोटे में देखे भव्य द्वार गोपुर वाले।
सजे स्फटिक मणियों से थे, जिन्हें देख विस्मित ग्वाले॥
थी चहार दीवारी तांबे की, स्वर्णिम किवाड़ भारी।
चारों और खुदी थी खाई, प्रतिरक्षा की तैयारी॥
जगह-जगह पर फूलों वाले, उपवन थे शोभा पाते।
बड़े-बड़े उद्यान कई थे, जिनमें पथिक ठहर जाते॥ २०॥

साधारण-जन के निवास हों या धनिकों के भव्य महल।
या श्रमिकों के विश्रामालय, सभी ओर थी चहल-पहल॥
छज्जों और छतों में जड़े हुए हीरे, मूंगे, मोती।
नीलम-पन्ना लगने से द्वारों की छबि द्विगुणित होती॥ २१॥

सजा हुआ वैदूर्य-स्फटिक से पुर का कोना-कोना।
सड़कें चांदी जैसी, चौराहों पर मढ़ा हुआ सोना॥
किया गया छिड़काव, सड़क, बाजार सभी निखरे-निखरे।
पक्षी कलरव करते, चांवल-फूल सब तरफ थे बिखरे॥ २२॥

रखे हुऐ थे दरवाजों पर जल से भरे हुए कलसे।
अर्चित थे, चंदन फूलों से, दही, कोंपलों से, फल से॥
केले और सुपारी के थे वृक्ष सजे द्वारे-द्वारे।
बंधे हुए थे रेशम की झालर वाले वंदनवारे॥ २३॥

राजन! वासुदेव मथुरा में, जिस पथ से पैदल जायें।
छज्जों पर चढ़कर, उत्सुकता से देखें सब ललनायें॥ २४॥

ललनाओं ने जल्दी के कारण अपने कपड़े-गहने।
किसी-किसी ने उल्टे पहने, और रहीं कुछ अध-पहने॥
नुपुर एक, एक कुंडल था, एक हाथ में कंगन था।
प्रभु के दर्शन की जल्दी थी, एक आंख में अंजन था। २५॥

था इतना उत्साह, उठ गईं, छोड़ी भोजन की थाली।
बिना स्नान के दौड़ी ललना, उबटन लगवाने वाली॥
दूध पिलाना छोड़ पुत्र को, मां दर्शन करने भागी।
शयन कर रही थी जो, वैसे ही भागी जैसे जागी॥ २६॥

कृष्ण चल रहे थे ऐसे, जैसे गजराज चला करता।
लक्ष्मी को भी आनंदित करने वाली थी सुन्दरता॥
कमल-नयन की तिरछी चितवन, थी मुस्कान बड़ी प्यारी।
अपना हृदय समर्पित कर बैठे मथुरा के नर-नारी॥ २७॥

बहुत दिनों से सुनतीं थीं, भगवान कृष्ण की लीलाएं।
मथुरा की ललनाएं व्याकुल थीं, कब दर्शन मिल पाएं॥
आखों से देखी प्रभु की मुस्कान मधुर, मोहक चितवन।
विरह-अग्नि की शांत, किया प्रभु का आलिंगन मन ही मन॥ २८॥

ललनाओं के खिले मुखकमल, प्रभु-दर्शन कर हर्षायीं।
भवनों पर चढ़ राम-कृष्ण पर पुष्प सुगंधित बरसायीं॥ २९॥

अर्पण कर अक्षत-चंदन-जल-दही-सुगंधित मालाएं।
ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य कृष्ण की पूजा करके सुख पाएं॥ ३०॥

प्रभु को देख कहें पुरवासी, धन्य-धन्य ब्रज-बनिताएं।
जाने क्या तप किया, नित्य मंगलमय के दर्शन पाएं॥ ३१॥

प्रभु को आता दिखा एक धोबी, सुन्दर कपड़े टांगे।
धुले हुए कुछ सुन्दर कपड़े प्रभु ने धोबी से मांगे॥ ३२॥

प्रभु बोले - तुम हमें वस्त्र दो, हम हैं इसके अधिकारी।
उचित वस्त्र दोगे तो शुभ होगा, हम होंगे आभारी॥ ३३॥

प्रभु तो हैं परिपूर्ण, किंतु की वस्त्र मांगने की लीला।
राजा का सेवक गुस्से से होने लगा लाल-पीला॥ ३४॥

वह बोला - क्या ऐसे वस्त्र पहनते हो गिरि में, वन में।
राजा की सम्पत्ति लूटने की इच्छा है क्या मन में॥ ३५॥

जीना है तो भागो, यदि आ गए राज्य के अधिकारी।
बांधेंगे, मारेंगे और छीन लेंगे चीजें सारी॥ ३६॥

कुपित हो गए कृष्ण, सुने जब राज-रजक के वचन कड़े।
एक तमाचा मारा प्रभु ने, सिर-धड़ दोनों अलग पड़े॥ ३७॥

देख मुख्य धोबी की हालत, अधीनस्थ धोबी भागे।
प्रभु ने लिए वस्त्र, जो डाल गए थे वे उनके आगे॥ ३८॥

पहन लिए बल और कृष्ण ने मनचाहे सुन्दर कपड़े।
कुछ ग्वालों को दिए पहनने, शेष भूमि पर रहे पड़े॥ ३९॥

थोड़ा आगे, मिला एक प्रभु-भक्त वस्त्र सीने वाला।
उसने सुंदर वस्त्रों को प्रभु के अनुरूप बना डाला॥ ४०॥

सुन्दर वस्त्र पहिन, दोनों भाई ऐसी शोभा पाये।
श्वेत-श्याम दो गज-शावक सजधज कर उत्सव में आये॥ ४१॥

पायीं दर्जी ने प्रभु से, श्री-शक्ति सहित निधियां सारी।
प्रभु की स्मृति का वर पाकर, हुआ मोक्ष का अधिकारी॥ ४२॥

गए सुदामा माली के घर, राम-कृष्ण दोनों भाई।
उसने किया प्रणाम दण्डवत, मन में प्रसन्नता छाई॥ ४३॥

पांव पखारे पहले प्रभु के फिर आसन पर बैठाया।
पुष्प, पान, चंदन का स्वागत, सारे ग्वालों को भाया॥ ४४॥

जीवन सफल हुआ, कुल-पावन, माली ने स्तुति गाई।
देवों, ऋषियों, पितरों के हर ऋण से आज मुक्ति पाई॥ ४५॥

हैं सम्पूर्ण जगत के कारण, भूमि-भार हरने आये।
कर अधर्म का नाश, धर्म को स्थापित करने आये॥ ४६॥

सबके सुहृद, आत्मा सबकी, सब पर दृष्टि समान रखें।
जैसा ध्यान धरे कोई, प्रभु उसका वैसा ध्यान रखें॥ ४७॥

दास आपका हूँ, क्या सेवा करूं, दास को बतलायें।
उस पर कृपा आपकी, सेवा-योग्य आप जिसको पायें॥ ४८॥

राजन्! माली समझ गया अभिप्राय, यहां प्रभु क्यों आये।
हार सुगंधित फूलों के, माली ने सबको पहनाये॥ ४९॥

सुन्दर और सुगंधित पुष्प-हार प्रभु के मन को भाये।
जो मन को भाये, वरदान, सुदामा ने प्रभु से पाये॥ ५०॥

अविचल भक्ति रहे चरणों में, जीवों के प्रति रहे दया।
भक्तों के प्रति प्रेम-भाव से, रहूँ समर्पित पूर्णतया॥ ५१॥

मांगे वर के साथ, कांति, यश, आयु, अटल-लक्ष्मी पाई।
हो प्रसन्न ग्वालों को लेकर, बिदा हुए दोनों भाई॥ ५२॥

बयालीसवां अध्याय

कुब्जा पर कृपा, धनुष-भंग और कंस की घबराहट

बोले शुक - पथ में प्रभु ने देखी युवती कूबड़वाली।
मुख सुन्दर था और हाथ में थी आलेपन की थाली॥
सबको करें प्रदान प्रेम-रस, प्रभु सब हृदयों में बसते।
करने उस पर कृपा, कृष्ण ने प्रश्न किया हँसते-हँसते॥ १॥

तुम हो कौन सुन्दरी, है वह कौन महान भाग्यशाली।
जिसे लगाने ले जाती हो, अंगराग भर-भर थाली॥
आलेपन क्या हमें दान में दोगी, सच-सच बतलाओ।
संभव है उसके बदले में तुम कुछ अधिक श्रेष्ठ पाओ॥ २॥

बोली वह युवती, हे सुन्दर, मैं कुब्जा कहलाती हूँ।
यह आलेपन, मैं राजा को जाकर रोज लगाती हूँ॥
भोजराज को अंगराग आलेपन भाता है भारी।
पर लगता है तुम दोनों हो, आलेपन के अधिकारी॥ ३॥

देख रूप, माधुर्य, हास्य, परिपूर्ण-प्रेम, सुन्दर-चितवन।
कुब्जा ने मन कर न्यौछावर, दिया कृष्ण को आलेपन॥ ४॥

गौर वर्ण बल को केसर रँग वाला अंगराग भाया।
पीला रंग कृष्ण को भाया, वक्षस्थल पर लगवाया॥ ५॥

प्रभु प्रसन्न थे, सोचा कुब्जा भी दर्शन का फल पाये।
मुख सुन्दर है, इसके टेड़ेपन को दूर किया जाये॥ ६॥

रख कर अपना चरण, दबाये कुब्जा के पंजे भूपर।
दो उंगली ठोड़ी पर रख कर उचकाया थोड़ा ऊपर॥ ७॥

पा प्रभु का स्पर्श, हो गई सीधी वह सुन्दर युवती।
पीन-पयोधर और विशाल नितम्बों वाली रूपवती॥८॥

बढ़ी कामना, साथ रूप के, गुण औदार्य आदि पाकर।
उत्तरीय को पकड़, कृष्ण से कुब्जा बोली मुस्काकर॥९॥

आज नहीं छोड़ूंगी, मेरे घर चलिए हे उपकारी।
मेरा मन मथ दिया, चले तो, सदा रखूंगी आभारी॥१०॥

अग्रज के आगे ऐसा प्रस्ताव, नहीं प्रभु को भाया।
ग्वालों को देखते हुए, हँस-कर कुब्जा को समझाया॥११॥

तुम व्याधियां मिटाती हो, जिनका कोई उपचार नहीं।
उनकी तुम सेवा करतीं, जिन पथिकों के घर-द्वार नहीं॥१२॥

उसे बिदा कर, आगे पहुंचे जहाँ रहें सब व्यापारी।
राम-कृष्ण के दर्शन कर आनंदित थे सब नर-नारी॥
चंदन-पान-पुष्प से पूजा की, पहनाईं मालाएं।
दे-दे कर उपहार सभी को व्यापारी-गण सुख पाएं॥१३॥

प्रभु को देखा ललनाओं ने, हुईं कृष्ण की अनुरागी।
अपनी सुध-बुध खोई, प्रभु से मिलने की इच्छा जागी॥
जूड़ा-कंगन-वस्त्र हुए ढीले, शृंगार विचित्र बना।
रहीं मूर्तिवत खड़ीं सभी, जैसे कागज पर चित्र बना॥१४॥

पता पूछते हुए रंगशाला जा पहुंचे गिरधारी।
इन्द्रधनुष जैसा स्थापित था जिस जगह धनुष भारी॥१५॥

पूजित-अर्चित धनुष, सुसज्जित था विभिन्न आभूषण में।
थे रक्षक पर प्रभु ने उठा लिया वह धनुष एक क्षण में॥१६॥

बांयें कर से उठा, चढ़ा प्रत्यंचा, उसे तोड़ डाला।
जैसे खेल-खेल में गन्ना तोड़े हाथी मतवाला॥१७॥

धनुष-भंग की ध्वनि से दसों-दिशायें, भुवन, भूमि कांपी।
ध्वनि थी इतनी तीव्र, हुआ भयभीत कंस जैसा पापी॥१८॥

तभी पकड़ने प्रभु को आततायी रक्षा-कर्मी आये।
पकड़ो, बांधो, मारो, जाने मत देना, सब चिल्लाये॥१९॥

कृष्ण और बलराम धनुष-खण्डों को शस्त्र बना डाले।
मारे गए एक-दो पल में, सब रक्षा करने वाले॥२०॥

भेजी गई सैन्य टुकड़ी करने को मदद कंस द्वारा।
राम-कृष्ण ने उन्हीं धनुष खण्डों से उनको भी मारा॥
बाहर निकले मुख्य द्वार से, थी वीरान यज्ञ-शाला।
लगे देखने शोभा पुर की ग्वाले और नंदलाला॥२१॥

रूप जिन्होंने देखा, प्रभु के शक्ति-पराक्रम को जाना।
राम-कृष्ण को मथुरा के लोगों ने श्रेष्ठ देव माना॥२२॥
मथुरा में घूमे पूरी स्वतंत्रता से दोनों भाई।
ग्वालों सहित गए डेरे पर जैसे ही संध्या आई॥२३॥

प्रभु जब ब्रज से चले, गोपियों ने जो कुछ उस समय कहा।
मथुरा में रहने वालों का वैसा ही सौभाग्य रहा॥
मथुरा वाले देख रहे थे, पुरुष-सिंह की सुन्दरता।
जिनके वक्षस्थल पर कमला का आवास हुआ करता॥२४॥

राम-कृष्ण ने धोकर हाथ-पैर स्वादिष्ट खीर खाई।
जाना कंस करेगा कल क्या, फिर सोये दोनों भाई॥२५॥

सुना कंस ने किया गया था धनुष भंग जिनके द्वारा।
खेल-खेल में राम-कृष्ण ने सभी सैनिकों को मारा॥ २६॥

हुआ कंस भयभीत, देर तक उसको नींद नहीं आई।
दिखते थे अपशकुन मृत्यु-सूचक, थी घबराहट छाई॥ २७॥

अपना ही प्रतिबिंब बिना सिर के, दिखता था भयकारी।
और एक की जगह ज्योतियां, दो-दो दिखती थीं सारी॥ २८॥

पेड़ सुनहरे दिखें, दिखाई देती थी छिद्रित छाया।
दिखें नहीं पद-चिन्ह, सांस की भी आवाज न सुन पाया॥ २९॥

देखा स्वप्न कि बैठ गधे पर नंगा कहीं जा रहा है।
तन पर तेल, गले में गुड़हल डाले, जहर खा रहा है॥ ३०॥

ऐसे ही अपशकुन जागते-सोते, पड़ते दिखलाई।
डरा मृत्यु से कंस, रात भर उसको नींद नहीं आई॥ ३१॥

जैसे-तैसे रात कटी, पर ज्यों दिन का आरंभ हुआ।
पा आदेश कंस का, मल्लों का उत्सव प्रारंभ हुआ॥ ३२॥

हारों से, वंदनवारों से और ध्वजों से मंच सजे।
रंग-भूमि भी गयी सजायी, तुरही, भेरी वाद्य बजे॥ ३३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, पुरवासी, वनवासी जो दर्शक आये।
जो राजा-गण आये, सब अपना निश्चित आसन पाये॥ ३४॥

मध्य मंडलेश्वरों, मंत्रियों के, ऊँचे सिंहासन पर।
था आसीन कंस, पर उसके मन में तो बैठा था डर॥ ३५॥

ठोके ताल पहलवानों ने, साथ ताल के वाद्य बजे।
गुरुओं को ले मल्ल, अखाड़ों में फिर उतरे सजे-धजे॥ ३६॥

वाद्यों की ध्वनि सुन मुष्टिक, चाणूर, कूट, तोशल, शल भी।
उत्साहित हो बीच अखाड़े में जा बैठे मल्ल सभी॥ ३७॥

नंद आदि गोपों को इसके बाद कंस ने बुलवाया।
ग्रहण किए उपहार, यथा-स्थान सभी को बैठाया॥ ३८॥

तेतालीसवां अध्याय

कुबलियापीड़ का उद्धार और अखाड़े में प्रवेश

बोले शुक - प्रातः तैयार हुए जल्दी दोनों भाई।
रंगभूमि की ओर चले, ज्यों ही ढोलों की ध्वनि आई॥ १॥

प्रभु ने देखा मुख्य-द्वार पर दुष्ट कुबलियापीड़ खड़ा।
रोक रखा था पूरा मुख्य-द्वार, हाथी था बहुत बड़ा॥ २॥

कसी कृष्ण ने कमर, बांध कर अपनी अलकें घुघराली।
कहा महावत से प्रभु ने, थी वाणी सघन मेघ वाली॥ ३॥

अरे महावत! छोड़ रास्ता, हट अब तनिक विलंब न कर।
पहुंचा दूँगा तुझे और तेरे हाथी को यम के घर॥ ४॥

क्रोधित हुआ महावत, प्रभु ने जब पापी को धमकाया।
अंकुश लगा, बढ़ाया हाथी, ऐसा लगा काल आया॥ ५॥

लिया लपेट सूंड में प्रभु को, हाथी ने अगले ही पल।
प्रभु ने उसे जमाया घूंसा, छिपे पैर के बीच, निकल॥ ६॥

घ्राण शक्ति से ढूंढ़ लिया, क्रोधित होकर प्रभु को पकड़ा।
किंतु कृष्ण के बल से हारा, उन्हें शीघ्र छोड़ना पड़ा॥ ७॥

प्रभु ने पकड़ी पूंछ कुबलिया की, सौ हाथ खींच लाये।
जैसे किसी बड़े विषधर को पक्षीनाथ खींच लाये॥८॥

घुमा रहे थे प्रभु हाथी को पूंछ पकड़ दायें-बायें।
जैसे बालक पूंछ पकड़, बछड़े को चक्कर लगवायें॥९॥

फिर आगे आकर प्रभु ने उसके सिर पर घूंसा मारा।
फिर आगे दौड़े तो पीछे दौड़ा हाथी हत्यारा॥१०॥

फिर यों लगा कि कृष्ण गिर पड़े, पर जब तक हाथी आये।
प्रभु उठ गये, क्रुद्ध हाथी के दांत भूमि से टकराये॥११॥

जब देखा हाथी ने उसका बड़ा आक्रमण व्यर्थ गया।
प्रेरित किया महावत तो, उसने हमला किया नया॥१२॥

प्रभु को लगा कि बहुत हो गई हाथी से हाथापायी।
जाकर निकट सूंड को पकड़ा, क्षण में किया धाराशायी॥१३॥

फिर सिंह के समान तेजी से, प्रभु सिर पर हो गए खड़े।
दबा पैर से, लिए उखाड़, दांत हाथी के बड़े-बड़े॥
फिर हाथी को हाथी के ही दांतों से प्रभु ने मारा।
खेल-खेल में, खेल महावत का भी किया खत्म सारा॥१४॥

मृत हाथी को छोड़ वहीं, हाथों में लिए दांत भारी।
रंग-भूमि की ओर चल पड़े, थी प्रभु की शोभा न्यारी॥
कंधे हाथी दांत, मुख-कमल पर श्रम-सीकर के कण थे।
मद-कण और रक्त-कण भी थे, शोभा का जो कारण थे॥१५॥

शस्त्र सदृश्य कृष्ण-बल, कंधों पर हाथी के दांत लिए।
रंग-भूमि में सभी ग्वाल-बालों के साथ प्रवेश किए॥१६॥

मल्लों को प्रभु दिखे वज्र सम, कामदेव-ललनाओं को।
गोपों को थे स्वजन, कठोर प्रशासक थे राजाओं को॥
दिखे नरों को नरपति जैसे, वृद्धों को प्रभु बाल दिखे।
दिखे विराट, छुद्र लोगों को और कंस को काल दिखे॥
योगी पाये परम तत्व, यदुवंशी परम इष्ट पाये।
अपने भाव दिखे सबको, जब रंग-भूमि में प्रभु आये॥१७॥

धीर-वीर था कंस देखकर हाथी का वध घबराया।
इन्हें जीतना मुश्किल है राजन! तब उसे समझ आया॥१८॥

थे आजानुबाहु दोनों, नीलाम्बर-पीताम्बर-धारी।
था विचित्र-सा वेश किंतु लीलाएं सभी चमत्कारी॥
लगता था जैसे नाटक करने को दो-दो नट आए।
पर जो देखे उन्हें, हृदय उसका तत्क्षण चोरी जाए॥१९॥

देख स्वरूप कृष्ण का, बल का, मोहित थे दर्शक सारे।
खिले मुख-कमल, खिले नेत्र सबके उत्कंठा के मारे॥
मंचासीन देशवासी, पुरवासी एवं वनवासी।
देख रहे थे उन्हें किंतु थी आंखें प्यासी की प्यासी॥२०॥

रूप-मधुरी को, रसना-चाटना, नेत्र-पीना चाहें।
नाक-सूंघना चाहे, छाती से कसना चाहें बाँहें॥२१॥

देख रूप, गुण, निर्भयता, माधुर्य लोग अचरज खाएं।
एक दूसरे को बतलायें, प्रभु की पिछली लीलाएं॥२२॥

कहा किसी ने हरि के हैं अंशावतार दोनों भाई।
हैं वसुदेव-पुत्र दोनों ही, काटेंगे सब कठिनाई॥२३॥

पुत्र देवकी के हैं, छुपकर गोकुल में रहते आये।
नंदराय ने पालन पोषण किया, पुत्र का सुख पाये॥ २४॥

वहां पूतना, धेनुक, केशी, शंख और तृण को मारा।
यमलार्जुन का किया गया उद्धार कृष्ण के ही द्वारा॥ २५॥

गये बचाये वन में दावानल से सब गायें-ग्वाले।
किया इन्द्र का दर्प भंग, कालिय के शीश कुचल डाले॥ २६॥

सात दिनों तक, एक हाथ पर थामा गोवर्धन भारी।
आंधी-पानी वज्रपात से रहे सुरक्षित नर-नारी॥ २७॥

मंद-मंद मुस्कान, मधुर-चितवन को देख गोपिकाएं।
आनंदित हो जायें, सब तापों से सदा मुक्ति पाएं॥ २८॥

अब होगा यदुवंश सुरक्षित, ऐसा सभी लोग कहते।
यश, गौरव, समृद्धि मिलेगी, यदुकुल को इनके रहते॥ २९॥

कमल-नयन बलराम, कृष्ण के अग्रज सदा साथ रहते।
वत्स, प्रलंब, बकासुर का वध किया इन्होंने, सब कहते॥ ३०॥

लोगों की बातों की ध्वनि थी, और बज रही थी तुरही।
इसी बीच चाणूर मल्ल ने राम-कृष्ण से बात कही॥ ३१॥

हे बल, हे श्रीकृष्ण, तुम्हारी मल्ल-कला का पता चला।
महाराज ने बुलवाया, दर्शक भी देखे उसे भला॥ ३२॥

जो मन, बचन कर्म से राजा का प्रिय करें, लाभ पायें।
जो विपरीत चलें राजा के, वे तो शत्रु कहे जायें॥ ३३॥

सर्वज्ञात है गोप-ग्वाल वन में गायें ले जाते हैं।
मल्ल-युद्ध की क्रीड़ा करने में ही समय बिताते हैं॥ ३४॥

करने राजा को प्रसन्न, आओ हम जोर आजमाएं।
जन-प्रतिनिधि राजा प्रसन्न तो, सब प्रसन्न माने जाएं॥ ३५॥

जो बोला चाणूर, कृष्ण की भी वह ही योजना रही।
देश-काल का, पर विचार करके प्रभु ने यह बात कही॥ ३६॥

तुम कहते हो सत्य, प्रजा हैं हम वन के रहने वाले।
राजा की प्रसन्नता में, कल्याण देखते हैं ग्वाले॥ ३७॥

हम बच्चों को सम-बल वाले बच्चों से ही लड़वायें।
ऐसा ना हो, सभी सभासद भी अन्यायी कहलायें॥ ३८॥

तब बोला चाणूर नहीं हो बच्चे, हो अति-बल वाले।
जिसमें था हजार गज का बल, उस गज का वध कर डाले॥ ३९॥

जोड़ी तुम दोनों की हमसे होगी बराबरी वाली।
तुम मुझसे, मुष्टिक से लोहा लें बलदाऊ बलशाली॥ ४०॥

चवालीसवां अध्याय

चाणूर-मुष्टिक आदि पहलवानों एवं कंस का उद्धार

बोले शुक - प्रभु ने तब निश्चय किया, इन्हें मारा जाये।
कृष्ण और चाणूर भिड़ गए, बल मुष्टिक से टकराये॥ १॥

एक दूसरे के हाथों को मल्लों ने पहले पकड़ा।
लगे खींचनें और गिरानें, फिर पैरों में पैर अड़ा॥ २॥

पंजे लड़ा, दूसरे के सिर पर सिर से ही वार करें।
छाती से छाती टकरायें, घुटने वज्र प्रहार करें॥ ३॥

कभी पकड़ते, कभी जकड़ते, कभी ढकेल लिपट जाते।
कभी पटकते, कभी सटकते, कभी पास आ हट जाते॥ ४॥

एक दूसरे को पछाड़ने दोनों ही प्रहार करते।
कोई गिरा, उठाते उसको, फिर से नया वार करते॥ ५॥

बच्चों से कुश्ती लड़ते, जब देखे पहलवान भारी।
आलोचना लगीं करने, दल की दल महिलाएं सारी॥ ६॥

कंस अधर्मी और सभासद भी हैं सारे अन्यायी।
निर्बल और सबल की कुश्ती, का है निर्णय दुखदायी॥ ७॥

कहां वज्र जैसे कठोर वे, जिनकी पर्वत सी काया।
ये सुकुमार किशोर कहां, यौवन भी अभी नहीं आया॥ ८॥

हो अधर्म जिस जगह पाप होता है वहां बने रहना।
धर्मोल्लंघन का लगता है पाप, शास्त्र का है कहना॥ ९॥

धर्महीन यदि सभा, वहां जाना, या जाकर चुप रहना।
'मुझे नहीं मालूम', दोष से नहीं बचाता यह कहना॥ १०॥

घेर रहे हैं कृष्ण शत्रु को, श्रमकण है मुखमंडल पर।
शोभित है मुख जैसे, जल की बूंदें पड़ें कमल-दल पर॥ ११॥

मुष्टिक पर क्रोधित होने से, नेत्र लाल दिखते बल के।
लेकिन उनके मुख-मंडल पर तो अनवरत हास छलके॥ १२॥

है ब्रज-भूमि पवित्र जहां पुरुषोत्तम नर-लीला करते।
जिनके चरण दबातीं लक्ष्मी, जिनका ध्यान रुद्र धरते॥
बलदाऊ के साथ बजाते वंशी, गाय चराते हैं।
वन-पुष्पों की मालाएं धारण करके सुख पाते हैं॥ १३॥

किया गोपियों ने क्या तप, नयनों से पीतीं रूप-सुधा।
है लावण्य अनन्य, नित्य-नूतन, अतृप्त ही रहे क्षुधा॥
ऐश्वर्य, सौंदर्य और यश जिन प्रभु का आश्रय पायें।
अन्य न पाते देख, देखती भाग्यवान ब्रज-बालायें॥ १४॥

धन्य गोपियां जो आंसू से भरे कंठ से गुण गातीं।
दुहतीं दूध, दही मथतीं, घर का सब काम किए जातीं॥
बच्चों को बहलाना, उन्हें झुलाना झूला, नहलाना।
करती सारा काम, न होता बंद कृष्ण के गुण गाना॥ १५॥

प्रातः ब्रज से वन जाते, श्रीकृष्ण चराने को गायें।
वंशी की मादक धुन छेड़ें, जब वन से वापस आयें॥
काम छोड़कर पुण्यवती गोपियां, शीघ्र बाहर आयें।
मंद-मंद मुस्कान, चारु-चितवन को देखें, सुख पायें॥ १६॥

हे राजन! जिस समय कर रहीं थीं यह चर्चा महिलाएं।
किया कृष्ण ने निश्चय, दोनों पहलवान मारे जाएं॥ १७॥

माता-पिता शोक विह्वल थे, सुनकर चर्चाएं सारी।
नहीं जानते थे पुत्रों के बल को, थे चिंतित भारी॥ १८॥

मुष्टिक पर बल और कृष्ण चाणूर मल्ल पर थे छाये।
यद्यपि दोनों मल्लों ने सब दांव-पेंच थे अजमाये॥ १९॥

फिर प्रभु ने की वज्र सरीखी अपनी पूरी देह कड़ी।
हुई मल्ल की रग-रग ढीली, ढीली उसकी पकड़ पड़ी॥ २०॥

फिर झपटा चाणूर, किया जाता ज्यों वार, बाज द्वारा।
दोनों हाथ बांध कर घूंसा, प्रभु की छाती पर मारा॥ २१॥

प्रभु को लगा प्रहार, चोट ज्यों गज ने गजरे की खायी।
पकड़े हाथ, घुमाया नभ में, खल को किया धराशायी॥ २२॥

बिखरा वेश, केश बिखरे, थीं बिखरीं मालाएं सारी।
ऐसे गिरा, जिस तरह गिरता देवराज का ध्वज भारी॥ २३॥

इसी तरह मुष्टिक ने भी, बल पर घूंसे से वार किया।
फिर बलराम बली ने पूरे बल के साथ प्रहार किया॥ २४॥

जैसे आंधी से होता है, भारी वृक्ष धराशायी।
रक्त उगलता गिरा भूमि पर, क्षण में उसे मृत्यु आयी॥ २५॥

इसके बाद कूट को भी, बल ने बायाँ घूंसा मारा।
खेल-खेल में मल्ल गया मारा, बलदाऊ के द्वारा॥ २६॥

पृथक किया प्रभु ने शल का सिर, पद प्रहार कर खड़े-खड़े।
तिनके जैसे चीर किए प्रभु ने तोशल के दो टुकड़े॥ २७॥

जब मुष्टिक, चाणूर, कूट, शल, तोशल आदि गए मारे।
अपने प्राण बचाने भागे, बाकी बचे मल्ल सारे॥ २८॥

प्रभु ने बुला लिए कुश्ती-क्रीड़ा को सम-वयस्क ग्वाले।
लगे खेलने कुश्ती, भेरी की ध्वनि पर घुंघरू डाले॥ २९॥

साधु-साधु, कह उठे साधु सब, दर्शक थे प्रसन्न सारे।
राम-कृष्ण के कृत्य देख चिढ़ गया कंस भय के मारे॥ ३०॥

मुख्य मल्ल सब मरे, पलायन बाकी ने जिस तरह किया।
वाद्य बजाना रोक कंस ने भृत्यों को आदेश दिया॥ ३१॥

हैं वसुदेव पुत्र दोनों, पुर से बाहर तत्काल करो।
मूर्ख नंद को बंद करो, धनहीन समूचे ग्वाल करो॥ ३२॥

बुद्धिहीन वसुदेव दुष्ट है, उसको अभी मार डालो।
उग्रसेन है पिता, किन्तु वध कर, विरोध का बदला लो॥ ३३॥

व्यर्थ प्रलाप कंस का सुनकर, हुए कृष्ण क्रोधित भारी।
ऊंची लगा छलांग मंच पर पहुंचे अव्यय, अविकारी॥ ३४॥

दिखी कंस को, रूप कृष्ण का लेकर सम्मुख, मृत्यु खड़ी।
उठा सिंहासन से उसने तलवार-ढाल तत्क्षण पकड़ी॥ ३५॥

ले तलवार बदलने लगा पैंतरा दायें से बायें।
नभ में उड़ते बाज, दिशा में जैसे परिवर्तन लायें॥
किंतु कंस को पकड़ लिया प्रभु ने दिखलाई तत्परता।
जैसे किसी बड़े विषधर को, गरुड़ शीघ्र काबू करता॥ ३६॥

मुकुट कंस का गिरा कृष्ण ने उसके घने बाल पकड़े।
रंगभूमि में फेंका प्रभु ने, एक हाथ से खड़े-खड़े॥
पद्मनाभ प्रभु ने देखा निश्चेष्ट पड़ा था वह भूपर।
परम स्वतंत्र विश्व-आश्रय प्रभु, कूद पड़े उसके ऊपर॥ ३७॥

कंस मर गया किंतु घसीटी गई देह प्रभु के द्वारा।
जैसे किसी सिंह के द्वारा, हाथी जाता है मारा॥
हुआ कंस-वध प्रभु के हाथों, देख रहे दर्शक सारे।
ऊंचे स्वर में लगे लगाने, हाय-हाय के सब नारे॥ ३८॥

कंस देखता था प्रभु को, खाते-पीते, जगते-सोते।
लेता था जब सांस उस समय भी प्रभु के दर्शन होते॥
लिये हाथ में चक्र, कृष्ण की रही हमेशा छबि छायी।
हैं अति कठिन योगियों को भी, वह सारूप्य मुक्ति पायी॥ ३९॥

कंक-न्यग्रोध आदि बलशाली आठ कंस के लघु-भ्राता।
आठों का दल दिखा कृष्ण को, बदला लेने को आता॥४०॥

बल ने देखा, परिघ उठाकर, मारा उन्हें एक पल में।
जैसे सिंह मार देता, छोटे पशुओं को जंगल में॥४१॥

दुंदुभियां बज उठीं गगन में, पुष्प देवता बरसायें।
स्तुति की ब्रह्मा-शंकर ने, करतीं नृत्य अप्सरायें॥४२॥

कंस और भ्राताओं की नारियां खबर ज्यों ही पाईं।
लिए आंख में आंसू, सिर पीटतीं हुईं बाहर आईं॥४३॥

पड़े वीर-शैया पर निज पतियों का आलिंगन करतीं।
आंखों में आंसू भरतीं, ऊंचे स्वर में रोदन करतीं॥४४॥

हे स्वामी, हे नाथ हमारी मृत्यु आपके साथ हुई।
अब अनाथवत्सल, करुणामय की संतान अनाथ हुई॥४५॥

हुई हमारे जैसी ही गति, पुरुषश्रेष्ठ इस मथुरा की।
हुए समाप्त सभी उत्सव, अब मंगल चिन्ह नहीं बाकी॥४६॥

सब जीवों से द्रोह और अन्याय आपने अपनाया।
शांति न पाते द्रोही, स्वामी ने कर्मों का फल पाया॥४७॥

जो प्रभु करते प्रलय, करें रक्षा, जीवों को उपजायें।
उनका तिरस्कार करते जो जन, वे कैसे सुख पायें॥४८॥

बोले श्रीशुक - प्रभु ने आश्वासन दे धीरज धरवाया।
लोकरीति से मृतकों का सब क्रिया-कर्म भी करवाया॥४९॥

राम-कृष्ण ने मुक्त कराये, माता-पिता काट बंधन।
दोनों ने, दोनों के चरणों में सिर रखा, किया वंदन॥५०॥

पर वसुदेव-देवकी, हृदय लगाने में कुछ सकुचाये।
थे शंकित, किस तरह पुत्र, परमेश्वर को माना जाये॥५१॥

पैतालीसवां अध्याय

बलराम-कृष्ण का यज्ञोपवीत संस्कार और गुरुकुल प्रवेश

माता-पिता जानते थे, बन पुत्र स्वयं ईश्वर आया।
बोले शुक - तब प्रभु ने मन-मोहक माया को फैलाया॥१॥

'माता' और 'पिता' शब्दों का, कर आदर से सम्बोधन।
करने उन्हें प्रसन्न, साथ बल के यों बोले मनमोहन॥२॥

हम हैं वही पुत्र जिनको पाने इच्छुक रहते आये।
किंतु हमारी बाल्य-अवस्था का सुख उठा नहीं पाये॥३॥

रह न सके हम पास आपके, ऐसा बुरा समय आया।
हम दोनों ने पिता और माता का प्यार नहीं पाया॥४॥

देते जन्म, पालते, सब कुछ पाने योग्य बनाते हैं।
सौ वर्षों तक सेवा करके, सुत न उऋण हो पाते हैं॥५॥

जो सुत उनकी सेवा में निज तन-मन-धन न लगाते हैं।
उन्हें दूत यम के, उनके ही तन का मांस खिलाते हैं॥६॥

वृद्ध पिता-माता, पत्नी, सुत, गुरु, द्विज जो शरणागत हैं।
करें न जो इनका पोषण, वह जीवित रहते भी मृत हैं॥७॥

थे भयभीत कंस के कारण, था वह समय जानलेवा॥
व्यर्थ गए इतने दिन, थे असमर्थ, न कर पाये सेवा॥८॥

हे माता, हे पिता, कंस ने कष्ट आपको बहुत दिए।
क्षमा करे, हम पराधीन थे, कुछ न कर सके इसीलिए॥ ९॥

बोले शुक - लीलाधारी की वाणी ने मन मोह लिया।
लिया अंक में, हृदय लगाया, जीवन का सुख प्राप्त किया॥ १०॥

प्रेम-पाश में बंधे, विमोहित हुए, निरंतर अश्रु बहे।
भरा अश्रु से गला, गले से कुछ कहने की कौन कहे॥ ११॥

इस प्रकार वसुदेव-देवकी को प्रभु ने आश्वस्त किया।
नाना उग्रसेन को, यादव कुल का राजा बना दिया॥ १२॥

प्रभु बोले - हम प्रजा आपकी हैं, हम पर करिये शासन।
है ययाति का शाप, नहीं मिलता यदु कुल को सिंहासन॥ १३॥

आप हमेशा ही मुझ को, अपनी सेवा में पायेंगे।
राजा-गण क्या, सभी देवता-गण आ शीश झुकायेंगे॥ १४॥

थे मधु, वृष्णि, कुकुर, अंधक, दाशार्ह आदि यादव सारे।
हो भयभीत कंस से, मथुरा छोड़ गए थे बेचारे॥ १५॥

थे सब व्यथित, बुलाया सबको, सबने आश्वासन पाया।
सब बस गए स्वयं के घर में सबने भारी धन पाया॥ १६॥

राम-कृष्ण के संरक्षण में, गईं व्यथायें, सुख आये।
हुए मनोरथ पूर्ण, कृतार्थ हुए, जो मांगा, वह पाये॥ १७॥

नित प्रमुदित मुख-कमल, मंद-मुस्कान, चारु-चितवन वाला।
सौंदर्य ने प्रभु के, यदुकुल को आनंदित कर डाला॥ १८॥

प्रभु मुख-कमल-पराग-सुधा को पीकर वृद्ध जवान हुए।
वे युवकों जैसे उत्साही हुए और बलवान हुए॥ १९॥

नृपति! कृष्ण-बलराम नंद से मिलने डेरे पर आये।
गले मिले, अत्यंत प्रेम से, कृष्ण, नंद को समझाये॥ २०॥

किया हमारा पालन पोषण, ममता को साकार किया।
इसमें संशय नहीं स्वयं के तन से ज्यादा प्यार किया॥ २१॥

जिन शिशुओं को उनके स्वजनों द्वारा त्याग दिया जाता।
उनका पोषण करें, वही होते वास्तविक पिता-माता॥ २२॥

होंगे दुखी, प्रेम के कारण, किंतु तात अब ब्रज जायें।
'मैं आऊंगा' हल कर लू स्वजनों की सभी समस्यायें॥ २३॥

प्रभु ने नंद आदि सब गोपों को सादर उपहार दिये।
दिए धातु के पात्र विविध, सुन्दर वस्त्रालंकार दिए॥ २४॥

गले लगाया, रोये, लेकिन नहीं नियति पर जोर चले।
नंदराय आंखों में आंसू लेकर ब्रज की ओर चले॥ २५॥

राजन! फिर वसुदेव योग्य-विप्रों को सादर बुलवाये।
पुत्रों के यज्ञोपवीत, द्विज-संस्कार शुभ करवाये॥ २६॥

मिले वस्त्र आभूषण विप्रों को बछड़ों वाली गायें।
सुन्दर वस्त्रों से सज्जित, पहने थीं स्वर्णिम मालायें॥ २७॥

जन्म समय पुत्रों के, जितनी गायों का था दान किया।
लीं थीं छीन कंस ने इससे, फिर से उन्हें प्रदान किया॥ २८॥

दोनों ने द्विजत्व पाया, गायत्री की विधि स्वीकारी।
यदुकुल के आचार्य गर्ग ने, सम्पादित की विधि सारी॥ २९॥

दोनों हैं सर्वज्ञ उन्हीं से निकली विद्यायें सारी।
स्वतः सिद्ध है ज्ञान, छुपाकर रखते हैं लीलाधारी॥ ३०॥

गुरुकुल में रहने की इच्छा से प्रभु उज्जयनी आये।
काश्य गोत्र के संदीपनि गुरु ने दो श्रेष्ठ शिष्य पाये॥ ३१॥

गुरु की सेवा इष्टदेव जैसी करते दोनों भाई।
शिष्य-वृत्ति का पालन करके गुरु की अनुकम्पा पाई॥ ३२॥

गुरु संतुष्ट हुए, दोनों ने शुद्ध-भाव से मान दिया।
गुरु ने उन्हें सभी वेदों का, उपनिषदों का ज्ञान दिया॥ ३३॥

धनुर्वेद, मीमांसा, धर्मशास्त्र का सभी ज्ञान पाया।
राजनीति के संधि आदि भेदों को गुरु ने समझाया॥ ३४॥

आदि-प्रवर्तक सब विद्याओं के प्रभु स्वयं कहे जाएं।
एक बार सुनकर सीखीं, लीलाधर ने सब विद्यायें॥ ३५॥

चौसठ दिन में सीखी चौसठ कला, न कुछ भी शेष रहा।
'गुरु-दक्षिणा मांगिए' प्रभु ने तब गुरु से कर जोड़ कहा॥ ३६॥

देख चुके थे बुद्धि अलौकिक, था महिमा को भी जाना।
पत्नी से सलाह कर मांगा वह, था जिसे कठिन पाना॥
गुरु बोले - प्रभास-सागर में हम अपना सुत खो आये।
गुरु-दक्षिणा पूर्ण होगी यदि तुम उसको वापस लाये॥ ३७॥

महाविक्रमी, महारथी शिष्यों ने गुरु आज्ञा पाई।
जा पहुँचे प्रभास-सागर, रथ पर चढ़कर दोनों भाई॥
रुके एक क्षण को तट पर, प्रभु आये, सागर ने जाना।
हुआ उपस्थित स्वयं, लिए कर में, उपहार-भेंट नाना॥ ३८॥

प्रभु ने कहा समुद्र तुम्हारी लहरें है प्रलयंकारी।
गुरु का पुत्र ले गईं, वापस करो, रहूंगा आभारी॥ ३९॥

कहा सिंधु ने प्रभु बालक लहरों ने नहीं बहाया है।
दैत्य पंचजन ने संभवतः गुरु का पुत्र चुराया है॥ ४०॥

सुन कर कथन सिंधु का, प्रभु ने घुस शंखासुर को मारा।
नहीं मिला गुरु पुत्र शंख के अंदर खोज लिया सारा॥ ४१॥

तब लेकर वह शंख, कृष्ण-बल, रथ से संयमनी आये।
शंख बजाया प्रभु ने, जिसकी ध्वनि सुन यम भी घबराये॥ ४२॥

जीवधारियों के जीवन का जो यम नित नियमन करते।
दिखे वही यम संयमनी के द्वारे, प्रभु पूजन करते॥ ४३॥

यम बोले - हे कृष्ण! आपसे सब प्राणी जीवन पायें।
लीलाधारी हरि, यदि मेरे योग्य कार्य हो, बतलायें॥ ४४॥

प्रभु बोले - गुरु-पुत्र यहां आया है कर्मों के कारण।
लाओ मेरे पास, मान मेरा आदेश असाधारण॥ ४५॥

यम से ले गुरुपुत्र, कृष्ण-बल वापस उज्जयनी आये।
गुरु को सौंपा पुत्र, कहा-कुछ और मांग लें, जो भाये॥ ४६॥

गुरु बोले - हे वत्स! दक्षिणा मैंने मुंह मांगी पायी।
राम-कृष्ण के गुरु के सभी मनोरथ होते फलदायी॥ ४७॥

लोक-पावनी कीर्ति मिलेगी, वीरो! अब निज गृह जाओ।
विद्या सदा नवीन रहेगी, ऐसी दृढ़ स्मृति पाओ॥ ४८॥

चढ़े वायु-गति वाले रथ पर, जब गुरु की अनुमति पाये।
करते हुए मेघ गर्जन की ध्वनि, मथुरा वापस आये॥ ४९॥

राम-कृष्ण के बिना प्रजाजन पर थी व्याकुलता छाई।
प्रभु आये, आनंद आ गया, मानो खोई निधि पाई॥ ५०॥

छियालीसवां अध्याय

उद्धवजी की ब्रज यात्रा

बोले श्रीशुक - उद्धव का था यदुकुल में सम्मान बड़ा।
सखा-सचिव थे प्रभु के, मिला वृहस्पति गुरु से ज्ञान बड़ा॥१॥

एक दिवस शरणागत-वत्सल प्रभु ने उनको बुलवाया।
लेकर हाथ, हाथ में, उद्धव जी को प्रभु ने समझाया॥२॥

माता-पिता-गोपियां सब हैं दुखी, मित्र तुम ब्रज जाओ।
दे मेरा संदेश, करो आनंदित, उनको समझाओ॥३॥

तन-मन-जीवन मुझे समर्पित करके सभी गोपिकाएं।
मुझे आत्मवत मान रखा है, केवल मेरे गुण गाएं॥

लौकिक और पारलौकिक धर्मों को त्याग चुकीं सारी।
उनके योग-क्षेम की है अब, सब मेरी जिम्मेदारी॥४॥

मेरे यहां दूर आने से मोहित हैं ब्रज-बालाएं।
उत्कंठित रहती हैं, विरह-व्यथा से विह्वल हो जाएं॥५॥

मुझे आत्मा मानें, कठिनाई से करें प्राण-धारण।
'मैं आऊंगा' मैंने बोला था, जीवित हैं इस कारण॥६॥

श्रीशुक बोले - उद्धव ने प्रभु की आज्ञा सादर मानी।
प्रभु का ले संदेश चढ़े रथ पर, ब्रज चले ब्रह्मज्ञानी॥७॥

संध्या की बेला थी जब उद्धव का रथ पहुंचा ब्रज में।
गायें लौट रहीं थी वन से, रथ ढंक गया धेनु रज में॥८॥

ऋतुमति गायों को ले सांडों में था शीत युद्ध जारी।
दौड़ रहीं गायें, बछड़ों की ओर सम्हाले थन भारी॥९॥

दौड़ रहे थे यहां-वहां गायों के बछड़े सज-धजे।
कहीं गाय दुहने की ध्वनि थी, दूर कहीं बांसुरी बजे॥१०॥

गोपी-गोप स्वयं सज कर ब्रज का सौंदर्य बढ़ाते थे।
कृष्ण और बल की बचपन की लीलाओं को गाते थे॥११॥

पूजे गए पितृ, सुर, द्विज, रवि, अग्नि, अतिथि एवं गायें।
दीपों, फूलों, धूप-गंध से, सज्जित घर, शोभा पायें॥१२॥

लदे हुए थे वन फूलों से, खग कूकें, भंवरे गायें।
सरसिज भरे सरोवर थे, जो हंसों-बतखों को भायें॥१३॥

हुए नंद आनंदित, प्रभु के प्रिय उद्धव जब ब्रज आये।
गले लगाया ऐसे, जैसे दिनों बाद प्रभु को पाये॥१४॥

यथा-समय कर उत्तम भोजन, स्वच्छ पलंग पर बैठाया।
करने दूर थकान, झला पंखा, पैरों को दबवाया॥१५॥

कहा नंद ने - मेरे प्रिय वसुदेव पूर्ण सकुशल होंगे।
मिली मुक्ति, पुत्रों को पाया, आनंदित प्रति-पल होंगे॥१६॥

धर्मशील यादव समाज से, द्वेष कंस को था भारी।
अच्छा हुआ, हुआ वध उसका, नष्ट हुई सेना सारी॥१७॥

आते हैं क्या याद कृष्ण को स्वजन, सखा, ग्वाले, गायें।
मां की स्मृति है क्या, क्या गिरिवर, वन उन्हें याद आयें॥१८॥

हमें देखने आयेंगे क्या, वे तिरछी चितवन वाले।
क्या देखेंगे सुघड़ नासिका, मंद-हास्य, ब्रज के ग्वाले॥१९॥

हैं उदार, रक्षा की दावानल से, आंधी-पानी से।
हमें बचाने, मारे वृषभासुर-अजगर आसानी से॥ २०॥

हँसते, बातें करते, हमें देखते, कृष्ण याद आते।
रहते हैं सर्वदा कृष्ण-मय, कुछ भी काम न कर पाते॥ २१॥

दिखते हैं पद-चिन्ह कृष्ण के, पुलिन, पहाड़ और वन में।
क्रीड़ा-रत हैं वहां कृष्ण, हमको ऐसा लगता मन में॥ २२॥

राम-कृष्ण देवाधि-देव हैं, मुझे गर्ग थे बतलाये।
देवताओं का करने कोई कार्य भूमि पर हैं आये॥ २३॥

किया कंस-वध, महावीर मल्लों को मार दिया पल में।
बलशाली गज को मारा ज्यों सिंह मारे पशु जंगल में॥ २४॥

गज तोड़े टहनी ज्यों तोड़ा, धनुष ताड़ जैसा भारी।
सात दिवस तक रहे उठाये, गोवर्धन को गिरधारी॥ २५॥

खेल-खेल में बक, प्रलंब, धेनुक, अरिष्ट, तृण को मारा।
हार गया था जिनसे असुरों और सुरों का दल सारा॥ २६॥

बोले शुक! कर याद कृष्ण को, नेत्र नंद के भर आये।
बाढ़ प्रेम की आयी, गला रुंधा फिर कुछ न बोल पाये॥ २७॥

बैठीं पास यशोदा, सुनतीं थीं प्रभु की सब लीलाएं।
बहा वक्ष से दूध, आंख से आंसू भी बहते जायें॥ २८॥

नंद-यशोदा का प्रभु के प्रति प्रेम पवित्र, प्रगाढ़ रहा।
प्रेम-मग्न हो गए देख कर उद्धव, फिर हो शांत कहा॥ २९॥

उद्धव बोले - करूं प्रशंसा कैसे, समझ नहीं आता।
उस पर है वात्सल्य आपका, जो है जग का निर्माता॥ ३०॥

बीज-योनि हैं राम-कृष्ण, इस जग का हैं प्रधान कारण।
प्रकृति-पुरुष हैं, करते हैं सारी संसृति का संधारण॥
सब शरीर में हो प्रविष्ठ, जीवों में यही प्राण भरते।
ज्ञानवान जो जीव विलक्षण, उनका भी नियमन करते॥ ३१॥

मृत्यु-समय प्राणी पल भर को प्रभु में ध्यान लगाता है।
धुलते उसके पाप, ब्रह्ममय होकर सद्गति पाता है॥ ३२॥

वही परम कारण संसृति के, भक्तों का हित करने को।
मानव-रूप किए हैं धारण, भार भूमि का हरने को॥
उन प्रभु के प्रति वात्सल्य है, और भावना ममता की।
कोई भी शुभकर्म आप दोनों को नहीं बचा बाकी॥ ३३॥

कुछ ही दिन में कृष्ण आपसे मिलने ब्रज में आयेंगे।
उनको पाकर आप, आपको पाकर वे सुख पायेंगे॥ ३४॥

वध करने के बाद कंस का, ब्रज आने की बात कही।
निश्चित ही वे ब्रज आयेंगे, होगा उनका कहा सही॥ ३५॥

आप उन्हें देखेंगे जल्दी, प्रभु वह करते, जो कहते।
जैसे रहती अग्नि काष्ठ में, प्रभु हर प्राणी में रहते॥ ३६॥

उन्हें न कोई अप्रिय या प्रिय, उनको लगें समान सभी।
उत्तम-अधम न लगता कोई, पाते जीवनदान सभी॥ ३७॥

उनका कोई पुत्र न पत्नी, उनके नहीं पिता-माता।
जन्म-रहित जो, देह-रहित जो, उसका किससे क्या नाता॥ ३८॥

उनका कर्म नहीं कोई, परित्राण सज्जनों का करते।
विविध योनियों में आवश्यकता अनुसार देह धरते॥ ३९॥

सत-रज-तम के परे, खेल के लिए इन्हें स्वीकार करें।
करें जगत की रचना, पालन करें और संहार करें॥ ४०॥

जब शरीर घूमता, लगा करता है घूम रही धरती।
वैसे ही मन है कर्ता, पर लगे आत्मा सब करती॥ ४१॥

मात्र आपके पुत्र नहीं हैं, अखिलेश्वर अंतर्यामी।
सब जीवों की वही आत्मा, पुत्र, पिता, माता, स्वामी॥ ४२॥

जो कुछ देखा-सुना गया, गत-आगत में या आज-अभी।
वह स्थावर हो, जंगम हो, हो महान या अल्प, सभी॥
वस्तु नहीं कोई जो प्रभु-परमार्थ-सत्य से पृथक रहे।
उनके बिना नहीं कुछ होता, जिसको कोई वस्तु कहे॥ ४३॥

राजन! नंद और उद्धव की बातें खत्म न हो पातीं।
यदि न सुबह की आहट पाकर ब्रज-बालाएं उठ जातीं॥
रखकर दीप द्वार पर, मथने लगीं दही को ललनायें।
घर-घर का क्रम यही, यही घर-घर स्वर, घर-घर से आयें॥ ४४॥

कंगन खन-खन करें, खींचती डोरी चपल गोपिकाएं।
हिलें नितंब, वक्ष भी हिलते, हार हिलें शोभा पाएं॥
कुंमकुम लगे गाल पर कुंडल लगने से बढ़ती लाली।
आभूषण की मणियों में विंबित छबि द्वार-दीप वाली॥ ४५॥

दधि-मंथन के साथ गोपियां गातीं प्रभु की लीलाएं।
अद्‌भुत ध्वनि बनती, गायन-मंथन की ध्वनियां मिल जाएं॥
स्वर्गलोक तक गूंज रही थी, ललनाओं की स्वर-लहरी।
हुई दिशाएं मंगलमय, प्रभु में होती निष्ठा गहरी॥ ४६॥

सोने का रथ दिखा, नंद के दरवाजे जब भोर हुई।
किसका रथ है, ललनाएं पूछें, चर्चा सब ओर हुई॥ ४७॥

एक सखी बोली-शायद अक्रूर यहां फिर से आया।
करने भला कंस का जिसने, प्रभु को मथुरा पहुंचाया॥ ४८॥

सखी दूसरी बोली - क्या अब हमें वहां ले जायेगा।
पिण्ड-दान का कर्म कंस का, क्या हमसे करवायेगा॥
खड़ीं हुईं थीं ललनाएं, आपस में यों ही बतियाते।
नित्य-कर्म से निवृत होकर, दिखे उन्हें उद्धव आते॥ ४९॥

सैतालीसवां अध्याय

उद्धव की गापियों से बातचीत और भ्रमर गीत

बोले शुक - प्रभु के प्रिय उद्धव को देखीं जब ललनायें।
वही कृष्ण जैसा पीताम्बर, नेत्र-कमल शोभा पायें॥
वैसे ही आजानुबाहु, ग्रीवा में कमल पुष्प-माला।
आनंदित मुख-कमल, कान में स्वर्णिम कुंडल मणिवाला॥ १॥

बालाएं उत्कंठित थी, यह कौन, कहां से आया है।
है किसका यह दूत, कृष्ण जैसा क्यों वेश बनाया है॥
उद्धव सदा कृष्ण के चरण-कमल का ही आश्रय पायें।
ब्रज में उनका परिचय पाने घेरे थीं, ब्रज-ललनायें॥ २॥

ज्ञात हुआ, संदेश कृष्ण का लेकर हैं उद्धव आये।
झुके शीश, आंखें शर्मायीं, ओंठ हंसे, मन हरषाये॥
बैठायीं उद्धव को ऐसी जगह जहां एकांत रहा।
एक सखी ने मीठी वाणी में आदर के साथ कहा॥ ३॥

यदुपति के हैं सखा आप, उनका ही संदेशा लाये।
उनके पिता और माता को आनंदित करने आये॥४॥

सच है स्वजनों से नाता, ऋषि-मुनि भी नहीं तोड़ पायें।
हमें न कोई वस्तु दिखे, जिस कारण कृष्ण याद आयें॥५॥

संबंधों का स्वांग सदा, अन्यों के साथ किया जाता।
स्त्री और पुरुष का, भ्रमर-पुष्प जैसा होता नाता॥६॥

नहीं शेष बचता जब धन तो, वेश्या मुख मोड़ा करती।
राजा हो बलहीन, राज्य की प्रजा उसे छोड़ा करती॥
शिष्य न गुरु की सेवा करते, जब अध्ययन समाप्त होता।
चल देते आचार्य, यज्ञ का ज्यों ही दान प्राप्त होता॥७॥

रुकते नहीं वृक्ष पर पक्षी, रहें न जिस पर फल बाकी।
भोजन करके अतिथि न देखें, किसने उसकी सेवा की॥
रुकता नहीं पुरुष, स्त्री को कितना ही अनुराग लगे।
ऐसा भागे, जैसे पशु भागें, जब वन में आग लगे॥८॥

तन-मन-वचन कृष्ण में था, पर जैसे ही उद्धव आये।
भूल गई क्या-क्या कहना है, कुछ भी नहीं कहा जाये॥९॥

करके प्रभु की याद किशोरावस्था तक की लीलाएं।
कुछ तो लज्जा छोड़ रो पड़ी, कुछ प्रभु के चरित्र गाएं॥१०॥

गोपी एक कृष्ण के मिलन प्रसंगों की सुधि में खोई।
गुन-गुन करने लगा उस समय, आकर पास भ्रमर कोई॥
उसको लगा कि दूत कृष्ण का आकर उसको मना रहा।
बौराई गोपी ने भौंरे को सम्बोधित किया - कहा॥११॥

वह बोली - हट दूर मधुप, मूछों पर है कुंमकुम पीला।
माला छुए सौत का वक्षस्थल, है यही कृष्ण-लीला॥
यह कुंमकुम प्रसाद पा खुश होंगीं मथुरा की ललनाएं।
यहां यादवों में उपहास योग्य होती यह घटनाएं॥१२॥

रस पीकर जैसे तू उड़ता भ्रमर, कृष्ण ने यही किया।
मादक, मोहक, अधर-सुधा पी, एक बार फिर, छोड़ दिया॥
पद्मा करे पद-कमल की सेवा यह कैसी माया है।
मीठी बातों से लगता, उनका भी चित्त चुराया है॥१३॥

नयी नहीं हम, यहां मधुप क्यों तू यदुपति के गुण गाये।
जिनके हृदय कृष्ण ने जीते, अभी उन्हें गुन-गुन भाये॥
दूर हुई मथुरा की सखियों के मन की पीड़ा सारी।
वहां कृष्ण के गुण गाना, वे देंगीं तुझे भेंट भारी॥१४॥

कपट भरी मुस्कान मनोहर, भृकुटि-विलास चमत्कारी।
जिसे न मोहित करे, नहीं तीनों जग में ऐसी नारी॥
लक्ष्मी करतीं चरण-कमल की सेवा, चरण-धूलि पानें।
कीर्ति बहुत है, नहीं कृपा हम पर तो, हम कैसे मानें॥१५॥

मत छू मेरे पैर मधुप तू, चाटुकार बन कर आया।
मान मनौब्बल का यह सारा पाठ कृष्ण ने सिखलाया।
हमने छोड़े स्वजन-पुत्र-पति, लेकिन कृष्ण कृतज्ञ नहीं।
हमें नहीं विश्वास, कभी ऐसे में होती संधि कहीं॥१६॥

पत्नी के वश हो, कुरूप की, राम-रूप में शूर्पनखा।
बालि गया मारा निर्दयता से, बलि ने भी स्वाद चखा॥
बलि देने वाले को ही घेरा करते कौए काले।
पर यह काले कृष्ण, हृदय से नहीं कभी जाने वाले॥१७॥

उनकी लीला का अमृत जब कानों में पड़ जाता है।
हो जाते है द्वंद नष्ट, उसको घर-द्वार न भाता है॥
भिक्षाटन करके, खग जैसा जीवन भले बिताता है।
किंतु कृष्ण की लीलाओं के रस को छोड़ न पाता है॥ १८॥

गान व्याध का सुनें हिरणियां, फँस जैसे मारी जायें।
कपट भरी बातों में फँस कर मारी गयीं गोपिकायें॥
कर स्मरण कृष्ण का नख-स्पर्श, कामनाएं उभरें।
कोई अन्य बात कर भंवरे! बंद कृष्ण की बात करें॥ १९॥

तुम प्रियतम के सखा, वहां तक जाकर फिर वापस आये।
माननीय हो, प्रिय हो, हमसे मांगो जो मन को भाये॥
तुम लेने आये हो, लेकिन हम कैसे विश्वास करें।
उनके वक्षस्थल पर तो पत्नी पद्मा सदा निवास करें॥ २०॥

मथुरा नगरी में पाते हैं, आर्यपुत्र सुख-सुविधाएं।
क्या उनको अपना घर, अपने स्वजन, न गोप याद आएं॥
क्या करते हैं बात कभी, क्या आतीं याद सेविकाएं।
होगा कभी कि अगर-गंध-वाला कर हम सिर पर पाएं॥ २१॥

बोले शुक - ललनाओं को प्रभु दर्शन का उत्सुक पाया।
तब प्रभु का संदेश दिया उद्धव ने, खुद भी समझाया॥ २२॥

उद्धव बोले - पूजनीय हो जग के लिए गोपिकाओ।
किया समर्पित प्रभु को मन, जीवन में सार्थकता पाओ॥ २३॥

दान, होम, व्रत, जप, तप, संयम, अध्ययन की विधि अपनाएं।
साधक इन्हीं साधनों को साधें तब, श्रेष्ठ भक्ति पाएं॥ २४॥

भाग्यवान हो, पुण्यकीर्ति प्रभु के प्रति सहज भक्ति पाई।
इसको पाने में ऋषियों-मुनियों को होती कठिनाई॥ २५॥

गेह, देह, पति, पुत्र, स्वजन, तुमने सब का परित्याग किया।
किया कृष्ण का वरण, कृष्ण से ही केवल अनुराग किया॥ २६॥

प्रभु-वियोग में तुम्हें कृष्ण-मय लगतीं है चीजें सारी।
मैंने देखा स्वयं तुम्हारी, मुझ पर यही कृपा भारी॥ २७॥

मैं हूं गुप्त-दूत प्रभु का, संदेश उन्हीं का लाया हूँ।
जिसकी तुम्हें प्रतीक्षा है, मैं वही सुनाने आया हूँ॥ २८॥

कहा कृष्ण ने आत्म-रूप हूँ, समझो मेरी व्यापकता।
मैं रहता हूँ भीतर, तुमसे पृथक नहीं मैं हो सकता॥
पंचभूत-मन-प्राण-इंद्रियों का मैं आश्रय-दाता हूं।
पंचभूत से बनी वस्तुओं में, मैं खुद को पाता हूँ॥ २९॥

अपनी माया के माध्यम से, मैं ही विविध रूप धरता।
मैं ही सबको रचता, पालन करता, फिर विनाश करता॥ ३०॥

ज्ञान-रूप आत्मा शुद्ध है, गुण से रहती सदा परे।
माया की वृत्तियां बदलतीं हैं, वह रूप अनेक धरे॥
सुप्त, स्वप्न, जाग्रत होतीं, माया की तीन अवस्थाएं।
तेजस, प्राज्ञ, विश्व रूपों में वे इसके दर्शन पाये॥ ३१॥

विषय इन्द्रियों के मिथ्या हैं, जैसे झूठ स्वप्न होता।
विषयों में हो भ्रमित जीव, अपना सारा जीवन खोता॥
जब प्राणी के द्वारा, मन को, इन्द्रिय को रोका जाता।
जगत स्वप्नवत है जब जाने, तब जुड़ता मुझसे नाता॥ ३२॥

योग, त्याग, तप, सत्य, संयमन कर योगी मुझको पायें।
जैसे विविध मार्ग से बह, सागर तक जातीं सरितायें॥ ३३॥

मैं रहता हूँ दूर ताकि तुम मेरा ध्यान नितान्त करो।
अनुभव करो निकटता मेरी, अपने मन को शान्त करो॥ ३४॥

यदि प्रेमी हो पास, प्रेम में रहती नहीं निरंतरता।
अगर दूर हो प्रेमी तो वह मन में सदा वास करता॥ ३५॥

चित्त-वृत्तियों को तज कर जब मुझमें ध्यान लगाओगी।
मेरा जब स्मरण करोगी, मेरी ही हो जाओगी॥ ३६॥

रोकीं गईं रासक्रीड़ा के समय गोपियां बहुतेरी।
उन सबने मुझको ही पाया, सबको मिली भक्ति मेरी॥ ३७॥

बोले शुक - संदेश प्राप्त कर आनंदित थीं ललनाएं।
उद्धव से सप्रेम बोलीं - कर याद कृष्ण की लीलाएं॥ ३८॥

कहा गोपियों ने पीड़ित थे, जिससे यदुवंशी सारे।
मारा गया कंस पापी, अनुयायी गए सभी मारे॥
प्रभु के बंधु-बांधवों की हो गई पूर्ण सब इच्छाएं।
प्रियतम भी अब बंधु-बांधवों में रहने का सुख पाएं॥ ३९॥

जैसा प्रेम, प्रेम के बदले, पातीं थी ब्रज-बालाएं।
मथुरा की ललनाएं, क्या वैसा पातीं हैं - बतलाएं॥ ४०॥

सखी दूसरी बोली - रति के विशेषज्ञ वे कहलाते।
कोई प्रेम करे तो वे फिर खुद को नहीं रोक पाते॥ ४१॥

बोली एक - गोष्ठियों में जब घेरें पुर की ललनाएं।
कभी कथांतर में क्या उनको हम ग्वालिनें याद आएं॥ ४२॥

क्या आतीं है याद उन्हें, वे रातें इस वृन्दावन कीं।
मंडल बना नाचते थे जब, बातें करते थे मन कीं॥
होतीं थीं ज्योत्स्ना प्रकाशित, कुंद-कुमुद के पुष्प खिले।
उनके साथ विहार-विविध करने के अवसर हमें मिले॥
नूपुर की रुनझुन के स्वर पर हम उनकी लीला गातीं।
उन्हें कदाचित वे विभिन्न क्रीड़ाएं याद नहीं आतीं॥ ४३॥

वन को करता हरा इन्द्र ज्यों, विरह-अग्नि शीतल करने।
क्या आयेंगे कृष्ण हमारे सिर पर कृपा-हस्त धरने॥ ४४॥

बोली सखी अन्य - पाया है राज्य, शत्रुओं को मारा।
तब से उनका सुहृद बन गया मथुरा सारा का सारा॥
अब वे किसी राज्य-कन्या से कर विवाह सुख पायेंगे।
हम गंवारिनों से मिलने, वे क्यों वृन्दावन आयेंगे॥ ४५॥

एक सखी बोली - श्रीपति हैं, उनमें नहीं कामनाएं।
उनके लिए बराबर, राजकुमारी या ब्रज-बालाएं॥ ४६॥

थी वेश्या पिंगला किंतु उसने दी सुख की परिभाषा।
सुख है सबसे बड़ा, किसी से मत रखना कोई आशा॥
हमें ज्ञात है किंतु नहीं आशा छोड़ेगा मन अपना।
उनके आने की आशा ही तो है अब जीवन अपना॥ ४७॥

हम उनको कैसे छोड़ें, जिनका यश साधु-संत गायें।
उनकी इच्छा नहीं, किंतु पद्मा, पद छोड़ नहीं पायें॥ ४८॥

यहीं नदी-वन-शैल, जहां बल-कृष्ण चराते थे गायें।
उनकी वंशी धुन कानों में गूंजे, भुला नहीं पायें॥ ४९॥

चरण-चिन्ह दिखते हैं धरती पर, हम जहां कहीं जायें।
भूल नहीं पायें, स्मरण निरंतर नंदलाल आयें॥५०॥

सुन्दर चाल, चारु चितवन, मुस्कान मधुर सबको भाये।
वाणी मधुर, चुराये मन को, कैसे कोई बिसराये॥५१॥

रमानाथ हे नाथ, आप ब्रजनाथ, हमारे दुखहर्ता।
दुख-सागर में डूबा गोकुल, सदा राह देखा करता॥५२॥

शुक बोले - विरहाग्नि शांत हो गई गोपियों की सारी।
लाये थे संदेश कृष्ण का, थीं उद्धव की आभारी॥
हुईं कृष्ण-मय बालाएं दिखते उनको प्रभु जन-जन में।
उद्धव का सत्कार बढ़ा, सब करतीं थीं आदर मन में॥५३॥

गोकुल में रहकर उद्धव नित गाते प्रभु की लीलाएं।
खुद आनंदित हों, ब्रजवासी भी आनंदित हो जायें॥५४॥

जितने दिन थे उद्धव ब्रज में, नित गाते थे गीत नए।
ब्रज के लोगों को लगता था, ज्यों प्रभु क्षण भर पूर्व गए॥५५॥

उद्धव यमुना-तट, गोवर्धन, कुसुमाच्छादित वन जाते।
क्या क्रीड़ाएं कहां कृष्ण ने कीं थीं, सुनकर सुख पाते॥५६॥

देख गोपियों की प्रभु में तन्मयता, प्रभु में खो जाना।
किया प्रणाम उन्हें उद्धव ने, गाये कृष्ण-चरित नाना॥५७॥

हुईं कृष्ण-मय ललनाएं, जीवन को मिली सार्थकता।
ऋषियों-मुनियों द्वारा भी, यह भाव न पाया जा सकता॥
कृष्ण-कथा-रस अगर न पाया, जो पीतीं ब्रज-बालायें।
होगा व्यर्थ अगर सौ कल्पों तक ब्रह्मा का पद पायें॥५८॥

कहां ज्ञान, आचार-हीन, वन की गंवार ब्रज-बालायें।
कहां कृष्ण परमेश्वर, इतना प्रेम, कृष्ण-मय हो जायें॥
अनजाने अमृत पीने से, ज्यों अमरत्व प्राप्त होता।
अनजाने प्रभु को भजने से, भव-बंधन समाप्त होता॥५९॥

रासोत्सव के समय, गले में इनके कृष्ण बांह डाले।
गोपिकाओं ने जो प्रसाद पाया, है कठिन अन्य पा ले॥
रहें वक्ष पर किंतु नहीं, ऐसा प्रसाद कमला पायें।
इस सुख से वंचित हैं, कमल-गंधवाली सुर-ललनायें॥६०॥

क्या अच्छा हो मैं बन जाऊं, लता, गुल्म, झाड़ी ब्रज में।
स्नान करूंगा नित्य इन्हीं ब्रज-बालाओं की पद रज में॥
तज कर स्वजन, आर्य मर्यादा, सखियों ने वह पद पाया।
प्रभु के जिस पद का रहस्य, श्रुतियों को समझ नहीं आया॥६१॥

चरण-कमल, जो नित्य स्वयं कमला द्वारा पूजे जाते।
पूर्ण-काम योगीजन जिनका चिंतन करके सुख पाते॥
प्रभु के साथ रास करके जब थक जायें ब्रज-बालायें।
प्रभु के वही चरण वक्षस्थल में रख शीतलता पायें॥६२॥

चरण-धूल का वंदन करता हूँ, हैं पूज्य गोपिकाएं।
तीन लोक होते पवित्र, जब वे प्रभु की लीला गाएं॥६३॥

बोले शुक - उद्धव जब नंद-यशोदा से अनुमति पाये।
रथ पर चढ़े बिदा करने, गोपियां और ग्वाले आये॥
जैसे ही रथ चला नंद बाबा आये गोपों को ले।
भेंट किए उपहार और आंखों में आंसू भर बोले॥६५॥

इच्छा है, वृत्तियां कृष्ण के चरण-कमल में लगीं रहें।
देह करे उनकी सेवा, वाणी से उनका नाम कहें॥ ६६॥

पुनर्जन्म यदि मिले, योनि जो कर्मों के कारण पायें।
मन में रहें कृष्ण परमेश्वर, उनके ही चरित्र गायें॥ ६७॥

नंद आदि गोपों के भक्ति-भाव उद्धव को अति भाये।
फिर ब्रज से चल कर, प्रभु के द्वारा रक्षित मथुरा आये॥ ६८॥

प्रभु को कर प्रणाम, उद्धव ने ब्रज के अनुभव बतलाये।
परम-प्रेम का चरम, भक्ति का भी उद्रेक देख आये॥
उग्रसेन, वसुदेव, कृष्ण, बल को जो भेंटें थे लाये।
उद्धव ने उपहार यथा-विधि, यथा-योग्य तक पहुँचाये॥ ६९॥

अड़तालीसवां अध्याय

श्रीकृष्ण का कुब्जा और अक्रूर के घर जाना

बोले शुक - सर्वात्म, सर्वदर्शी, कुब्जा के घर पहुँचे।
कामतप्त सैरन्ध्री से मिलने को परमेश्वर पहुंचे॥ १॥

घर में थी बहुमूल्य वस्तुएं, घर भी था वैभवशाली।
संग्रहीत थी सामग्री, कामोद्दीपन करने वाली॥
आसन-शयन व्यवस्था, मोती की झालरें, पताकाएं।
सजे हुए थे दीप, धूप, चंदन, फूलों की मालाएं॥ २॥

प्रभु को घर में देख उठी कुब्जा आसन से घबराई।
ले सखियों को साथ, कृष्ण का स्वागत करने को आई॥
कर स्वागत, सम्मान सहित, उत्तम आसन पर बैठाया।
प्रभु की पूजा करने का सैरन्ध्री ने अवसर पाया॥ ३॥

उद्धव भी थे साथ उन्हें कुब्जा ने सादर बैठाया।
उद्धव बैठ गए धरती पर, खुद को इसी योग्य पाया॥
कुब्जा की बहुमूल्य सेज पर बैठ गए लीलाधारी।
सभी तरह के लोकाचारों की थी उन्हें जानकारी॥ ४॥

कुब्जा ने कर स्नान, लगाया अंगराग, श्रृंगार किया।
वस्त्राभूषण पहने खुद को, मिलने को तैयार किया॥
इत्र लगा, ताम्बूल चबाती, शर्मायी फिर मुस्कायी।
कामुक हावभाव दिखलाते हुए निकट प्रभु के आयी॥ ५॥

अपने पास बिठाया प्रभु ने पकड़ा कर कंगन वाला।
कर के कुछ क्रीड़ाएं, कुब्जा का सब कर्ज चुका डाला॥
किया एक शुभ कर्म, कृष्ण को अंगराग का दान किया।
प्रभु ने कुब्जा के घर जाकर उसको प्रेम प्रदान किया॥ ६॥

प्रभु के चरणों को नेत्रों पर लगा, वक्ष से चिपकाई।
चरणों की पाकर सुगंध, कुब्जा ने शीतलता पाई॥
कुब्जा के संतप्त हृदय में थी प्रज्वलित विरह ज्वाला।
प्रभु को आलिंगन में कसकर, शांत हृदय को कर डाला॥ ७॥

अंगराग अर्पण कर कुब्जा ने परमेश्वर को पाया।
मोक्ष-प्रदाता से अभागिनी को मांगना नहीं आया॥ ८॥

उसने मांगा-नाथ, यहीं रहकर कुछ दिन करिये क्रीड़ा।
सह न सकूंगी बिना आपके रहने की, दुस्सह पीड़ा॥ ९॥

पूजा की स्वीकार, दिए सर्वेश्वर ने वर मन भाये।
परम-भक्त उद्धव को लेकर प्रभु निज गृह वापस आये॥ १०॥

सर्वेश्वर प्रभु को प्रसन्न करना आसान नहीं होता।
विषयों का सुख मांगे, उस जैसा नादान नहीं होता॥ ११॥

इच्छुक थे अक्रूर, उन्हें देना थी कुछ जिम्मेदारी।
बल-उद्धव को साथ लिया, उनके घर पहुंचे गिरधारी॥ १२॥

दिखे दूर से आते प्रभु, अक्रूर दौड़ बाहर आये।
हृदयेश्वर को हृदय लगाया और हृदय में हरषाये॥ १३॥

अभिवादन सब का स्वीकारा, किया सभी का अभिनंदन।
आसन दिया सभी को, प्रभु का किया गया पूजन-वंदन॥ १४॥

राजन! प्रभु के चरण पखारे, चरणोदक निज शीश धरे।
दिए भेंट में वस्त्राभूषण, थे अक्रूर उमंग भरे॥ १५॥

कर प्रणाम, गोदी में कृष्ण और बल के चरणों को ले।
चरण दबाते हुए विनत अक्रूर नम्रता से बोले॥ १६॥

अच्छा हुआ कंस को प्रभु ने अनुयायियों सहित मारा।
हुआ सुरक्षित और हुआ समृद्धिवान यदुकुल सारा॥ १७॥

दोनों आप जगत के कारण, जगत-रूप, जग के स्वामी।
कारण, कार्य, वस्तुएं सारी सदा आपकी अनुगामी॥ १८॥

रचती शक्ति आपकी जग को, आप जगत के निर्माता।
श्रव्य-दृश्य प्रत्येक वस्तु में प्रभु का रूप नजर आता॥ १९॥

पंचभूत इस विश्व-चराचर में योनियां रचें नाना।
किंतु रहा करता है सब में प्रभु का ही ताना-बाना॥ २०॥

सत्व-रजस-तम का उपयोग किया जाता प्रभु के द्वारा।
रचकर, पालन किया, समाप्त किया जाता है जग सारा॥
किंतु आपको तीन गुणों के बंधन नहीं बांध पाते।
ज्ञान न बँधता कभी, आप तो ज्ञानस्वरूप कहे जाते॥ २१॥

आत्म-रूप हैं आप, देह को करते नहीं आप धारण।
जन्म-मृत्यु के बंधन में प्रभु बँधते नहीं इसी कारण॥
हैं असीम प्रभु आप, मोक्ष-बंधन की होती सीमाएं।
जो बांधना चाहते प्रभु को वे अविवेकी कहलाएं॥ २२॥

जब-जब दुष्टों द्वारा संतों को क्षति पहुंचाई जाये।
करने को कल्याण जगत का, प्रभु इस धरती पर आये॥
वेद-विहित सन्मार्ग सनातन को, प्रभु आप प्रकट करते।
शुद्ध सत्वमय देह ग्रहण करते, साकार रूप धरते॥ २३॥

जन्में है वसुदेव-देव के घर में प्रभु अंतर्यामी।
हैं बलराम आपके ही अंशावतार, हैं अनुगामी।
सौ-सौ अक्षौहिणी सैन्यबल वाले असुर नष्ट होंगे।
यश होगा यदुकुल का, धरती के सब दूर कष्ट होंगे॥ २४॥

सब नृप, देव, पितृ, भूतों में प्रभु ही मूर्तिमान रहते।
जग के गुरु हैं आप, आप को जग का परम-पिता कहते॥
चरणोदक गंगा बन तीन लोक में पावनता लाता।
आप पधारे मेरे घर, इसको सौभाग्य कहा जाता॥ २५॥

छोटी सी सेवा से हो जाते कृतज्ञ हरि हितकारी।
भक्तों के प्रिय आप सत्य करते अपनी बातें सारी॥
प्रेमी भक्तों की करते हैं प्रभु पूरी अभिलाषाएं।
आत्मदान देने वाले को तज कर भक्त कहां जाएं॥ २६॥

रूप, योगियों और देवताओं को समझ नहीं आया।
है सौभाग्य, आपका मैंने साक्षात दर्शन पाया॥
देह, गेह, धन, स्वजन, पुत्र, पत्नी के हैं गाढ़े बंधन।
है माया आपकी इसे काटिये, कृपा कर यदुनंदन॥ २७॥

बोले श्रीशुक - जब अक्रूर कर चुके सब पूजा-वंदन।
मोहित करते हुए मधुर वाणी में बोले यदुनंदन॥ २८॥

प्रभु बोले - चाचाजी हैं गुरु आप और हम बालक हैं।
परम हितैषी, हितरक्षक, हम पर कृपालु हैं, पालक हैं॥ २९॥

आप संत हैं, कृपा आपकी सेवक का कल्याण करे।
संत रहें निस्वार्थ, देवता तो होते हैं स्वार्थ भरे॥ ३०॥

मूर्ति, तीर्थ की कई दिनों सेवा से पावनता पाते।
किंतु सन्त के तो केवल दर्शन से पावन हो जाते॥ ३१॥

आप हमारे परम-हितैषी, श्रेष्ठ सुहृद भी कहलायें।
करने ज्ञात पांडवों का शुभ, आप हस्तिनापुर जायें॥ ३२॥

पाण्डु-निधन के बाद उन्हें, धृतराष्ट्र हस्तिनापुर लाये।
मां कुंती के साथ वहां रहते, पर दुख रहते छाये॥ ३३॥

अंधे हैं धृतराष्ट्र, दुष्ट सुत पर है उनकी निर्भरता।
पुत्रों-सा व्यवहार, पाण्डु-पुत्रों को नहीं मिला करता॥ ३४॥

उनकी अच्छी-बुरी दशा को करिये ज्ञात वहां जाकर।
सुख देने का यत्न करूंगा, तुमसे समाचार पाकर॥ ३५॥

दिए उन्हें निर्देश, शीघ्र जाने की करिये तैयारी।
लौटे अपने भवन, साथ ले बल-उद्धव को गिरधारी॥ ३६॥

उनचासवां अध्याय

अक्रूरजी का हस्तिनापुर जाना

बोले शुक - आज्ञा पाकर अक्रूर हस्तिनापुर आये।
कुरुवंशी नर-पतियों की यश-गाथा यत्र-तत्र पाये॥ १॥

मिले नृपति धृतराष्ट्र, पितामह-भीष्म, विदुर जैसे ज्ञानी।
मिले द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, मिला सुयोधन अभिमानी॥

बाल्हीक सुत सोमदत्त, राधा-सुत जैसे शूर मिले।
कुंती और पाण्डवों से फिर, प्रेम सहित अक्रूर मिले॥ २॥

जब अक्रूर मिल चुके सबसे, सबका कुशल क्षेम पूछा।
मथुरा के स्वजनों का समाचार सबने सप्रेम पूछा॥ ३१॥

राजा का व्यवहार जानने, कई माह अक्रूर रहे।
थे कमजोर प्रशासक, दुष्टों के हाथों मजबूर रहे॥ ४॥

देख पाण्डवों का प्रभाव, बल, कौशल, प्रेम प्रजा-जन पर।
दुर्भावना बढ़ी, ईर्ष्या-कटुता छाई दुर्योधन पर॥ ५॥

कुंती और विदुर ने बतलाया कैसे विष दिया गया।
करता है दुर्योधन उन पर हर दिन अत्याचार नया॥ ६॥

जब अक्रूर बहिन कुंती से मिलने, उनके घर आये।
लगी पूछने पास बैठकर, आंखों में आंसू छाये॥ ७॥

क्या करते हैं याद, पिता-माता, प्रिय बहिन और भाई।
भ्रातृ-पुत्र, भावज, सखियों को क्या उनकी स्मृति आई॥ ८॥

सुनते हैं शरणागत वत्सल हैं श्रीकृष्ण और बल भी।
बुआ, बुआ के बेटों को क्या, करते हैं वे याद कभी॥ ९॥

मेरी स्थिति वही, भेड़ियों में ज्यों हिरणी बेचारी।
क्या मेरे अनाथ पुत्रों को धीरज देंगे गिरधारी॥ १०॥

कुंती ने विनती की, प्रभु हैं वहीं, उन्हें आभास हुआ।
पुत्रों की रक्षा गोविंद करो, शरणागत हुई बुआ॥ ११॥

चरण तुम्हारे मोक्ष, मृत्यु-मय जगत समूचा है बंधन।
चरण-कमल का सिर्फ सहारा, शरण तुम्हारी यदुनंदन॥ १२॥

कृष्ण तुम्हें है नमन, शुद्ध परब्रह्म, नमन लीलाधारी।
योगेश्वर है शरण तुम्हारी, बुआ तुम्हारी दुखियारी॥ १३॥

बोले शुक - राजन! कुंती को सारे स्वजन याद आये।
जब स्मरण कृष्ण आये, तो आंखों में आंसू छाये॥ १४॥

विदुर और अक्रूर हमेशा सुख-दुख को जो सम मानें।
धीरज देने लगे, लगे दोनों कुंती को समझानें॥
पुत्रों की उत्पत्ति हुई है जैसे, ध्यान रखो मन में।
करने नाश पाप का, कुंती पुत्र तुम्हारे हैं जन्में॥ १५॥

राजा का व्यवहार पाण्डु-पुत्रों के प्रति असमान रहा।
तब अक्रूर सभा में पहुंचे, राजा से संदेश कहा॥ १६॥

कीर्ति बढ़ाने की कुरुकुल की है नृप की जिम्मेदारी।
हुए दिवंगत पांडु, तब हुए सिंहासन के अधिकारी॥ १७॥

रखें प्रसन्न प्रजा को, धर्म-धरा का राजन अपनाएं।
स्वजनों से व्यवहार रखें सम, यश पायें, सद्गति पाएं॥ १८॥

इसीलिए पुत्रों जैसा व्यवहार पाण्डवों से करिये।
पायेंगे अन्यथा आप अपयश, कुछ रौरव से डरिये॥ १९॥

सदा नहीं रहता है कोई, साथ किसी के कहीं कभी।
यह शरीर भी साथ छोड़ता, लोग छोड़ते साथ सभी॥ २०॥

जीव अकेला ही आता है, और अकेला जाता है।
अच्छे और बुरे कर्मों का फल एकाकी पाता है॥ २१॥

अल्प-बुद्धि वाले का अर्जित धन सब संबंधी खाते।
जैसे जल-जीवों का एकत्रित जल, जलचर पी जाते॥ २२॥

अपना मान, जीव करके अधर्म, पालन करता जिनका।
प्राण, पुत्र, धन से होता, उसका संबंध चार दिन का॥ २३॥

नहीं पाप के भागी, जिनके कारण पाप किया जाता।
जो करता है पाप, पाप का केवल वही दण्ड पाता॥ २४॥

राजन! मनोराज्य है, माया है संसार विचार करें।
ममता छोड़, दिखायें क्षमता, समता का व्यवहार करें॥ २५॥

बोल उठे धृतराष्ट्र - कथन है मेरा हित करने वाला।
पर अतृप्त हूं, जैसे रहता, पा अमृत मरने वाला॥ २६॥

पुत्र-प्रेम के कारण मन में शिक्षा नहीं ठहरती है।
जैसे विद्युत पर्वत को क्षण भर आलोकित करती है॥ २७॥

सुनते हैं, जन्में हैं प्रभु, यदुकुल में भूमि-भार हरने।
कौन करे परिवर्तन, जिसको स्वयं रचा परमेश्वर ने॥ २८॥

मार्ग जगत का है अचिन्त्य, कब इसको कौन समझ पाया।
प्रभु प्रविष्ठ हो करें विभाजन, रचती सृष्टि योगमाया॥
चलता है बेरोक-टोक, संसार चक्र जिनके कारण।
उनको नमस्कार है, जिनका है ऐश्वर्य असाधारण॥ २९॥

शुक बोले - धृतराष्ट्र जानकर भी सन्मार्ग न अपनाये।
स्वजनों से ले बिदा शीघ्र, मथुरा अक्रूर लौट आये॥ ३०॥

करते थे व्यवहार पाण्डवों से धृतराष्ट्र भेद वाला।
राम-कृष्ण से सब सच-सच अक्रूर तात ने कह डाला॥ ३१॥

पचासवां अध्याय

जरासंध से युद्ध और द्वारकापुरी का निर्माण

शुक बोले - नृप! अस्ति-प्राप्ति पत्नियां कंस की थीं सुंदर।
हुआ कंस वध, दुखी हुईं, तज मथुरा, गईं पिता के घर॥ १॥

उनके पिता मगध के राजा, जरासंध थे बलशाली।
उनको दोनों ने विधवा होने की कथा सुना डाली॥ २॥

जरासंध हो गया दुखी, फिर आया उसे क्रोध भारी।
यादव-हीन धरा करने, की महासमर की तैयारी॥ ३॥

तेइस अक्षौहिणी सैन्य-बल लाकर मथुरा को घेरा।
घेर राजधानी यदुकुल की, सेना डाले थी डेरा॥ ४॥

प्रभु ने देखा जरासंध ले सेना का समुद्र आया।
घिर जाने से स्वजनों को भी प्रभु ने डरा हुआ पाया॥ ५॥

प्रभु ने सोचा, किया उन्होंने क्यों मानव स्वरूप धारण।
क्या होगा उपयुक्त, परिस्थिति है अत्यंत असाधारण॥ ६॥

प्रभु ने सोचा भार-भूमि का एकत्रित होकर आया।
जरासंध खुद नृपति, रथी, हाथी, घोड़े, पैदल लाया॥ ७॥

सेना का वध करके जरासंध को छोड़ दिया जाये।
ताकि इकट्ठा कर असुरों को, फिर लेकर मथुरा आये॥ ८॥

मैं अवतरित हुआ हूँ, धरती का यह बढ़ा भार हरने।
साधु, सज्जनों की रक्षा करने, दुष्टों का वध करने॥ ९॥

रक्षित हो सद्धर्म, पाप का बढ़ना रुके इसी कारण।
इसी प्रयोजन से करता रहता हूँ मैं शरीर धारण॥ १०॥

सोच रहे थे प्रभु, नभ से देदीप्यमान दो रथ उतरे।
चला रहे थे श्रेष्ठ सारथी, थे रथ में शस्त्रास्त्र भरे॥ ११॥

प्रभु के आयुध दिव्य प्रकट हो गए वहां विस्मयकारी।
शस्त्रों को देखा तो बलदाऊ से बोले गिरधारी॥ १२॥

यदुकुल पर संकट आया, हम करते जिसकी रखवाली।
रथ, आयुध, हल-मूसल आ पहुँचे हैं भाई बलशाली॥ १३॥

शत्रु सैन्य संहारें, हमने यदु-रक्षा का भार लिया।
करने को कल्याण साधुओं का हमने अवतार लिया॥ १४॥

तेइस अक्षौहिणी सैन्य का भू से भार मिटाने को।
कवच पहन, रथ चढ़े कृष्ण-बल, पुर से बाहर जाने को॥ १५॥

छोटी सी सेना पीछे थी, पर आयुध थे दिव्य सभी।
दारुक रथ को बाहर लाया, फूंका प्रभु ने शंख तभी॥ १६॥

शंख-नाद सुन हृदय, शत्रु सेना का भय से थर्राया।
वाणी के बाणों को जरासंध ने प्रभु पर बरसाया॥ १७॥

मुझे शर्म आती लड़ने में, तू बालक बेचारा है।
हट जा कृष्ण सामने से, तू मामा का हत्यारा है॥ १८॥

बल! रण के मृतकों को मिलता स्वर्ग अगर मत हो तेरा।
तू लड़, क्षत-विक्षत तन छोड़ स्वर्ग जा, या वध कर मेरा॥ १९॥

प्रभु बोले - पौरुष दिखला, बक-बक से जीत नहीं होगी।
पूर्व मृत्यु के बक-बक करता सन्निपात वाला रोगी॥ २०॥

शुक बोले - ढंक गए कृष्ण-बल पूरी तरह सैन्य बल से।
वायु धूम्र से अग्नि ढांकती जैसे रवि को बादल से॥
घेर लिया दोनों को, जरासंध की थी अपार सेना।
बंद हुआ, रथ, अश्व, सारथी, ध्वज का दिखलाई देना॥ २१॥

अट्टालिका-गोपुरों पर चढ़ युद्ध देखती ललनायें।
राम-कृष्ण के ताल-गरुड़ चिन्हित ध्वज रण में लहरायें॥
दिखना बंद हुईं जैसे ही प्रभु की ध्वजा-पताकाएं।
शोकित होकर ललनाएं, घबरायें, मूर्छित हो जाएं॥ २२॥

बरस रहे थे तीर शत्रुओं के, जैसे बरसे पानी।
प्रभु ने देखा पीड़ित हैं, यदु-सेना के सब सेनानी॥
तब प्रभु ने सारंग धनुष से की टंकार प्रलयकारी।
सभी दानवों-देवों द्वारा पूजित धनुष चमत्कारी॥ २३॥

तरकश से ले बाण, धनुष पर रख, डोरी खीचें क्षण में।
लगे बरसने प्रभु के बाणों के समूह समरांगण में॥
घूम रहा था धनुष चक्र जैसा अनगिनत तीर छोड़े।
मरने लगे शत्रु के सैनिक, हाथी, रथी और घोड़े॥ २४॥

कटती रथ की ध्वजा, सारथी, रथी, अश्व जाते मारे।
पड़े हुए थे यहां-वहां बेकार हो गए रथ सारे॥
अश्वों के सिर कटे, लगे मरने सिर फटने से हाथी।
क्षत-विक्षत हो गई, शत्रु की जितनी पैदल सेना थी॥ २५॥

हलधारी बल ने की पूरी, कोर-कसर जो रही-सही।
जिधर गए बलराम, उधर ही, शत्रु रक्त की नदी बही॥
शोणित-सरिता में गज-टापू, घोड़े ज्यों घड़ियाल दिखें।
बाँहें दिखतीं सर्पों जैसी, कच्छप जैसे भाल दिखें॥
हाथ मछलियों जैसे, जल की काई जैसे बाल दिखें।
धनुष तरंगों जैसे दिखते, और भंवर-सी ढाल दिखें॥ २७॥

दिखते थे शस्त्रास्त्र बह रहीं हों जैसे तरु-शाखाएं।
रोड़े-कंकड़ जैसे मणिमय आभूषण बहते जाएं॥
देख-देख कर नदी रक्त की, कायर पुरुष डर रहे थे।
लेकिन यही दृश्य वीरों में साहस नया भर रहे थे॥ २८॥

राजन! जरासंध की सेना को था कठिन जीत पाना।
जैसे दुर्गम सागर से होता है कठिन पार जाना॥
किंतु कृष्ण-बल ने मिलकर सेना को किया धराशायी।
जगदीश्वर को ऐसी क्रीड़ा में होती क्या कठिनाई॥ २९॥

क्या अचरज यदि प्रभु ने रण में इतने वीर मार डाले।
जग को रचते, पालन करते, वही प्रलय करने वाले॥
उनके गुण अनंत हैं, पर मानव का किया वेश धारण।
प्रभु की इस रण लीला का, वर्णन भी किया इसी कारण॥ ३०॥

जरासंध को पकड़ा बल ने, वही शेष था बेचारा।
पकड़ा जाये थका हुआ सिंह, जैसे सिंह के ही द्वारा॥ ३१॥

वरुण-पाश में बंधा हुआ था, प्रभु ने उसे नहीं मारा।
सोचा यह दुष्टों को लेकर फिर आयेगा दोबारा॥ ३२॥

मुक्त हुआ पर लज्जित था, तप का विचार मन में आया।
जरासंध को उसके साथी राजाओं ने समझाया॥ ३३॥

नृप बोले - यह जीत भाग्यवश, तुच्छ-यादवों ने पा ली।
अबकी बार विजय निश्चित है, नृपति आप हैं बलशाली॥ ३४॥

राजन! जरासंध को याद रही उस पर की गई दया।
था उदास इसलिए मगध-पति सेना-रहित स्वदेश गया॥ ३५॥

नष्ट हुई रिपु-सेना, यदु-सेना पर आंच नहीं आई।
देवों ने बरसाये नंदन-सुमन और स्तुति गाई॥ ३६॥

जीत मगध की सेना को, जब प्रभु मथुरा नगरी आये।
आनंदित थे सभी, सूत-बंदी-जन विजय गीत गाये॥ ३७॥

प्रभु ने किया प्रवेश नगर में, थे पुरवासी सजे-धजे।
शंख, नगाड़े, भेरी, वीणा, वंशी और मृदंग बजे॥ ३८॥

चहल-पहल सिंचित गलियों में, शोभित ध्वजा-पताकाएं।
बंधे हुए थे वंदनवारे, ब्राह्मण वेद-मंत्र गायें॥ ३९॥

प्रेम और उत्कंठा से प्रभु को निहारती ललनाएं।
अंकुर, दही, पुष्प-मालाएं, प्रभु के ऊपर बरसायें॥ ४०॥

युद्धभूमि से प्रभु अपार धन, मणिमय आभूषण लाये।
राजा उग्रसेन की सेवा में सारा धन पहुँचाये॥ ४१॥

तेइस अक्षौहिणी सैन्य-बल, सत्रह बार गया लाया।
जरासंध का असुरों का दल, यदुसेना से टकराया॥ ४२॥

कर सेना का नाश मगधपति को बस छोड़ दिया जाता।
इसी तरह हर बार मगध से फिर सेना लेकर आता॥ ४३॥

अट्ठारहवीं बार मगधपति कर पाता आक्रमण बड़ा।
नारदजी का भेजा, कालयवन मथुरा के द्वार खड़ा॥ ४४॥

शेष नहीं था कोई धरती पर उससे लड़ने वाला।
तीन करोड़ म्लेच्छ सेना ले मथुरा पर घेरा डाला॥ ४५॥

किया विचार कृष्ण-बल ने कुछ नया उपाय किया जाये।
एक साथ मथुरा पर दो-दो बड़े-बड़े संकट आये॥ ४६॥

घेर लिया है कालयवन ने जो है बड़ा शक्तिशाली।
और मगध की सेना भी, कल-परसों तक आने वाली॥ ४७॥

कालयवन के लड़ने के दौरान मगधपति आयेगा।
स्वजनों को मारेगा और कैद करके ले जायेगा॥ ४८॥

होगा उचित दुर्ग अति-दुर्गम का तुरंत निर्माण करें।
स्वजन सुरक्षित हो जायें, फिर कालयवन के प्राण हरें॥ ४९॥

कर मंत्रणा, सिंधु में दुर्गम, दुर्ग कृष्ण ने बनवाया।
बारह योजन बड़ा नगर अद्‌भुत, अद्‌भुत प्रभु की माया॥ ५०॥

शिल्प निपुणता दर्शनीय थी, आकर्षक सिंह-द्वार बनें।
सड़कें, गलियां, चौराहे सब वास्तु-शास्त्र अनुसार बनें॥ ५१॥

अट्टालिका स्फटिक की, स्वर्णिम गोपुर शोभा पायें।
देवताओं के वृक्ष-लताएं, उद्यानों को महकायें॥ ५२॥

पीतल, चांदी के प्रकोष्ठ, मरकत मण्डित कोना-कोना।
स्वर्ण-अलंकृत कलश सजे, घर-घर में मढ़ा हुआ सोना॥ ५३॥

चारों वर्णों के लोगों के पृथक-पृथक आवास बनें।
बना मध्य में मंदिर, वहीं पास में राजनिवास बनें॥ ५४॥

परिजात तरु, सभा सुधर्मा, देवराज ने पहुँचाये।
मृत्यु लोक के धर्मों से, जो बैठे पूर्ण मुक्ति पाये॥ ५५॥

आठों निधि धनपति ने, हर सुर ने निज-निज विभूति भेजी।
दिए वरुण ने अश्व श्याम-कर्णी, जिन में मन की तेजी॥५६॥

राजन! प्रभु ने ही दी थीं, इन देवों को जो क्षमताएं।
वही सिद्धियां देवों द्वारा, प्रभु को अर्पित की जाएं॥५७॥

स्वजन और संबंधी-जन को लेकर गई योगमाया॥
नए नगर में पहुँचाया, कोई कुछ समझ नहीं पाया॥
बल रह गए नगर में, ताकि नगर की रक्षा की जाये।
पहन कमल की माला, शस्त्र छोड़कर प्रभु बाहर आये॥५८॥

इक्यावनवां अध्याय

कालयवन का भस्म होना और मुचुकुंद की कथा

शुक बोले - ज्यों चन्द्र उगे प्राची में, प्रभु बाहर आये।
दर्शनीय श्यामल तन, उस पर पीताम्बर शोभा पाये॥१॥

छाती पर श्रीवत्स चिन्ह, ग्रीवा में कौस्तुभ-मणि धारे।
लम्बी चार भुजायें, नयन नव-कमल जैसे रतनारे॥२॥

मधु-मुस्कान, मुदित मुख-मंडल, कानों में कुंडल झलकें।
छटा कपोलों की जो देखे, भूले झपकाना पलकें॥३॥

कालयवन ने सोचा, यह जो पुरुष अभी बाहर आया।
वैसा ही सुन्दर स्वरूप, जैसा नारद ने बतलाया॥
छाती पर श्रीवत्स, भुजायें चार, गले में वन-माला।
नेत्र कमल जैसे हैं, यह है वासुदेव नारद वाला॥४॥

कालयवन ने सोचा जब यह शस्त्र-हीन है, पैदल है।
मैं निःशस्त्र ही युद्ध करूंगा, देखूं तो कितना बल है॥५॥

कालयवन जैसे ही दौड़ा, प्रभु ने अपना मुख मोड़ा।
भाग चले विपरीत दिशा में लीलाधर ने रण छोड़ा॥
पकड़ न पाते योगी जिनको, ध्यान करें आंखें मीचे।
उन्हें पकड़ने दौड़ रहा था, कालयवन पीछे-पीछे॥६॥

कदम-कदम पर उसको लगता था, अब पकड़ा-अब पकड़ा।
प्रभु ले गए दूर गिरि पर, था जहां गुफा का द्वार बड़ा॥७॥

यदुवंशी के लिए पलायन अनुचित है, वह चिल्लाया।
किंतु पाप थे शेष, इसलिए प्रभु को पकड़ नहीं पाया॥८॥

प्रभु घुस गए कंदरा में, वह भी पीछे-पीछे आया।
क्रोधित हुआ, किसी को उसने जब अंदर सोते पाया॥९॥

उसे लगा पहले दौड़ाया, अब बन संत यहां सोया।
पद प्रहार कर दिया मूढ़ ने, क्रोधित हो, आपा खोया॥१०॥

बहुत दिनों से सोया था, वह पुरुष उठा ठोकर खाकर।
उसने आंखें खोली, देखा कालयवन को झुंझलाकर॥११॥

राजन! उसकी कालयवन पर ज्यों ही क्रोधित दृष्टि पड़ी।
जल कर राख हुई पापी की देह समूची उसी घड़ी॥१२॥

राजा ने पूछा - भगवन्, था कौन पुरुष, जो सोया था।
क्रुद्ध दृष्टि से जिसकी, कालयवन ने जीवन खोया था॥
नाम, वंश क्या, पिता कौन थे, इतनी शक्ति कहां पाई।
वहां गुफा में क्यों सोया था, निद्रा इतनी क्यों आई॥१३॥

बोले शुक - इक्ष्वाकु वंश के राजा हुए मान्धाता।
थे मुचुकुंद पुत्र उनके, उनको अतिवीर कहा जाता॥१४॥

एक समय असुरों से थे भयभीत देवगण जब भारी।
देवों ने उनको सौंपी सेनापति की जिम्मेदारी॥ १५॥

दिनों बाद जब कार्तिकेय ने सेनापति का पद पाया।
तब मुचुकुंद हुए सेवा-निवृत्त, सुरों ने यश गाया॥ १६॥

राज्य आपने छोड़ा ताकि सुरक्षित सुरगण हो जायें।
भोगों का परित्याग किया, छोड़ी सारी अभिलाषायें॥ १७॥

राजन! धरती पर रानियां, पुत्र, बांधव, मंत्री सारे।
बीता इतना काल, काल के हाथों गए सभी मारे॥ १८॥

परम-समर्थ काल अविनाशी, वश में रखे जीवधारी।
जैसे गोपालक के वश में रहतीं हैं गायें सारी॥ १९॥

मोक्ष छोड़ कर कुछ भी मांगें, पूरी होंगीं इच्छाएं।
हम न मोक्ष दे सकते वह तो केवल हरि ही दे पायें॥ २०॥

वर मांगा मुचुकुंद नृपति ने सोने का, थे अलसाये।
वर लेकर वे इसी कंदरा में थे सोने को आये॥ २१॥

देवताओं ने कहा आपको जो भी मूढ़ जगायेगा।
दृष्टि आपकी पड़ते ही तत्काल भस्म हो जायेगा॥ २२॥

कालयवन को भस्म कराने को थे कृष्ण यहां लाये।
कालयवन हो गया काल कवलित तब प्रभु बाहर आये॥ २३॥

पीताम्बरधारी, घनश्याम, श्याम-घन को नृप ने देखा।
कौस्तुभ मणि ग्रीवा में दमके, छाती पर स्वर्णिम रेखा॥ २४॥

लम्बी चार भुजायें थी, आजानु वैजयन्ती माला।
कानों में मकराकृति कुंडल, मुख, मन को हरने वाला॥ २५॥

ओंठों पर मुस्कान, चारू-चितवन में किंचित चंचलता।
तरुण अवस्था, मस्त चाल जैसे मदमाता सिंह चलता॥ २६॥

दिव्य तेज प्रभु का देखा, मुचुकुंद चतुर भी चकराये।
थे हतप्रभ, शंकित थे, सोचा प्रभु से ही पूछा जाये॥ २७॥

बोले नृप मुचुकुंद - आप हैं कौन, गुफा में क्यों आये।
कोमल चरण-कमल से कैसे, इन कांटों पर चल पाये॥ २८॥

तेज देखकर अग्निदेव-से लगें, या कि दिनमान लगें।
लोकपाल या लगें चन्द्रमा जैसे, इन्द्र समान लगें॥ २९॥

नाश तिमिर का हो जाता जिस जगह श्रेष्ठ दीपक जलता।
हरि हैं आप बताती है गह्वर में फैली उज्ज्वलता॥ ३०॥

यदि संभव हो मुझे बतायें जन्म, कर्म गोत्रादि सभी।
उत्कंठा है, इसके पहले, प्रभु को देखा नहीं कभी॥ ३१॥

मैं इक्ष्वाकु वंश का क्षत्रिय, मेरे पिता मान्धाता।
पुरुषश्रेष्ठ! मुझको मुचुकुंद नाम से है जाना जाता॥ ३२॥

सोया नहीं बहुत दिन तक, इन्द्रिय ने सारा बल खोया।
अभी किसी ने जगा दिया, मैं था निर्द्वंद्व यहां सोया॥ ३३॥

जल कर भस्म हुआ, उसके ही पाप यहां उसको लाये।
उसके कारण मैंने, अरि-मर्दन प्रभु के दर्शन पाये॥ ३४॥

हे तेजस्वी! तेज आपका मुझसे नहीं सहा जाता।
शक्ति खो गई है सारी, मैं कुछ भी नहीं देख पाता॥ ३५॥

जब राजा मुचुकुन्द कह चुके, निज मन की बातें सारी।
मेघ-गहन गंभीर गिरा में हँस कर बोले गिरधारी॥ ३६॥

प्रभु बोले हैं नाम हजारों, जन्म-कर्म भी हैं नाना।
हैं अनंत, इसलिए कठिन है, उनको गिनकर बतलाना॥ ३७॥

कई जन्म लेकर भू-रज कण की गिनती कर ली जाये।
लेकिन मेरे नाम, जन्म, गुण, कर्म न कोई गिन पाये॥ ३८॥

मेरे जन्म-कर्म को सनकादिक ऋषि-गण हर क्षण गाते।
लगातार गाते रहते हैं, लेकिन पार नहीं पाते॥ ३९॥

ब्रह्मा की विनती पर मैं, भू-भार मिटाने आता हूँ।
वर्तमान का सारा विवरण, राजन! तुम्हें बताता हूँ॥ ४०॥

राजन! मैं अवतरित हुआ यदुकुल में जो मुझको भाया ।
हूँ वसुदेव पुत्र, इस कारण, वासुदेव मैं कहलाया॥ ४१॥

कंस-प्रलंब संतद्रोही असुरों को मैंने ही मारा।
भस्म कराने तुमसे लाया गया यवन मेरे द्वारा॥ ४२॥

करने को कल्याण तुम्हारा, मैं गिरि गह्वर में आया।
तुम हो मेरे भक्त, सदा भक्तों ने मुझे निकट पाया॥ ४३॥

हे राजर्षि! मांग लो पूरी होंगीं सब अभिलाषाएं।
ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मेरे भक्त नहीं पाएं॥ ४४॥

बोले शुक - सुन बातें, नृप को गर्गाचार्य याद आए।
यदुकुल में अवतरण विष्णु का होगा, वे थे बतलाए॥
जान गए मुचुकुंद, सामने नारायण हैं स्वयं खड़े।
विनती करने लगे नृपति, प्रभु के चरणों में पड़े-पड़े॥ ४५॥

बोले नृपति - प्राणियों को मोहित करती प्रभु की माया।
लोग व्यर्थ के काम करें पर प्रभु का भजन नहीं गाया॥
दुख का मूल-स्त्रोत घर होता, वे उसमें ही सुख पाते।
माया के द्वारा ही सारे स्त्री-पुरुष ठगे जाते॥ ४६॥

मानव जन्म बहुत दुर्लभ है और बहुत है उपयोगी।
प्रभु-चरणों में ध्यान लगा तो प्रभु की कृपा प्राप्त होगी॥
किंतु मनुष्य विषय-भोगों के सुख में ऐसा घिरता है।
जैसे पशु पाने को कुछ तृण तुच्छ, कुएं में गिरता है॥ ४७॥

मैं राजा था राज्य-लक्ष्मी के मद में था मतवाला।
सोच रहा था जैसे यह तन कभी नहीं मरने वाला॥
मोहित किए हुए थे मुझको धन, धरती, सुपुत्र, दारा।
निष्फल हुआ, व्यर्थ बातों में यह अमूल्य जीवन सारा॥ ४८॥

मिट्टी धारण करे रूप, दीवार-कलश जैसे नाना।
इसी तरह हो भ्रमित, स्वयं को मैंने देव-पुरुष माना।
ले हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, धरती पर घूमता-फिरा।
याद न किया कभी प्रभु को, सेनापतियों से रहा घिरा॥ ४९॥

पड़ सांसारिक चिंताओं में, प्रभु को जीव भूल जायें।
होने से प्रमत्त बढ़ता लालच, हों बड़ी लालसायें॥
प्राणी प्रभु से विमुख, गाल में यों काल के समा जाता।
जीभ लपलपाता विषधर जैसे चूहे को खा जाता॥ ५०॥

जो शरीर सोने के रथ या हाथी पर चढ़ इतराता।
कहलाता नर-देव काल का ग्रास न जब तक बन जाता।
खाते खग मल बने, जलाया अगर राख का ढेर बनें।
धरती में गाड़ा, कीड़ों का भोजन देर-सबेर बनें॥ ५१॥

जिसने सभी दिशायें जीती, जिसके आगे सब हारे।
श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे, पद चूमें राजा बेचारे॥
विषय-भोग के लिए स्त्रियों से जब वह जोड़े नाता।
उनका पालित पशु हो जाता, हाथ-खिलौना बन जाता॥ ५२॥

विषय-भोग को छोड़, लोग कुछ करते दान-पुण्य नाना।
तप करते हैं और चाहते हैं राजा का पद पाना॥
तृष्णा के वश में होकर यद्यपि शुभ-कर्म किए जाते।
ऐसे प्राणी सब कुछ पाते, पर आनंद नहीं पाते॥५२॥

भ्रमित जीव संसार चक्र में फँस, रहता आता-जाता।
समय मुक्ति का जब आता, संतों का संग तभी पाता॥
जब मिलता सत्संग तभी जग के स्वामी में रति होती।
जिसकी उत्तम मति होती फिर उसकी उत्तम गति होती॥५४॥

समझ गया मैं प्रभु ने की है मुझ पर अनुकम्पा भारी।
टूट गई है आज राज्य के प्रति जो थी ममता सारी॥
राज्य छोड़ कर जो भी राजा, तप करने जाते वन को।
बिना कृपा के छोड़ नहीं पाते ममता के बंधन को॥५५॥

मुझे चाहिए बस पद-सेवा और दूसरी चाह नहीं।
यह वर वही मांगते, जिनको संग्रह की परवाह नहीं॥
जिसे आपकी भक्ति मिली, वह क्यों सुख, सुविधा, धन मांगे।
होगा ऐसा कौन, मुक्ति-दाता से जो बंधन मांगे॥५६॥

इसीलिए मैं छोड़ समूची सत-रज-तम वाली माया।
परम पुरुष अविनाशी निर्गुण प्रभु की आज शरण आया॥५७॥

आदिकाल से आर्त रहा, कर्मों की ज्वाला में जलता।
मन एवं इन्द्रियां शत्रु हैं, इन पर वश किसका चलता॥
विषय-भोग की प्यास बढ़ी थी, क्षण भर शांति नहीं पाया।
मृत्यु, शोक, भयरहित पद-कमल, उनकी आज शरण आया॥५८॥

सार्वभौम राजन! मति अति-निर्मल पाई है, प्रभु बोले।
दिए प्रलोभन किंतु कामनाओं के द्वार नहीं खोले॥५९॥

दिए प्रलोभन ताकि देख लूं, है मुझ में कितनी दृढ़ता।
कामनाओं के चक्कर में मेरा दृढ़ भक्त नहीं पड़ता॥६०॥

मेरे भक्त नहीं जो वे कितना ही प्राणायाम करें।
मन को वश में करने के कितने ही यत्न तमाम करें॥
हो जाती हैं क्षीण, किंतु रहती हैं शेष वासनाएं।
जैसे ही अवसर मिलता, विषयों के लिए मचल जाएं॥६१॥

मुझे समर्पित करके मन को, जीवन शेष समाप्त करो।
मुझ में निर्मल भक्ति रहे, मुझ से ऐसा वर प्राप्त करो॥६२॥

क्षात्र-धर्म के पालन में तुमने निर्दोष जीव मारे।
कर उपासना धो डालो तुम, अपने किए पाप सारे॥६३॥

द्विज का जन्म मिलेगा, समता सब जीवों के प्रति होगी।
राजन! उसके बाद मुझे तुम पाओगे सद्गति होगी॥६४॥

बावनवां अध्याय

द्वारका गमन, श्री बलराम जी का विवाह, श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणी का संदेश लेकर विप्र का आना

बोले शुक - मुचुकुंद नृपति को प्रभु के कथन बहुत भाये।
की परिक्रमा, कर प्रणाम फिर गह्वर से बाहर आये॥१॥

राजा ने लोगों, पशुओं, पेड़ों का कद छोटा पाया।
वे उत्तर की ओर चले, हो गया ज्ञात कलयुग आया॥२॥

तप-श्रद्धा से युक्त नृपति, संशय-आसक्ति विहीन हुए।
गए गंधमादन पर्वत पर, कृष्ण-भक्ति में लीन हुए॥३॥

नर-नारायण के निवास बदरिका आश्रम में रहकर।
करने लगे तपस्या प्रभु की धूप-शीत-वर्षा सहकर॥४॥

प्रभु आये तो पुर को पाया, घिरा यवन सेना द्वारा।
प्रभु ने सेना को संहारा, छीना उनका धन सारा॥५॥

बैलों और मनुष्यों पर जब तक प्रभु ने धन लदवाया ।
तेइस अक्षौहिणी सैन्य-दल ले फिर जरासंध आया॥६॥

प्रबल वेग वाली सेना को जब प्रभु ने देखा आगे॥
मानव-लीला करते हुए कृष्ण-बल दोनों ही भागे॥७॥

डरे नहीं थे, पर डरने का अभिनय कर सब धन छोड़े।
कमल सदृश्य सुकोमल चरणों से अनेक योजन दौड़े॥८॥

जरासंध खुश हुआ जिस तरह राम-कृष्ण रण को छोड़े।
पीछा करने लगा, साथ में लेकर रथ, हाथी, घोड़े॥९॥

थकने लगे कृष्ण-बल तो चढ़ गए प्रवर्षण पर्वत पर।
पूरे वर्ष हुआ करती थी वर्षा, गिरि पर रह-रह कर॥१०॥

जरासंध को जब पर्वत पर मिले नहीं दोनों भाई।
गिरि को चारों ओर घेर कर, अग्नि प्रज्वलित करवाई॥११॥

प्रभु ने जब पर्वत के निचले सब हिस्से जलते पाये।
ग्यारह योजन ऊंचे गिरि से कूदे, धरती पर आये॥१२॥

जरासंध या उसके सैनिक, उनको नहीं देख पाये।
दोनों भाई चलकर, सागर स्थित अपने पुर आये॥१३॥

जरासंध ने मान लिया, बल-कृष्ण जल गए पर्वत पर।
लेकर अपनी भारी सेना, गया मगधपति अपने घर॥१४॥

ब्रह्मा ने आवर्त नृपति रेवत को रिश्ता बतलाया ।
बल से ब्याही गई रेवती, यह विवरण पहले आया॥१५॥

प्रभु से ब्याही गई रुक्मिणी, कमला की अवतारी थीं।
नृप भीष्मक की पुत्री थीं, विदर्भ की राजकुमारी थीं॥१६॥

हरा शाल्व, शिशुपाल आदि को, जो कि स्वयंवर में आये।
रुक्मिणी को प्रभु लाये, जैसे पक्षीराज सुधा लाये॥१७॥

नृप ने पूछा - देवि-रुक्मिणी का प्रभु ने क्यों हरण किया।
राक्षस विधि से वरण किया, प्रभु ने क्यों यह आचरण किया॥१८॥

हे मुनि बतलाएं - कैसे प्रभु रुक्मिणी को हरकर लाये।
शाल्व-मगधपति आदि नृपों से कैसे कृष्ण पार पाये॥१९॥

हे मुनि! प्रभु की लीलाएं सुनकर यह जग पावन होता।
नित्य नया रस मिलता, जिससे तृप्त नहीं होता श्रोता॥२०॥

बोले शुक - विदर्भ के नृप भीष्मक थे, बहुत शक्तिशाली।
पांच पुत्र थे और एक कन्या थी, श्रेष्ठ गुणों वाली॥२१॥

पुत्री थी रुक्मिणी, पुत्र थे रुक्मी और रुक्ममाली।
रुक्मबाहु था, रुक्मकेश था और रुक्मरथ बलशाली॥२२॥

आने वाले अतिथि, कृष्ण के रूप, शौर्य के गुण गाते।
पाती पति के योग्य कृष्ण को, रुक्मिणी को भारी भाते॥२३॥

रुक्मिणी की विद्वता, रूप, औदार्य, शील को जब जाना।
प्रभु ने मन ही मन उसको, होने वाली भार्या माना॥२४॥

सभी चाहते थे रुक्मिणी, कृष्ण से ही ब्याही जाये।
ईर्ष्यावश रुक्मी को कृष्ण नहीं, शिशुपाल अधिक भाये॥२५॥

दुखित हुई रुक्मिणी, बंधु का निश्चय उन्हें नहीं भाया।
एक विप्र विश्वस्त, संदेशा लेकर प्रभु तक पहुँचाया॥ २६॥

द्विज पहुँचा द्वारका, द्वार-रक्षक उसको भीतर लाया।
प्रभु को सोने के सिंहासन पर उसने बैठा पाया॥ २७॥

देख विप्र को प्रभु ने उठकर, निज आसन पर बैठाया।
प्रभु को पूजें देव जिस तरह, वही मान द्विज ने पाया॥ २८॥

जब कर चुके विप्रवर भोजन, शयन आदि अति आदर से।
लगे पूछने कृष्ण, दबाते हुए चरण, कोमल कर से॥ २९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! धर्म का पालन करें और संतुष्ठ रहें।
मार्ग पूर्वजों का चलने में अगर कष्ट हो, मुझे कहें॥ ३०॥

विप्र-धर्म पालें, जो पायें, उसमें तुष्ठ रहे आयें।
यदि संतुष्ठ रहें तो धर्म करेगा पूर्ण कामनाएं॥ ३१॥

असंतुष्ठ को मिले इन्द्र-पद, तो वह लोक-लोक भागे।
संतोषी, संताप-रहित रहता, कुछ और नहीं मांगे॥ ३२॥

जो है उसमें तुष्ठ रहें, हों शांत और निरहंकारी।
उनको मेरा नमन, सुहृद-से जिनको लगें जीवधारी॥ ३३॥

विप्र, आपको राजा से मिलतीं होंगी सब सुविधाएं।
करें प्रजा का सुख से पालन, वे राजा मुझको भाएं॥ ३४॥

आप कहां से, किस कारण से किस अभिलाषा से आये।
गुप्त न हो तो कहें, विप्रवर की क्या सेवा की जाये॥ ३५॥

राजन! इस प्रकार द्विजवर से पूछे प्रभु लीलाधारी।
दिया रुक्मिणी का संदेश, और दी सभी जानकारी॥ ३६॥

कहा रुक्मिणी ने कानों तक गुण की ख्याति पहुंच पाती।
जो कि हृदय तक जा, सब अंगों में शीतलता पहुंचाती॥
सुन्दर रूप देख आखों वाले पाते हैं फल सारे।
समा गया है चित्त आप में, सुनकर रूप, हृदय हारे॥ ३७॥

जब से शील, धाम, धन, वय, कुल, रूप आप का ज्ञान सुना।
अद्वितीय हैं आप, आपको तो आपके समान सुना॥
कौन कुलीन, गुणी, कन्या होगी, न आपका वरण करे।
जब जग का हर जीव, शांति पाने प्रभु का अनुसरण करे॥ ३८॥

आत्म-समर्पण किया, आपको मान चुकी हूँ पति, स्वामी।
बात हृदय की छुपी नहीं, हैं कृष्ण आप अंतर्यामी॥
पत्नी बना मुझे ले जाने, हे प्रभु आप शीघ्र आयें।
सिंह का भाग कहीं शिशुपाल सदृश्य सियार ना छू पायें॥ ३९॥

पूर्त, यज्ञ, व्रत, दान, नियम की यदि की हो साधना सदा।
सुर, गुरु, विप्र आदि द्वारा, की हो प्रभु-आराधना सदा॥
तो प्रसन्न हो, मेरा पाणिग्रहण कृष्ण से करवायें।
नृप शिशुपाल या कि नृप कोई, अन्य न मुझको छू पायें॥ ४०॥

एक दिवस पहले विवाह के, गुप्तरूप से प्रभु आयें।
मथ डाले प्रभु, जरासंध-शिशुपाल आदि की सेनायें॥
अपने शौर्य-वीर्य के बल पर, आकर मेरा हरण करें।
राक्षस विधि ही सही किंतु मुझसे प्रभु पाणिग्रहण करें॥ ४१॥

मैं अंतःपुर में रहती, भाई भी वहीं रहें सारे।
सोचें नहीं कि मुझ तक आने में वे जायेंगे मारे॥
दूर नगर से मंदिर है, कुलदेवी हैं, गिरिजा माता।
एक दिवस पहले कन्या को मंदिर ले जाया जाता॥ ४२॥

आत्म शुद्धि के लिए स्नान करते है देव, चरण-रज में।
चरण-धूल शामिल है महादेव-शंकर की सज-धज में॥
अगर न मिली चरण-रज, मैं व्रत करके प्राण गंवाऊंगी।
कई जन्म लूंगी, मैं कभी न कभी चरण-रज पाऊंगी॥ ४३॥

कहा विप्र ने, यही रुक्मिणी का संदेशा मैं लाया।
कर विचार अतिशीघ्र कार्य करने का देव! समय आया॥ ४४॥

तिरेपनवां अध्याय

रुक्मिणीहरण

शुक बोले - सुनकर संदेशा यदुनंदन बोले हँसकर।
विप्र देवता के हाथों को पकड़ लिया प्रभु ने कसकर॥ १॥

प्रभु बोले - रुक्मी बन गया ब्याह में बाधक कुलघाती।
चित्त रुक्मिणी में रहता, रातों को नींद नहीं आती॥ २॥

मथ लकड़ियां निकाला करते द्विज जैसे चिंगारी को।
मथ कर उनकी सेनाएं, लाऊंगा राजकुमारी को॥ ३॥

शुक बोले - परसों होगा विवाह प्रभु ने जब यह जाना।
आज्ञा दी दारुक को प्रभु ने, रथ लेकर जल्दी आना॥ ४॥

मेघपुष्प, सुग्रीव, बलाहक, शैव्य नाम वाले घोड़े।
रथ में जोते शीघ्र, खड़ा हो गया सारथी कर जोड़े॥ ५॥

चढ़े तीव्रगामी रथ पर प्रभु, द्विज को पहले बैठाया।
एक रात में ही आनर्त देश छूटा, विदर्भ आया॥ ६॥

है शिशुपाल योग्य, रुक्मी का था नृप पर दबाव भारी।
पुत्र-प्रेम वश, कर स्वीकार, कर रहे थे नृप तैयारी॥ ७॥

किए गए थे साफ राज-पथ, गलियां, चौराहे सारे।
कर छिड़काव, पताकाएं बांधी, बांधे वंदनवारे॥ ८॥

स्त्री-पुरुषों ने पहने थे वस्त्राभूषण मन भाये।
घर थे सुंदर सजे, धूप की घर-घर से सुगंध आये॥ ९॥

देवों-पितरों की पूजा का किया गया शुभ-आयोजन।
किया स्वस्तिवाचन विप्रों ने, इसके बाद हुआ भोजन॥ १०॥

कन्या को स्नान कराया नए वस्त्र दो पहनाये।
वे उत्तम आभूषण पहनाये, जो कन्या को भाये॥ ११॥

रक्षा हेतु साम, ऋग, यजुर ऋचाओं को द्विज-गण गाये।
यज्ञ अथर्व रीति से हुआ, ताकि सर्वत्र शांति छाये॥ १२॥

राजा को थी ज्ञात, शास्त्र-विधि, कुल की सब परम्परायें।
विप्रों ने पाया सोना-चांदी, तिल-गुड़, कपड़े-गायें॥ १३॥

नृप दमघोष चेदि-पति के गृह भी वेदज्ञ विप्र आये।
मंगलमय शिशुपाल रहें, द्विजगण ने वेदमंत्र गाये॥ १४॥

सोने की मालाओं से सज्जित रथ, मदमाते हाथी।
वे कुंडिनपुर आये, उनके पीछे भारी सेना थी॥ १५॥

भीष्मक ने पूजन-सत्कार किया, जैसा होता आया।
फिर सबको सब सुविधा वाले जनवासों में ठहराया॥ १६॥

जरासंध नृप, पौंड्रक, शाल्व, विदूरथ, दन्तवक्त्र आये।
अपने सारे मित्रों को, शिशुपाल साथ अपने लाये॥ १७॥

राम-कृष्ण के द्वेषी थे सब, सभी सोचकर यह आये।
कन्या-हरण कृष्ण यदि करते हैं, तो युद्ध किया जाये॥ १८॥

थी इच्छा उनकी शिशुपाल, रुक्मिणी से ब्याहे जायें।
लाये थे इसलिए सभी अपनी बलशाली सेनायें॥ १९॥

कृष्ण अकेले गए हरण को, जब बल को यह पता पड़ा।
सोचा वहां विरोधी नृप हैं, निश्चित ही होगा झगड़ा॥ २०॥

प्रभु बलशाली हैं पर भ्रातृ-प्रेम पर किसका जोर चला।
रथ, गज, अश्व, पदाति सैन्य दल कुण्डिनपुर की ओर चला॥ २१॥

यहां प्रतीक्षा-रत कन्या पर चिंता के बादल छाये।
प्रभु का आना दूर, अभी तक वापस विप्र नहीं आये॥ २२॥

लगी सोचे अरे! ब्याह में एक रात की है दूरी।
कमल-नयन के दर्शन की क्यों नहीं हुई इच्छा पूरी॥
क्या कारण हो सकता है, यह सब कैसे जाना जाये।
क्यों अब तक संदेशा लाने वाले विप्र नहीं आये॥ २३॥

वे हैं शुद्ध स्वरूप और वे मुझमें कुछ अशुद्धि पाये।
करने पाणिग्रहण इसलिए ही तो कृष्ण नहीं आये॥ २४॥

या तो मेरा भाग्य मंद है, या विपरीत विधाता है।
या शंकर प्रतिकूल, या कि नाराज पार्वती-माता है॥ २५॥

प्रभु ने चित्त चुराया था, चिंतित थीं, थीं भारी पलकें।
समय शेष है, सोचा, मूंदे नयन न कहीं अश्रु छलकें॥ २६॥

राजन! तभी रुक्मिणी के फड़के नेत्रादि अंग बायें।
जो था शुभ संकेत शीघ्र ही प्रिय का समाचार पायें॥ २७॥

प्रभु के भेजे द्विजवर इसी समय अंतःपुर में आये।
ध्यानावस्थित देवी जैसा, देवि-रुक्मिणी को पाये॥ २८॥

चिंता रहित प्रसन्न दिखे द्विज, समझ गई प्रभु हैं आये।
थी प्रसन्न रुक्मिणी चाहती थी सब कुछ द्विज बतलाये॥ २९॥

द्विज ने कहा - सत्यसंकल्पित प्रभु उनको लेने आये।
प्रभु की बहुत प्रशंसा की, द्विज ने प्रभु के यश भी गाये॥ ३०॥

आनंदित हो गई रुक्मिणी, प्रभु आये हैं जब जाना।
द्विज को प्रभु का प्रेमी जाना, दीं वस्तुएं उसे नाना॥ ३१॥

राम-कृष्ण के आने की सूचना भीष्मक ने पाई।
उत्सुकता-वश ब्याह देखने आये हैं दोनों भाई॥
हो प्रसन्न राजा ने तुरही-भेरी बाजे बजवाये।
लेकर पूजा की सामग्री, स्वागत करने खुद आये॥ ३२॥

राजा ने मधुपर्क दिया, करके दोनों का अभिनंदन।
भेंट किए वस्त्रादि उत्तमोत्तम, फिर किया चरण-वंदन॥ ३३॥

सेना सहित अतिथियों को समुचित निवास में ठहराया।
भक्त-भीष्मक का स्वागत-सत्कार कृष्ण-बल को भाया॥ ३४॥

इस विवाह उत्सव में शामिल होने जो राजा आये।
आयु, पराक्रम, बल, धन के अनुसार भेंट सब ही पाये॥ ३५॥

लोग नगर के आये, तृप्त हुए प्रभु के दर्शन करके।
पिया पराग मुख-कमल का, आंखों की अंजलि भर-भर के॥ ३६॥

आपस में बातें करते, प्रभु के दर्शन सुखदायक हैं।
हैं रुक्मिणी योग्य ये ही, रुक्मिणी इन्हीं के लायक हैं॥ ३७॥

पुण्य किये हों जन्मों में, तो हम उसका यह फल पायें।
ब्रह्मा हों प्रसन्न, रुक्मिणी, कृष्ण से ही ब्याही जायें॥ ३८॥

प्रेम-विवश होकर पुरवासी करते थे बातें सारी।
पुर से पूर्ण सुरक्षा में मंदिर को निकली सुकुमारी॥ ३९॥

दर्शन को देवी के चरण-कमल, वे नग्न चरण जातीं।
लेकिन अपने हृदय-कमल में प्रभु के चरण-कमल पातीं॥ ४०॥

थीं रुक्मिणी मौन, घेरे थीं सखियां एवं माताएं।
सभी साथ चलते-चलते माता के भक्ति गीत गाएं॥
उसी समय ही तुरही, भेरी, ढोलक, शंख, मृदंग बजे।
साथ चल रहे थे सैनिक भी, शस्त्र सम्हाले, सजे-धजे॥ ४१॥

विप्र-पत्नियां भी थीं पहने वस्त्राभूषण, मालायें।
पूजन सामग्री ले, साथ-साथ थी क्वांरी कन्यायें॥ ४२॥

गाते गीत गवैये, वाद्य बजाते थे वादक सारे।
मागध, सूत और बंदी-जन, लगा रहे थे जयकारे॥ ४३॥

धो कर-कमल, पाद-पंकज, कन्या ने फिर आचमन किया।
तन-मन कर पावन, पवित्र मंदिर के भीतर गमन किया॥ ४४॥

पूजा-विधि जो जाने, ऐसी विप्र-पत्नियां थीं आईं।
वे पहले गिरिजा का, फिर शिव का भी पूजन करवाईं॥ ४५॥

कहा रुक्मिणी ने गिरिजा-गणेश से यह आशीष मिलें।
मुझे रूप में पति के, केवल कृष्ण द्वारकाधीश मिलें॥ ४६॥

धूपदीप, अक्षत-चंदन, वस्त्रादि पुष्प की मालायें।
गईं चढ़ाईं, हुई आरती, कन्यायें स्तुति गायें॥ ४७॥

फिर सुहागिनी विप्र-पत्नियों को पूजा, सम्मान दिया।
गन्ना, पूआ, कण्ठसूत्र, फल और नमक का दान दिया॥ ४८॥

राजकुमारी ने सुहागिनों से आशीर्वाद पाया।
फिर श्रद्धा के साथ भवानी-माता का प्रसाद खाया॥ ४९॥

इसके बाद मौन तोड़ा जो रखा गया था पूजा में।
निकली बाहर, मणि सज्जित कर-कमल सहेली थी थामें॥ ५०॥

राजन! थीं रुक्मिणी मोहिनी, ज्यों होती प्रभु की माया।
मुख-मंडल पर कुंडल दमकें, पतली कमर, सुगढ़ काया॥
थी नितंब पर जड़ित करधनी, थे कुछ उभरे वक्षस्थल।
लटकी-लट कपोल पर थी, करती थी आंखों को चंचल॥ ५१॥

ओंठों पर मुस्कान दांत की शोभा कुंदकली वाली।
कुंदरू जैसे लाल ओंठ की, दांतों तक फैली लाली॥
राजहंस की गति से धीमें-धीमें चरण-कमल धरतीं।
छोटे-छोटे घुंघरू बजते, पाजेबें रुनझुन करतीं॥
उनकी छबि को देख यशस्वी नृपगण हुए मुग्ध सारे।
प्रभु का काम सहज करने को बाण काम ने थे मारे॥ ५२॥

की न्यौछावर देवि रुक्मिणी ने प्रभु पर सब सुंदरता।
ऐसी मधु मुस्कान, चारु चितवन पर चित्त लुटा करता॥
कुछ मोहित नृपगण के हाथों से उनके हथियार गिरे॥
और भूमि पर रथ, हाथी, घोड़ों के कई सवार गिरे॥ ५३॥

हर क्षण-क्षण रुक्मिणी, कृष्ण के आने की आशा करतीं।
कमल-कली जैसे अति कोमल चरणों को धीमें धरतीं॥
तभी रुक्मिणी ने की कर से दूर कपोलों से अलकें।
कृष्ण सामने दिखे, उठाईं ज्यों ही लाज भरी पलकें॥ ५४॥

रथ पर चढ़ने पैर उठाया ही था राजकुमारी ने।
उन्हें गोद में उठा लिया तत्परता से गिरधारी ने॥
राजाओं के सिर पर पैर रखे, जो भी आये पथ में।
बैठ गए रुक्मिणी सहित वे, गरुड़-चिन्ह वाले रथ में॥५५॥

सिंह पाता निज भाग, सियारों का उस पर क्या जोर चले।
कृष्ण-रुक्मिणी, बल सेना को ले निजपुर की ओर चले॥५६॥

जरासंध-से अभिमानी को यह अपमान लगा भारी।
राजाओं को लगा हो गई उनकी कीर्ति नष्ट सारी॥
खड़े रहे हम, उठा ले गया, राजकुमारी को ग्वाला।
उठा ले गया भाग हिरन, जो था सिंह को मिलने वाला॥५७॥

चौवनवां अध्याय

शिशुपाल के साथी राजाओं और रुक्मी की पराजय तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह

शुक बोले - यह तिरस्कार स्वीकार न नृप-गण कर पाये।
कवच पहिन, ले धनुष, चढ़े रथ पर प्रभु के पीछे धाये॥१॥

राजन! यदुवंशी वीरों ने देखा शत्रु निकट आया।
किया धनुष टंकार, सैन्य-दल को फिर पीछे लौटाया॥२॥

जरासंध के सैनिक रथ, गज, अश्वों पर चढ़कर आये।
गिरि पर गिरें जिस तरह बूंदे, बाण इस तरह बरसाये॥३॥

बाण-वृष्टि से जब यदुवंशी सेना को ढँकते देखा।
प्रभु का मुख देखा, कन्या के मुख पर थी भय की रेखा॥४॥

प्रभु ने हँस कर कहा, डरो मत, देखो सेना के बल को।
शीघ्र तुम्हारी सेना, नष्ट करेगी शत्रु-सैन्य-दल को॥५॥

संकर्षण-गद-से वीरों ने प्रत्याक्रमण किया भारी।
नष्ट किए रथ, गज, हय, तहस-नहस कर दी सेना सारी॥६॥

कटने लगे करोड़ों सिर, कुंडल-किरीट वाले क्षण में।
क्षत-विक्षत शस्त्रास्त्र, अंग-प्रत्यंग गिरे समरांगण में॥७॥

हाथी, ऊँट, गधे, घोड़े, जिनको रिपुसेना थी लायी।
या तो मारे गए, या कि घायल हो हुए धराशायी॥८॥

टिका नहीं रिपुदल, विजयाकांक्षी यदुवीरों के आगे।
जरासंध जैसे राजा सब, पीठ दिखा, रण से भागे॥९॥

भावी पत्नी के छिनने का दुख शिशुपाल न सह पाया।
सूखा मुख निस्तेज देखकर जरासंध ने समझाया॥१०॥

श्रेष्ठ पुरुष हैं आप, छोड़िये अपने मन की दुर्बलता।
जीवन में प्रिय-अप्रिय होने का तो सदा चक्र चलता॥११॥

कठपुतली को बाजीगर इच्छा अनुसार नचाता है।
भगवत् इच्छा से जीवन में, सुख-दुख आता-जाता है॥१२॥

तेइस-तेइस अक्षौहिणी मगध से थी सेना आई।
हारी सत्रह बार, अठारहवें युद्ध में विजय पाई॥१३॥

करता है प्रारब्ध जगत में काल-चक्र का संधारण।
हर्ष-शोक करना होता है, राजन व्यर्थ इसी कारण॥१४॥

निःसंदेह थे साथ हमारे, महावीर इतने सारे।
किंतु कृष्ण द्वारा रक्षित छोटी-सी सेना से हारे॥१५॥

उनके था अनुकूल काल, इसलिए हमारा दल हारा।
काल दाहिना जब होगा, तो हम जीतेंगे जग सारा॥ १६॥

निज पुर को शिशुपाल गया, जब उसको नृप-गण समझाये।
अन्य नृपति भी गए पुरों को, जो रण से बचकर आये॥ १७॥

इस राक्षस विधि के विवाह को रुक्मी सहन न कर पाया।
प्रभु के प्रति था द्वेष, एक अक्षौहिणी सैन्य लेकर आया॥ १८॥

रुक्मी था बलवान, युद्ध करने निकला आपा खोकर।
राजाओं के बीच प्रतिज्ञा की उसने क्रोधित होकर॥ १९॥

यदि न कृष्ण-वध किया, रुक्मिणी अगर न वापस लाऊंगा।
सत्य प्रतिज्ञा है, कुंडिनपुर कभी न वापस आऊंगा॥ २०॥

कहा सारथी से रुक्मी ने, आज कृष्ण से रण होगा।
ले चल निकट कृष्ण के, तब तो पूरा मेरा प्रण होगा॥ २१॥

बलपूर्वक ले गया बहिन मेरी, दुर्मति है यह ग्वाला।
मेरे वीरों के आगे बलवीर्य नहीं टिकने वाला॥ २२॥

थी विपरीत बुद्धि रुक्मी की, प्रभु को नहीं जान पाया।
एक अकेला रथ ले पहुँचा, 'रुक जा-रुक जा' चिल्लाया॥ २३॥

रे यदुवंशी, कुलकलंक क्यों जाता रण से मुंह मोड़े।
ऐसा कह रुक्मी ने प्रभु पर तीखे तीन तीर छोड़े॥ २४॥

काग चुराये हव्य, इस तरह बहिन चुराकर तू लाया।
नष्ट करूंगा तेरा कपट युद्ध, तेरी कपटी माया॥ २५॥

छोड़ बहिन को भाग, नहीं तो, तू है अब मरने वाला।
प्रभु ने हंस कर शर छोड़े छह, उसका धनुष काट डाला॥ २६॥

आठ बाण फिर चला ध्वस्त की ध्वजा, सारथी, रथ, घोड़े।
रुक्मी ने भी नए धनुष से प्रभु पर पांच बाण छोड़े॥ २७॥

प्रभु ने धनुष दूसरा काटा, रुक्मी ने तीसरा लिया।
तीर चलाने से पहले ही, प्रभु ने वह भी काट दिया॥ २८॥

उसने शक्ति, शूल, पट्टिश, तोमर इत्यादि शस्त्र मारे।
प्रभु ने चलने से पहले, बाणों से काट दिए सारे॥ २९॥

ले तलवार-ढाल, क्रोधित हो रथ से कूदा चिल्लाता।
प्रभु पर झपटा, शलभ जिस तरह जलने ज्वाला में जाता॥ ३०॥

रुक्मी की तलवार ढाल, बाणों से तिल-तिल कर डाली।
फिर प्रभु ने उसका वध करने, ली तलवार धार वाली॥ ३१॥

जब देखा प्रभु ने की है, भाई के वध की तैयारी।
विह्वल हो प्रभु के चरणों में सिर रख बोली सुकुमारी॥ ३२॥

अप्रमेय, देवाधिदेव, योगेश्वर हे जग के त्राता।
हे बलवान! आपके वध के योग्य नहीं मेरा भ्राता॥ ३३॥

बोले शुक - मुख सूख गया, रुँध गया गला, भय के मारे।
स्वर्णहार गिर गया और कम्पित थे अंग-अंग सारे॥
पकड़े थी रुक्मिणी चरण, प्रभु ने विचार करके थोड़ा।
करुणा करके, रुक्मी के वध करने का विचार छोड़ा॥ ३४॥

रुका नहीं जब रोके रुक्मी, उसे दुपट्टे से बांधा।
करने उसे कुरुप, किया उसके सिर का मुंडन आधा॥
इसी बीच यदुवीरों ने उसकी सेना को मथ डाला।
रोंद डालता कमल-क्यारियों को जैसे गज मतवाला॥ ३५॥

विजयी सेना को लेकर जब प्रभु के पास राम आये।
बंधा दुपट्टे में रुक्मी को भू पर पड़ा हुआ पाये॥
द्रवित हुए बलराम उन्हें प्रभु का यह कृत्य नहीं भाया।
खोल दिए बंधन रुक्मी के और कृष्ण को समझाया॥ ३६॥

कृष्ण नहीं यह कृत्य उचित, सबका ही स्वाभिमान होता।
संबंधी का मुंडन करना, तो वध के समान होता॥ ३७॥

कहा रुक्मिणी से बल ने, रुक्मी ने जैसी गति पायी।
यह उसके कर्मों का फल है, अन्य नहीं उत्तरदायी॥ ३८॥

कहा कृष्ण से, अपराधी संबंधी से तोड़ें नाता।
जो संबंध विहीन हो गया, उसे मरा माना जाता॥ ३९॥

कहा रुक्मिणी से बल ने, यह धर्म रचित विधि के द्वारा।
क्षात्र-धर्म में भाई के हाथों जाता भाई मारा॥ ४०॥

कहा कृष्ण से बल ने, भाई जो धन का अभिमान करें।
राज्य, भूमि, धन के कारण वे अपनों का अपमान करें॥ ४१॥

कहा रुक्मिणी से फिर बल ने, सुनो रुक्मिणी कल्याणी।
है यह बंधु बुरा मन से, लगते हैं बुरे इसे प्राणी॥
उसका मंगल करने को ही सारा दण्ड विधान हुआ।
बुद्धि तुम्हारी विषम, तुम्हें यदि लगता है अपमान हुआ॥ ४२॥

जो आत्मा समझते तन को, माया के वश में रहते।
कुछ को कहते शत्रु, मित्र, वे कुछ को उदासीन कहते॥ ४३॥

जैसे नभ है एक, ज्योति है एक, आत्मा एक रहे।
पृथक मानता मूढ़, आत्मा को इसलिए शरीर कहे॥ ४४॥

द्रव्य, प्राण, गुण से बनती है देह, नष्ट हो जाती है।
किंतु अविद्या के कारण, आत्मा देह कहलाती है॥ ४५॥

नेत्र, रूप दोनों की होती है रवि पर ही निर्भरता।
नेत्र, रूप अस्थायी हैं, रवि तो सर्वदा रहा करता॥
इसी तरह आत्मा अजन्मा है, अन्यान्य देह धरती।
सत आत्मा, असत तन से संयोग-वियोग नहीं करती॥ ४६॥

घटती - बढ़ती नहीं आत्मा, यह सब तो तन का क्रम है।
साथ कलाओं के घटता-बढ़ता चन्द्रमा यही भ्रम है॥ ४७॥

स्वप्न, सत्य जैसा प्रतीत होता है, जब शरीर सोता।
इसी तरह जग मिथ्या है, पर सच जैसा प्रतीत होता॥ ४८॥

है अज्ञान-जनित दुख इससे मोहित हो जाता प्राणी।
त्याग करो इस दुख का, स्वस्थ-प्रसन्न रहो हे कल्याणी॥ ४९॥

शुक बोले - इस तरह रुक्मिणी को जब बल ने समझाया ।
वैमनस्य तब हटा, विवेक-बुद्धि से समाधान पाया॥ ५०॥

प्राण बचे पर रुक्मी की हो गई नष्ट अभिलाषायें।
था हतप्रभ-बलहीन किंतु अपमान नहीं भूले जायें॥ ५१॥

उसका प्रण था - मार कृष्ण को, बहिन न वापस लाऊंगा।
तो मैं कुंडिनपुर में वापस नहीं लौट कर आऊंगा॥
नहीं क्रोध पर काबू पाया, वापस नगरी नहीं गया।
नगर भोजकट बसा लिया, रुक्मी ने अपने लिए नया॥ ५२॥

प्रभु ने जीता राजाओं को और रुक्मिणी हरण किया।
फिर लाकर द्वारका विधि सहित, उनसे पाणिग्रहण किया॥ ५३॥

प्रभु के प्रति अनन्यता थी, सब ही डूबे सुख-सागर में।
प्रभु के इस विवाह में, गया मनाया उत्सव घर-घर में॥५४॥

करने भेंट विविध सामग्री, पुर के नर-नारी आते।
विविध वेषधारी वर-वधु के दर्शन करके सुख पाते॥५५॥

सजी हुई थी नगरी, फहरातीं थीं बड़ी पताकाएँ।
रत्न-जड़ित तोरण, मालाएं यत्र-तत्र शोभा पाएँ॥
द्वार-द्वार पर कलश, दूब, मंगलकारी दीपावलियां।
धूप, अगरचा की सुगंध से महक उठीं सारी गलियां॥५६॥

चढ़कर आये थे जिन पर नृप-गण, वे गज थे मदमाते।
दरवाजों पर केले और सुपारी-तरु शोभा पाते॥५७॥

कुरु, कैकय, विदर्भ, यदु, सृंजय, कुन्तिवंश वाले आये।
सबने कौतूहल से उत्सव देखा, सारे सुख पाये॥५८॥

जहां-तहां रुक्मिणी-हरण की गाईं जायें गाथाएं।
जिसको सुनकर नृपति, राजकन्यायें विस्मित हो जाएं॥५९॥

रूप रुक्मिणी का पाई जो रमा, रमापति ब्याह हुआ।
जोड़ी देख नगर के लोगों को आनंद अथाह हुआ॥६०॥

पचपनवां अध्याय

प्रद्युम्न का जन्म और शरम्बासुर का वध

शुक बोले - जब देह काम की भस्म हुई शिव के द्वारा।
प्रभु का अंश, देह पाने प्रभु पर निर्भर था बेचारा॥१॥

कृष्ण-रुक्मिणी का सुत बन कर जन्मा काम, देह पायी।
कहलाया प्रद्युम्न, कृष्ण के जैसा सुन्दर सुखदायी॥२॥

दस दिन के शिशु को शम्बर ने प्रसूतिका से चुरा लिया।
अपना भावी शत्रु मान, शिशु को समुद्र में फेंक दिया॥३॥

निगला गया समूचा ही शिशु, एक विशाल मत्स्य द्वारा।
जिसे जाल में फांस, किनारे पर ले आया मछुआरा॥४॥

मछुआरे ने दिया भेंट में शम्बर को वह मत्स्य बड़ा।
जहां पाकशाला में उसे कुल्हाड़ी से काटना पड़ा॥५॥

रसोइयों ने बड़े मत्स्य में जीवित बालक को पाया।
बालक, मायावती नाम की दासी को बेहद भाया॥
मायावती बहुत शंकित थी, तभी वहां नारद आये।
बालक की उत्पत्ति आदि का पूरा विवरण बतलाये॥६॥

कामदेव की पत्नी रति ही, बनकर मायावती रहे।
पति की करे प्रतीक्षा, खल की दासी बन कर सती रहे॥७॥

दाल-भात जो मायावती पकाये, शम्बर को भाये।
खुश थी मायावती, रूप में शिशु के कामदेव आये॥८॥

युवा हुए प्रद्युम्न शीघ्र, अप्रितम काम की सुन्दरता।
जो नारी देखे उसमें उद्दीपित काम हुआ करता॥९॥

नेत्र कमल-दल जैसे कोमल, घुटनों तक लम्बी बाहें।
सुन्दरता में श्रेष्ठ नरों में, सब दर्शन करना चाहें॥
रति भी रति के भाव व्यक्त करती, भोंहों को मटकाती।
सदा प्रेम से सेवा करती, हँसती, मुस्काती, गाती॥१०॥

कृष्ण-पुत्र ने देखी रति की मति उससे पूछा - माता।
भाव कामिनी जैसे क्यों हैं, मैं यह समझ नहीं पाता॥ ११॥

रति बोली - नारायण सुत को शम्बर यहां चुरा लाया।
मैं पत्नी रति हूँ, हैं काम आप, फिर से पाई काया॥ १२॥

दस दिन के थे आप चुरा शम्बर ने सागर में डाला।
निगला मछली ने, उससे मैंने पाया, मैंने पाला॥ १३॥

दुर्जय है शम्बर, आतीं हैं उसे सैकड़ों मायायें।
आप मोहिनी माया से ही उसको नाथ! मार पायें॥ १४॥

बच्चा खो जाने पर ज्यों कुकरी रोती, रोतीं गायें।
खो आपको आपकी माता, क्षण भर चैन नहीं पायें॥ १५॥

सिखलाई रति ने प्रद्युम्न को माया महाशक्तिशाली।
थी यह माया, हर माया का सर्वनाश करने वाली॥ १६॥

फिर प्रद्युम्न गए शम्बर के पास, युद्ध को ललकारा।
उकसाया उसको लड़ने को, कड़वे बचनों के द्वारा॥ १७॥

शम्बर उठा, किसी विषधर ने जैसे पदाघात पाया।
लाल-लाल आंखे करके, ले गदा दुष्ट बाहर आया॥ १८॥

उसने गदा घुमा कर नभ में नारायण-सुत को मारी।
सिंहनाद भी किया कड़कती है जैसे बिजली भारी॥ १९॥

अपनी गदा सामने लाकर, निष्फल उसका वार किया।
अपनी श्रेष्ठ गदा से फिर, शम्बर पर तीव्र प्रहार किया॥ २०॥

चला गया वह नभ में, की उसने मायासुर की माया।
छुपे-छुपे उसने माया से फिर शस्त्रों को बरसाया॥ २१॥

जब प्रद्युम्न हुए पीड़ित, तब रति का कहा याद आया।
की प्रयोग वह महामोहिनी, करती नष्ट सभी माया॥ २२॥

उसने नाग, यक्ष, गंधर्व, पिशाच, राक्षसों की माया।
की प्रयोग सब, महामोहिनी का पर पार नहीं पाया॥ २३॥

लाल बाल वाला शम्बर का सिर किरीट कुंडल वाला।
चला तीक्ष्ण तलवार कृष्ण-सुत ने तत्काल काट डाला॥ २४॥

शम्बर के वध पर बरसाये पुष्प, देव स्तुति गाये।
गगन-मार्ग से रति एवं प्रद्युम्न द्वारका में आये॥ २५॥

नभ में रति-प्रद्युम्न, मेघ-विद्युत जैसी शोभा पायें।
अंत:पुर में उत्सुक थीं स्वागत को सौ-सौ ललनाएं॥ २६॥

ललनाओं ने देखा, मेघवर्ण है, पीताम्बर धारे।
सुन्दर मुस्काता मुख, लम्बी भुजा, नेत्र हैं रतनारे॥ २७॥

मुख पर घुंघराली नीली अलकें, जैसे खेलें भंवरे।
सकुचा कर छुप गई, लगा आये श्रीकृष्ण संजे-संवरे॥ २८॥

कई विलक्षणताएं जब ललनाओं ने उनमें पाईं।
तब विस्मित एवं आनंदित हो उनके समीप आईं॥ २९॥

मृदुभाषी रुक्मिणी देख, दम्पति को भूलीं दुख सारा।
खोये सुत की स्मृति में छाती से बही दूध-धारा॥ ३०॥

लगी सोचने किसका सुत नर-रत्न, कमल-नेत्रों वाला।
इसकी माता कौन, कौन है यह सौभाग्यवती बाला॥ ३१॥

मेरा सुत खो गया सूतिका से वह भी जवान होता।
रूप-अवस्था में मेरा सुत भी इसके समान होता॥ ३२॥

मैं हूँ चकित कृष्ण जैसा रंग-रूप-चाल-चितवन काया।
वैसे ही मुस्काकर बातें करना, यह कैसे पाया॥ ३३॥

बायीं बांह फड़कती है, इसके प्रति ममता अद्‌भुत है।
जिसको मैंने रखा गर्भ में, लगता है मेरा सुत है॥ ३४॥

मन तो था, मस्तिष्क रुक्मिणी का आगे-पीछे जाये।
उसी समय वसुदेव-देवकी को ले कृष्ण वहां आये॥ ३५॥

था सब ज्ञात किंतु चुप थे प्रभु, उसी समय नारद आये।
शम्बर द्वारा हरण-सहित सारी घटनाएं बतलाये॥ ३६॥

सुन नारद के वचन चकित थीं, अंतःपुर की ललनाएं।
अभिनंदन इस तरह किया, जैसे मृत को जीवित पायें॥ ३७॥

कृष्ण, राम, वसुदेव, देवकी और रुक्मिणी महतारी।
सब ललनाएं, नव-दम्पति के गले लगे बारी-बारी॥ ३८॥

नगरवासियों ने जाना, खोये प्रद्युम्न लौट आये।
मृत जैसे जीवित हो जाये, सारे ऐसा सुख पाये॥ ३९॥

कृष्ण और प्रद्युम्न एक जैसे थे, सब धोखा खायें।
थी समानताएं, माताएं मोहित होकर छुप जायें॥
थे प्रभु का प्रतिबिम्ब, पुत्र प्रद्युम्न काम के अवतारी।
जिसकी दशा विचित्र नहीं हो, कहीं नहीं ऐसी नारी॥ ४०॥

छप्पनवां अध्याय

स्यमन्तक मणि की कथा और जाम्बवती एवं सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण का विवाह

बोले शुक - सत्राजित प्रभु पर दोष लगाता था नाना।
साथ स्यमन्तक मणि के पुत्री भी सौंपी, जब सच जाना॥ १॥

राजा ने पूछा- सत्राजित ने क्या दोष लगाया था।
क्यों सौंपा पुत्री को, कहां स्यमन्तक मणि को पाया था॥ २॥

शुक बोले - वह सूर्यभक्त था, उनकी प्रसन्नता पा ली।
उसे स्यमन्तक मणि दी रवि ने, रवि जैसे प्रकाश वाली॥ ३॥

मणि को पहन कंठ में उसने रवि जैसा प्रकाश पाया।
जब आया द्वारका उसे कोई पहचान नहीं पाया॥ ४॥

आंखें लगी चौंधियाने, यों लगा कि सूर्य स्वयं आये।
समाचार रवि के आने का लोग कृष्ण को बतलाये॥ ५॥

बोले लोग- नमन हे नारायण, यदुनंदन, गिरधारी।
कमलनयन, दामोदर, शंख-चक्रधारी, निर्भयकारी॥ ६॥

चकाचौंध करती किरणें, आंखों में अंधकार छाये।
लगता है जगदीश्वर के दर्शन करने को रवि आये॥ ७॥

तीन लोक में सुरगण प्रभु को कहीं न खोज पा रहे हैं।
छुपा जानकार यदुकुल में, दर्शन को सूर्य आ रहे हैं॥ ८॥

शुक बोले - राजन! प्रभु ने हँसकर लोगों को समझाया।
सूर्य नहीं यह सत्राजित है, रवि से मणि लेकर आया॥ ९॥

सत्राजित के श्रेष्ठ भवन में, मंगल-गान गये गाये।
विप्र स्यमन्तक मणि को मंदिर में स्थापित करवाये॥१०॥

राजन! वह रवि-मणि प्रतिदिन देती थी आठ भार सोना।
जहां उसे पूजा जाता, शोभा पाता कोना-कोना।
वहां न आ पाते दुर्भिक्ष, सर्प-भय और महामारी।
नहीं सताती ग्रह-पीड़ा, माया, तन-मन की बीमारी॥११॥

उससे प्रभु ने कहा, उचित है मणि राजा को दी जाना।
पर लोभी सत्राजित ने प्रभु का प्रस्ताव नहीं माना॥१२॥

दिखा प्रसेन एक दिन घोड़े पर चढ़ कर वन को जाता।
मणि को धारण किए हुए था, था सत्राजित का भ्राता॥१३॥

वन में सिंह ने अश्व-सहित उसको मणि के कारण मारा।
सिंह भी मारा गया गुफा में, जाम्बवानजी के द्वारा॥१४॥

बच्चे हुए प्रसन्न रीछ के, मणि जब चमकदार पाई।
सत्राजित था दुखी, नहीं लौटा शिकार करके भाई॥१५॥

उसने कहा - कृष्ण ने मणि के कारण भाई को मारा।
फैल गई यह बात नगर में, कानाफूसी के द्वारा॥१६॥

यह कलंक का टीका धोने की सोची प्रभु ने मन में।
प्रभु, प्रसेन की खोज हेतु लोगों के साथ गये वन में॥१७॥

लोगों ने देखा प्रसेन को अश्व-सहित सिंह ने मारा।
आगे देखा तो पाया, सिंह मारा गया रीछ द्वारा॥१८॥

रिक्षराज की गुफा भयंकर थी, सब ओर तिमिर छाया।
प्रभु ने किया प्रवेश गुफा में, सबको बाहर बैठाया॥१९॥

प्रभु ने देखा उस मणि से छोटे-छोटे बच्चे खेलें।
गए निकट प्रभु बच्चों के, सोचा बच्चों से मणि ले लें॥२०॥

किंतु धाय ने एक अपरिचित को देखा अपने आगे।
वह चीखी तो ऋक्षराज क्रोधित होकर बाहर भागे॥२१॥

जाम्बवान थे कुपित, नहीं अपने स्वामी को पहचाना।
करने लगे युद्ध, प्रभु को बस साधारण मानव माना॥२२॥

लड़ें मांस के लिए बाज, वैसा ही युद्ध हुआ भारी।
शस्त्र-शिला-तरु चले अंततः आई कुश्ती की बारी॥२३॥

मुष्ठि-प्रहार वज्र जैसे, दोनों ने आपस में मारे।
बिन विश्राम लड़े अट्ठाइस दिन बिन-जीते-बिन-हारे॥२४॥

हुईं अस्थियां ढीलीं, शेष न लड़ने का उत्साह रहा।
जाम्बवान ने होकर विस्मित, तब प्रभु से कर जोड़ कहा॥२५॥

जीवों के रक्षक, स्वामी पुरुषोत्तम को अब पहचाना।
सब जीवों को देते हैं प्रभु, प्राण, ओज, मन, बल नाना॥२६॥

जग के रचनाकार विधाता को प्रभु आप बनाते हैं।
परम-काल हैं आप, परम-आत्मा आप कहलाते हैं॥२७॥

प्रभु का क्रुद्ध कटाक्ष देख थे क्षुब्ध-भीत जलचर सारे।
सागर ने भी मार्ग दे दिया था प्रभु को डर के मारे॥
सेतु बनाया सागर पर, लंका को जीत कीर्ति पायी।
असुरों के सिर काटे बाणों से, कर दिया धराशायी॥२८॥

राजन! जाम्बवान ने जब अपने स्वामी को पहचाना।
ऋक्षराज ने माना, हुआ राम का उनके घर आना॥२९॥

प्रभु ने उन पर हाथ फिराया, तन में कष्ट न शेष रहा।
प्रेम-युक्त गंभीर गिरा में प्रभु ने इसके बाद कहा॥ ३०॥

ऋक्षराज मुझको है, चमकीली मणि की आवश्यकता।
मुझ पर लगा कलंक दूर, मणि वापस देकर हो सकता॥ ३१॥

सिर्फ स्यमन्तक मणि ही प्रभु ने जाम्बवान से थी चाही।
किंतु उन्होंने मणि तो दी ही, मणि जैसी पुत्री ब्याही॥ ३२॥

जिन्हें बिठाया था प्रभु ने बाहर वे बारह दिवस रहे।
होकर दुखी द्वारका लौटे, वे क्या करते विवश रहे॥ ३३॥

जब वसुदेव, देवकी, और रुक्मिणी को यह ज्ञात हुआ।
सब संबंधी-जन पर जैसे दुख का वज्राघात हुआ॥ ३४॥

सत्राजित को सब पुरवालों ने अपराधी ठहराया।
कृष्ण-प्राप्ति के लिए सभी ने पूजी देवि-महामाया॥ ३५॥

देवी ने वरदान दिया, अभिलाषा पूरी हो जाये।
जाम्बवती एवं मणि को ले कृष्ण तभी वापस आये॥ ३६॥

मणि के साथ देखकर प्रभु को सब पुरवासी हर्षाये।
प्रभु क्या आये लगा कि जैसे मृत ने नए प्राण पाये॥ ३७॥

किया गया आहूत सभा में सत्राजित प्रभु के द्वारा।
मणि वापस दी, बतलाया मणि पाने का वृतांत सारा॥ ३८॥

उसने मणि ले ली, लज्जित था, लगा कि उसने पाप किया।
मुंह लटकाये घर आया, करनी पर पश्चाताप किया॥ ३९॥

किया विरोध कृष्ण-बलशाली का मन में भयभीत हुआ।
किसी तरह प्रभु को प्रसन्न करना ही उचित प्रतीत हुआ॥ ४०॥

लगा सोचने मैं अदूरदर्शी, धनलोलुप, अज्ञानी।
क्या कुछ करूं कि हो मेरा कल्याण, कहा जाऊं दानी॥ ४१॥

मणि के साथ रमणियों की मणि, सौंपूं उन्हें सत्यभामा।
मुझे मिलेगी शांति, कृष्ण ने उसका अगर हाथ थामा॥ ४२॥

सत्राजित ने बुद्धि - विवेक लगा कर खूब विचार किया।
फिर पुत्री के साथ स्यमन्तक मणि को, प्रभु को सौंप दिया॥ ४३॥

बहुत लोग उत्सुक थे उसका रूप-शील सबको भाया।
प्रभु ने करके ब्याह सत्यभामा-सी वामा को पाया॥ ४४॥

भेंट स्यमन्तक मणि की प्रभु ने उचित नहीं समझा लेना।
कहा - आप मणि के अधिकारी, राजा को बस फल देना॥ ४५॥

सत्तावनवां अध्याय

स्यमन्तक हरणः शतधन्वा उद्धार और अक्रूरजी को फिर से द्वारका बुलाना

शुक बोले - जब सुना पाण्डु-सुत सब कुंती के साथ जले।
जीवित हैं था ज्ञात, हस्तिनापुर प्रभु, बल के साथ चले॥ १॥

मिले भीष्म, कृप, द्रोण, विदुर से, अपनी सम्वेदना कही।
हाय-हाय क्या हुआ काल की कैसी कुटिल-कुदृष्टि रही॥ २॥

इसी समय शतधन्वा, कृतवर्मा, अक्रूर मिले तीनों।
शतधन्वा से कहा- समय है सत्राजित से मणि छीनों॥ ३॥

पुत्री ब्याही प्रभु से, इस पर थे वे सभी खार खाये।
सत्राजित से बदला लेने शीघ्र उसे मारा जाये॥ ४॥

भूल गया पापी उसका है शीघ्र अंत होने वाला।
शतधन्वा ने सत्राजित को सोते समय मार डाला॥५॥

क्रंदन करतीं रहीं स्त्रियां, उसको दया नहीं आई।
किया वधिक जैसा वध, भागा ज्योंही उसने मणि पाई॥६॥

देख पितृ-वध देवि-सत्यभामा रोतीं, धीरज खोतीं।
वे विलाप कर बेसुध होतीं, सुध आने पर फिर रोतीं॥७॥

शव को छोड़, सत्यभामा, तत्काल हस्तिनापुर आईं।
रोते हुए पिता के वध की घटना प्रभु को बतलाईं॥८॥

करने लगे विलाप कृष्ण-बल यह कैसी विपत्ति आई।
था सब ज्ञात किंतु नर-लीला, करते थे दोनों भाई॥९॥

प्रभु लौटे तत्काल द्वारका, दुख में दूर न रह पायें।
शतधन्वा का वध कर मणि लाने की बनी योजनायें॥१०॥

कृतवर्मा के पास दुष्ट शतधन्वा आया घबराया।
कृतवर्मा ने भी खुद को भयभीत बताया, समझाया॥११॥

राम-कृष्ण हैं ईश्वर का अवतार, बीच में कौन पड़े।
दोनों लोक नष्ट होंगे, जो उन दोनों से युद्ध लड़े॥१२॥

इनसे करके द्वेष सम्पदा खोई, कंस गया मारा।
पैदल भागा, सत्रह हमले करके जरासंध हारा॥१३॥

फिर अक्रूर शरण में आया, कृतवर्मा का ठुकराया।
वे बोले - क्यों वैर करें जब जाने बल, पौरुष, माया॥१४॥

लीला से जग की रचना होती, संहार किया जाता।
प्रभु की लीलाओं को स्वयं विधाता नहीं जान पाता॥१५॥

बच्चे ज्यों उखाड़ते छत्ते, वैसे गोवर्धन भारी।
सात वर्ष में, सात दिवस तक, उठा बने प्रभु गिरधारी॥१६॥

आदि-अंत से रहित कृष्ण करते हैं अद्‌भुत काम सदा।
आत्म स्वरूप, एक रस प्रभु को, मैं तो करूं प्रणाम सदा॥१७॥

छोड़ स्यमन्तक वहीं, सोचकर शायद उसकी मृत्यु टले।
चढ़ घोड़े पर भागा जो अनवरत चार सौ कोस चले॥१८॥

गरुड़-ध्वजा वाले रथ में थे जुते शीघ्रगामी घोड़े ।
बैठ कृष्ण-बलराम श्वसुरघाती सठ के पीछे दौड़े॥१९॥

शतधन्वा का अश्व गिर गया, जब मिथिला के उपवन में।
प्रभु को पीछे देख, तेज पैदल दौड़ा, भय था मन में॥२०॥

प्रभु ने चक्र सुदर्शन छोड़ा श्रेष्ठ शस्त्र सब शस्त्रों में।
सिर काटा फिर मणि को खोजा शतधन्वा के वस्त्रों में॥२१॥

नहीं मिली मणि, प्रभु ने बल को बतलाया विवरण सारा।
भागा नहीं स्यमन्तक लेकर, मैंने इसे व्यर्थ मारा॥२२॥

बल बोले - इसने मणि दी होगी, जो मित्र-सखा होगा।
तुम जाओ द्वारका किसी ने मणि को वही रखा होगा॥२३॥

मिथिला तक आये, विदेह से मिलने का सौभाग्य मिला।
ऐसा कहकर वहीं छोड़कर रथ, बलराम गए मिथिला॥२४॥

बल को आया जान, जनक ने किया हार्दिक अभिनंदन।
अति-आनंदित थे विदेह करके अर्चना और वंदन॥२५॥

मिथिला में बलराम रहे वर्षों तक उन्हें नगर भाया।
मिला स्नेह-सम्मान, सभी को सेवा में तत्पर पाया॥
श्रेष्ठ गदाधारी बलदाऊ ने जब योग्य शिष्य पाया।
दुर्योधन, धृतराष्ट्र-पुत्र को गदा चलाना सिखलाया॥ २६॥

प्रभु आये द्वारका, बताया पत्नी को विवरण सारा।
मिली नहीं मणि शतधन्वा से, फिर भी दुष्ट गया मारा॥ २७॥

सत्राजित के क्रिया-कर्म सारे फिर प्रभु ने करवाये।
जिनके कारण मृतक-आत्मा का परलोक सुधर जाये॥ २८॥

कृतवर्मा-अक्रूर संशकित थे, जाने क्या हो आगे।
शतधन्वा जब मरा, हुए भयभीत द्वारका से भागे॥ २९॥

जब द्वारका छोड़ अक्रूर गए, लोगों का था कहना।
नगर वासियों को दैहिक-दैविक परिताप पड़ा सहना॥ ३०॥

कहने वाले भूल गए, प्रभु रहे जहां भवभयहारी।
उनके तन में संत बसें, जो हरते विपत्तियां सारी॥ ३१॥

काशी थी अवृष्टि से पीड़ित, हुई वृष्टि तब मनचाही।
काशीपति द्वारा श्वफल्क से जब गान्धिनी गई ब्याही॥ ३२॥

हैं अक्रूर श्वफल्क-पुत्र, उनका प्रभाव विस्मयकारी।
जहां रहें अक्रूर दूर रहतीं हैं विपदायें सारी॥ ३३॥

लोगों की इन चर्चाओं में तथ्य नहीं प्रभु ने पाया।
फिर भी प्रभु ने दूत भेज उनको ढुड़वाया, बुलवाया॥ ३४॥

जब आये अक्रूर हुआ स्वागत-सत्कार, मान पाया।
मन की बात जानने वाले प्रभु ने फिर हँस समझाया॥ ३५॥

दानवीर हैं आप, आपको शतधन्वा ने मणि दी है।
मणि प्रतिदिन सोना देती है, यह सब मुझे ज्ञात ही है॥ ३६॥

सत्राजित सुतहीन, अतः नाती हैं धन के अधिकारी।
तर्पण एवं पिण्ड दान की, है उनकी जिम्मेदारी॥ ३७॥

मणि को रखिए आप किंतु इसमें है एक परेशानी।
क्या होगा यदि बलदाऊ ने मेरी बात नहीं मानी॥ ३८॥

अच्छा होगा करने उनको शांत, उन्हें मणि दिखलायें।
फिर मणि रख लें आप, यज्ञ-वेदियां स्वर्ण की बनवायें॥ ३९॥

द्रवित हुए अक्रूर श्रवण कर प्रभु के वचन मर्मभेदी।
छुपा रखी थी वस्त्रों में जो, मणि निकाल प्रभु को दे दी॥ ४०॥

प्रभु ने स्वजनों को मणि दिखलाई, कलंक सब दूर हुए।
प्रभु सक्षम थे, पर उनसे मणि पा प्रसन्न अक्रूर हुए॥ ४१॥

आख्यान में वर्णित है प्रभु की सक्रियता-तत्परता।
जो मनुष्य इसका वाचन करता, स्मरण-श्रवण करता॥
किया गया जिस तरह मार्जन दोषों का प्रभु के द्वारा।
वह मनुष्य अपकीर्ति आदि से निश्चित पाये छुटकारा॥ ४२॥

अट्ठावनवां अध्याय

भगवान श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाहों की कथा

शुक बोले - जब पाण्डु-सुतों के समाचार प्रभु ने पाये।
सात्यकि आदि यादवों को ले मिलने इन्द्रप्रस्थ आये॥ १॥

प्रभु को आया देख पाण्डु-सुत, उठ ऐसे बाहर आये।
जैसे पाकर प्राण, इन्द्रियों में चेतनता आ जाये॥ २॥

प्रभु से अंग-संग मिलने से हटती अधि-व्याधि सारी।
सुन्दर मुख, मुस्कान देखकर होती प्रसन्नता भारी॥ ३॥

प्रभु ने भीम, युधिष्ठिर दोनों को सिर झुका प्रणाम किया।
गले लगाया अर्जुन को, सहदेव, नकुल को स्नेह दिया॥ ४॥

प्रभु जब बैठ गए आसन पर द्रुपद-सुता कृष्णा आईं।
प्रभु को किया प्रणाम, नयी ब्याहीं थीं थोड़ा सकुचाईं॥ ५॥

सात्यकि और अन्य यादव जो प्रभु के संग-साथ आये।
दिया गया सम्मान यथोचित, यथायोग्य आसन पाये॥ ६॥

फिर प्रभु भीतर गए बुआ कुंती के झुककर चरण छुए।
गले लगाया कुंती ने तो प्रभु भी भाव-विभोर हुए॥
अपने भ्राताओं का कुंती ने सब कुशल-क्षेम पूछा।
बुआ और कृष्णा का हाल-चाल प्रभु ने सप्रेम पूछा॥ ७॥

प्रभु ने पूछा तो कुंती को अपने क्लेश याद आये।
गला रुंध गया उनका, आंखों में दुख के बादल छाये॥
प्रभु के दर्शन होने से कुंती का क्लेश न शेष रहा।
खुद को लिया सम्हाल उन्होंने, मन में भर कर प्रेम कहा॥ ८॥

जब आये अक्रूर तुम्हारे कारण, तुम्हें नाथ माना।
हुए अनाथ-सनाथ, नाथ को हमने सदा साथ माना॥ ९॥

सब के सुहृद, हितैषी, सब में बन आत्मा रहा करते।
कभी किसी को अपना या कि पराया नहीं कहा करते॥
पर जो करें निरंतर चिंतन, वे ही तुम्हें प्राप्त करते।
उनके शाश्वत क्लेश कृष्ण तुम पलभर में समाप्त करते॥ १०॥

कहा युधिष्ठिर ने - हमने कुछ अच्छी करनी की होगी।
मिले हमें दर्शन, जिनको कठिनाई से पाते योगी॥ ११॥

चौमासे भर रहे कृष्ण, अनुरोध युधिष्ठिर का माना।
संभव हुआ प्रजा को प्रभु के नयन-रम्य दर्शन पाना॥ १२॥

दो अक्षय-तूणीर, धनुष ले, पहना कवच भव्य भारी।
चढ़े एक दिन कपिध्वज वाले रथ पर पार्थ धनुर्धरी॥ १३॥

प्रभु को लेकर साथ करें आखेट यही सोचा मन में।
जहां बहुत थे व्याल, व्याघ्र, मृग, गए पार्थ ऐसे वन में॥ १४॥

वहां उन्होंने बाघ, सुअर, भैंसे, गैंडे, साही मारे।
बने निशाना उनका, शरभ, गवय, मृग, हिरण जीव सारे॥ १५॥

पर्व हेतु जो यज्ञ योग्य थे, सेवक इन्द्रप्रस्थ लाये।
प्यासे और थके अर्जुन, प्रभु को ले यमुना तट आये॥ १६॥

दोनों ने जल पिया, और कुछ हाथों-पावों पर डाला।
तभी कृष्ण को दिखी निकट ही तप करती सुन्दर बाला॥ १७॥

उन्नत वक्ष, हुआ मुख सुन्दर, सुन्दर दंत-पंक्ति पाकर।
प्रभु के कहने पर अर्जुन ने, युवती से पूछा जाकर॥ १८॥

किसकी हो आत्मजा, कौन हो सुमुखि, कहां से आयी हो।
किस अभिलाषा को लेकर तुम धूनी यहां रमायी हो॥
लगता है, यह तप है, जिससे तुम मन चाहा पति पाओ।
हे सुन्दरी! मुझे तुम अपनी सारी बातें बतलाओ॥ १९॥

कालिंदी ने कहा - पिता हैं मेरे सूर्य अंशुमाली।
करूं तपस्या ताकि विष्णु की पत्नी बनूं भाग्यशाली॥ २०॥

लक्ष्मी-पति ही पति होंगे, मैंने उनका ही वरण किया।
अर्जुन! प्रभु का आश्रय पाने, खुद को उनकी शरण किया॥ २१॥

कालिंदी है नाम, भवन है मेरा यमुना के जल में।
जब तक मिलें न कृष्ण करूंगी यहीं तपस्या अविचल मैं॥ २२॥

प्रभु को था सब ज्ञात किंतु, जब अर्जुन सब कुछ बतलाये।
रथ में उसे बिठाया, लेकर पास युधिष्ठिर के आये॥ २३॥

कर स्वीकार पाण्डवों का अनुरोध, कृष्ण ने की माया।
अद्‌भुत सुन्दर नगर, विश्वकर्मा से प्रभु ने बनवाया॥ २४॥

रुके रहे प्रभु वहां, पाण्डवों ने सब पाया मनचाहा।
बने सारथी अर्जुन के, खांडव वन किया गया स्वाहा॥ २५॥

तुष्ठ अग्नि ने दिया धनुष गांडीव, पार्थ का मनभाया।
दो अक्षय तूणीर, कवच दुर्भेद्य, दिव्य-रथ भी पाया॥ २६॥

बचा अग्नि से मय को, अर्जुन ने वह समाभवन पाया।
समझ न पाया था दुर्योधन जिसकी जल-थल की माया॥ २७॥

दिनों बाद प्रभु अर्जुन की अनुमति सबकी सहमति पाये।
सात्यकि, कालिंदी, यदुवीरों सहित द्वारका प्रभु आये॥ २८॥

कृष्ण और कालिंदी का फिर विधि अनुसार विवाह हुआ।
परिजन, पुरजन, स्वजन, सभी जन को आनंद अथाह हुआ॥ २९॥

विंद और अनुविंद अवन्ती के नृप थे, दोनों भाई।
दुर्योधन के अनुयायी थे, वैसी ही कुबुद्धि पाई॥
उनकी बहन मित्रविंदा ने प्रभु को चुना स्वयंवर में।
जाने नहीं दिया उसको, दोनों ने रोक लिया घर में॥ ३०॥

राजी थी राजाधिदेवि माता, थी प्रभु की बड़ी बुआ।
हरि ने हरी मित्रविंदा बल से, फिर विधिवत ब्याह हुआ॥ ३१॥

थे कोसल के नृपति नग्नजित, धर्मपरायण, व्रतधारी।
उनके प्रण के कारण पुत्री सत्या थी अब तक क्वांरी॥ ३२॥

प्रण था सात तीक्ष्ण सींगों वाले बैलों को वश करना।
थी नर-गंध असह्य उन्हें, लड़ने का मतलब था मरना॥ ३३॥

प्रभु ने सुना और सोचा, उन बैलों को जीता जाये।
सेना लेकर बड़ी साथ में कोसलपुरी कृष्ण आये॥ ३४॥

कोसलपति ने प्रभु का स्वागत किया, किया पूजन-वंदन।
किया व्यक्त आभार कृष्ण ने, किया नृपति का अभिनंदन॥ ३५॥

सत्या ने देखा मेरे मनभावन रमारमण आये।
व्रत के फल में यही मिलें पति, पूर्ण लालसा हो जाये॥ ३६॥

जिनकी पद-पंकज रज, ब्रह्मा, रमा, महेश शीश धरते।
जो अपनी इच्छा से ही लीला-अवतार ग्रहण करते॥
मेरा ऐसा क्या है, नियम-धर्म-व्रत जो उनको भाये।
यह तो उनकी कृपा स्वयं है, जो प्रभु कोसलपुर आये॥ ३७॥

वंदन-अर्चन किया कृष्ण का, हृदय नृपति का प्रेम भरा।
पूछा, क्या सेवा कर सकता, मैं साधारण जन ठहरा॥ ३८॥

बोले शुक - थे कृष्ण तुष्ठ सेवा-स्वागत-आदर पाकर।
मेघ-गहन-गंभीर-गिरा में प्रभु बोले कुछ मुस्काकर॥ ३९॥

प्रभु बोले - नृप! धर्म-परायण क्षत्रिय यदि याचना करें।
वर्जित है क्षत्रिय को, इसकी सभी वेद भर्त्सना करें॥
कन्या मुझे सौंपकर नृप, दृढ़ करें सुहृदता का नाता।
किंतु हमारे यहां शुल्क बदले में नहीं दिया जाता॥ ४०॥

नृप बोले - गुणधाम, आपके वक्षस्थल पर रमा रहे।
नहीं आप जैसा कोई भी, बात श्रेष्ठ की कौन कहे॥४१॥

कन्या को वर श्रेष्ठ मिले, मैंने प्रण किया इसी कारण।
जिससे हो सकता है वर के बल-पौरुष का निर्धारण॥४२॥

सात बैल, हे कृष्ण! परीक्षा लेने मैंने रख छोड़े।
अंग और उत्साह उन्होंने राजकुमारों के तोड़े॥४३॥

नाथ! आप यदि इन्हें नाथ लें, इनको अपने वश कर लें।
श्रीपति आप श्रेष्ठ पति होंगे, मेरी कन्या को वर लें॥४४॥

प्रभु ने कमर कसी फिर अपने जैसे सात रूप धारे।
प्रभु ने वश में किए बैल, 'दुर्दांत' हो गए 'बेचारे'॥४५॥

ओजहीन, हतबल बैलों को प्रभु इस तरह बांध लाये।
जैसे बैल काठ के, बालक खींचे, खेले, सुख पाये॥४६॥

कन्यादान किया विस्मित एवं अति-आनंदित नृप ने।
पाणिग्रहण किया प्रभु ने, सत्या के सत्य हुए सपने॥४७॥

थी प्रसन्न रानियां, कृष्ण जैसा पति कन्या ने पाया।
सब प्रसन्न थे कोसलपुर में, उत्सव का अवसर आया॥४८॥

वस्त्राभूषण पहन नए, नाचें नर-नारी सजे-धजे।
विप्रों ने आशीष दिया, समवेत नगाड़े-ढोल बजे॥४९॥

राजा ने दहेज में दीं बेटी को दस सहस्त्र गायें।
दे दीं स्वार्णाभूषणधारी तीन हजार सेविकाएं॥५०॥

नौ हजार हाथी, नौ लाख रथी, थे नौ करोड़ घोड़े।
थे सेवक नौ अरब, सदा सेवा में खड़े हाथ जोड़े॥५१॥

रथ पर बैठाया वर-वधु को, भेजी साथ बड़ी सेना।
द्रवित हुआ नृप हृदय स्नेह से, आखिर हृदय-हृदय है ना॥५२॥

वे नृप जो वृषभों के मारे, जो यदुवीरों से हारे।
कन्या का रास्ता रोकने, आये सारे के सारे॥५३॥

तब लेकर गांडीव पार्थ, हो गए खड़े प्रभु के आगे।
नृप-गण ऐसे भागे जैसे, सिंह को देख हिरण भागे॥५४॥

दान-दहेज और सत्या को ले द्वारका कृष्ण आये।
हुए प्रवृत्त गृहस्थ धर्म में, यदुकुल में मंगल छाये॥५५॥

थी भद्रा, श्रुतकीर्ति-सुता, जो थीं प्रभु की दूरस्थ बुआ।
सन्तर्दन की सहमति से भद्रा का प्रभु से ब्याह हुआ॥५६॥

शुभलक्षणा मद्र नृप तनया, लक्ष्मणा जो कहलाये।
जैसे गरुड़ सुधा को लाये, प्रभु उसको भी हर लाये॥५७॥

राजन् कृष्ण सहस्त्रों अन्य युवतियों के पति कहलाये।
भौमासुर का वध कर जिनको बंदीगृह से छुड़वाये॥५८॥

उनसठवां अध्याय

भौमासुर का उद्धार और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओं के साथ श्रीकृष्ण का विवाह

नृप ने कहा - कैद रखता था जो भौमासुर कन्यायें।
प्रभु ने क्यों, कैसे उसका वध किया, कृपा कर बतलायें॥१॥

शुक बोले - भौमासुर ने देवों से मणि-पर्वत छीना।
छत्र और कुंडल भी छीने, कठिन किया उनका जीना॥

की प्रार्थना इन्द्र ने प्रभु से नष्ट करें भौमासुर को।
गरुड़ारूढ़ सत्यभामा-प्रभु, चले प्राग्ज्योतिषपुर को॥ २॥

शस्त्र दुर्ग, गिरि दुर्ग, अग्नि का घेरा, फिर जल की खाई।
मुर के जाल हजारों थे, थी कदम-कदम पर कठिनाई॥ ३॥

गिरि के गढ़ पर गदा, शस्त्र-गढ़ पर शर चले नाशकारी।
कटे चक्र से अग्नि, वायु, जल के घेरे बारी-बारी॥
मुर दानव ने लगा रखे थे जो अकाट्य जाली-जाले।
प्रभु ने अपनी असि से वे सारे अवरोध काट डाले॥ ४॥

शंख-घोष से यंत्र विदीर्ण हुए, घबराये रखवाले।
गदा-प्रहार किया प्रभु ने परकोटे सुदृढ़ तोड़ डाले॥ ५॥

प्रभु के पांचजन्य की थी ध्वनि तीव्र, तीक्ष्ण प्रलयंकारी।
जल में सोया था, मुर जागा, आया पंच शीशधारी॥ ६॥

प्रलय-काल के सूर्य-अग्नि जैसा था तेज प्रखर भारी।
था इतना विकराल आंख भी उठा न सकें जीवधारी॥
जैसे सर्प गरुड़ पर झपटे, वह दौड़ा त्रिशूल को ले।
खा जायेगा तीन लोक को, ऐसे पांचों मुंह खोले॥ ७॥

चला त्रिशूल गरुड़ पर, मुर फिर पांचों मुंह से चिल्लाया।
उसका शब्द समूची धरती, दसों-दिशाओं में छाया॥ ८॥

आता देख त्रिशूल, गरुड़, की ओर, कृष्ण ने धनुष लिया।
बाण चलाये दो, त्रिशूल को तीन भाग में बांट दिया॥
प्रभु ने फिर बाणों की वर्षा मुर के खुले मुखों में की।
क्रोधित होकर मुर ने प्रभु पर अपनी श्रेष्ठ गदा फेंकी॥ ९॥

मुर की गदा देख प्रभु ने फेंकी निज गदा शक्तिशाली।
जिसने मुर की गदा बीच में टुकड़े-टुकड़े कर डाली॥
हुआ निहत्था, हाथ उठाकर प्रभु की ओर चला ज्यों ही।
चक्र चलाकर प्रभु ने काटे उसके पांचों सिर त्यों ही॥ १०॥

सिर कटते ही मर कर मुर यों जल में गिरा अहंकारी।
इन्द्र-वज्र से शिखर कटे तो गिरता जैसे गिरि भारी॥
मुर के सात पुत्र थे, ताम्र, विभावसु, श्रवण धनुर्धारी।
अंतरिक्ष, नभस्वान, अरुण, वसु सारे हुए दुखी भारी॥
दैत्य पीठ को बना सैन्यपति, सातों ने की तैयारी।
भौमासुर से आज्ञा ले, प्रभु पर आक्रमण किया भारी॥ ११-१२॥

लगे चलाने बाण, गदा, असि, शक्ति, त्रिशूल सभी मिलकर।
प्रभु की शक्ति अनंत, शस्त्र सब काटे प्रभु ने तिल-तिलकर॥ १३॥

सेना नायक पीठ आदि को प्रभु ने यमपुर पहुंचाया।
क्षत-विक्षत शव देखे, भौमासुर को बहुत क्रोध आया॥ १४॥

लेकर साथ हाथियों का दल भौमासुर बाहर आया।
नभ में गरुड़ारूढ़ कृष्ण को सपत्नीक उड़ते पाया॥
लगा कि नभ में शोभा पायें, श्याम-मेघ एवं बिजली।
भौमासुर ने क्रोधित होकर, दिव्य शतघ्नी शक्ति चली॥ १५॥

प्रभु ने बाण चलाये, था हर बाण तीक्ष्ण एवं पैना।
मरने लगे अश्व, गज, कटकर गिरने लगी दैत्य सैना॥ १६॥

प्रभु पर गए चलाये जो भी आयुध अस्त्र-शस्त्र सारे।
प्रभु ने काटे सभी, एक पर प्रभु ने तीन तीर मारे॥ १७॥

मार रहे थे गरुड़ गजों को, पंजे, चोंच और डैंने।
हाथी पीड़ित हुए चोट गहरी करते थे नख पैंने॥ १८॥

आर्तनाद करते सब हाथी, भाग घुसे वापस पुर में।
लड़ता रहा अकेला, था बलवीर्य बहुत भौमासुर में॥ १९॥

फेंकी शक्ति गरुड़ पर जिससे वज्र इन्द्र का था हारा।
गरुड़ अटल थे जैसे गज को फूलों का गजरा मारा॥ २०॥

सारे उद्यम विफल देख नरकासुर तनिक न घबराया।
प्रभु पर दिव्य त्रिशूल फेंकने का मन में विचार आया॥
इसके पूर्व कि वह प्रभु पर अपना दिव्यास्त्र चला पाता।
प्रभु ने चक्र चलाकर किया समाप्त शीश-धड़ का नाता॥ २१॥

भौमासुर का शीश भूमि पर गिरा किरीट-मुकुट वाला।
गिरे भूमि पर उज्ज्वल-कुंडल, सुंदर-आभूषण, माला॥
असुरों ने की हाय-हाय, सब ऋषि-गण साधु-साधु गाये।
स्तुति की इन्द्र ने, पुष्प प्रभु पर देवों ने बरसाये॥ २२॥

भौमासुर मृत हुआ, कृष्ण से मिलने भू-देवी आईं।
वनमाला के साथ वैजयन्ती माला भी पहनाईं॥
छत्र वरुण का और अदिति के कुंडल प्रभु को लौटाये।
एक महामणि भी दी प्रभु को, प्रभु संतुष्ठ नजर आये॥ २३॥

प्रभु को किया प्रणाम धरा ने, यथायोग्य सम्मान किया।
हाथ जोड़कर भक्ति-भाव से प्रभु का स्तुति-गान किया॥ २४॥

पृथ्वी बोली - देवेश्वर स्वीकार करें मेरा वंदन।
भक्तों की इच्छायें पूरी करने वाले यदुनंदन॥ २५॥

नमस्कार है कमल-नाभि को, नमन कमल-मालाधारी।
कमल-नयन को नमन, कमल जैसे चरणों पर बलिहारी॥ २६॥

हे भगवन्, हे विष्णु, कृष्ण हे, वासुदेव जग के स्वामी।
परम पुरुष हे, आदिबीज हे, ज्ञान-रूप अंतर्यामी॥ २७॥

अज हैं, जन्म जगत को देते, सभी शक्तियों को धारें।
परमपिता हे परम-आत्मा, वंदन मेरा स्वीकारें॥ २८॥

रजस जगत को रचे, तमस की वृद्धि जगत का नाश करे।
सत्व करे पालन, प्रभु रहते तीन गुणों से सदा परे॥ २९॥

मन, इन्द्रिय, जल, अग्नि, वायु, नभ, सभी देवगण, मैं धरती।
समाविष्ठ है सभी आप में, भ्रमवश पृथक दिखा करती॥ ३०॥

यह भगदत्त, भौम का सुत है, इसके भय को दूर करें।
चरण-शरण में लायी हूँ, इसके सिर पर कर-कमल धरें॥ ३१॥

शुक बोले - सुन विनय धरा की, प्रभु ने उसको अभय दिया।
फिर उसके सम्पन्न महल में, उसके साथ प्रवेश किया॥ ३२॥

वहां राज-कन्यायें थीं, सोलह सहस्त्र बंदी-गृह में।
छीनीं थीं नरकासुर ने, रहते थे नृपति डरे सहमें॥ ३३॥

पुरुष-श्रेष्ठ को देख हो गईं, मोहित सारी कन्यायें।
लगी मनाने भाग्य, परम-प्रिय प्रभु के जैसा पति पायें॥ ३४॥

पृथक-पृथक प्रत्येक राज-कन्या थी प्रभु पर बलिहारी।
मनहर को मन हारीं सारीं, प्रभु को पति माने सारी॥ ३५॥

भेजी गई द्वारका, शृंगारित कर सारी कन्यायें।
ले अटूट सम्पदा, साथ में रथ एवं घोड़े जायें॥ ३६॥

ऐरावत कुल के सफेद हाथी प्रभु को भारी भाये।
चार दांत वाले चौसठ गज, गए द्वारका पहुँचाये॥ ३७॥

साथ सत्यभामा के प्रभु फिर देवराज के गृह आये।
दिए अदिति के कुंडल वापस, सपत्नीक पूजा पाये॥ ३८॥

पारिजात प्रिय लगा सत्यभामा को, प्रभु ने प्राप्त किया।
देवों का प्रतिरोध शक्ति से प्रभु ने वहीं समाप्त किया॥ ३९॥

बाग सत्यभामा का पाकर पारिजात शोभा पाये।
पाने को पराग भंवरे, तज स्वर्ग द्वारका में आये॥ ४०॥

रखा किरीट कृष्ण चरणों में, जब सुरेश को काम पड़ा।
निकल गया जब काम, कृष्ण से लड़ने को हो गया खड़ा॥
तमोगुणी हैं देव, हो गए धन के कारण अभिमानी।
धन तो है धिक्कार योग्य, यह बात न देवों ने जानी॥ ४१॥

जितनी थी कन्यायें उतने रूप कृष्ण ने प्रकटाये।
एक समय में ब्याह सभी के हुए, कृष्ण सबने पाये॥ ४२॥

सबके भवनों में थी सब सामग्री, सभी व्यवस्थाएँ।
हर कन्या के साथ कृष्ण थे, सब गृहस्थ का सुख पाएं॥
सभी रमा का अंश रूप थीं, सभी कृष्ण से प्यार करें।
प्रभु भी साधारण मानव जैसा उनसे व्यवहार करें॥ ४३॥

प्रभु का जो स्वरूप ब्रह्माजी को भी समझ नहीं आया।
कन्याओं ने पति स्वरूप में उन्हीं रमापति को पाया॥
प्रेम और आनंद वृद्धि पाये तो प्रेमालाप बढ़ा।
चितवन में लज्जा आई, संगम-सुख अपने आप बढ़ा॥ ४४॥

थीं सैकड़ों दासियां पर वे प्रभु का स्वयं ध्यान धरतीं।
आसन देतीं, पद पखारतीं, पद की थकन दूर करतीं॥
शयन, स्नान, भोजन करवातीं, पान खिलातीं, सुख पातीं।
चंदन लगा, हार पहनातीं, उत्तम गृहणी कहलातीं॥ ४५॥

साठवां अध्याय

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी संवाद

बोले श्रीशुक - राजन! प्रभु श्रीकृष्ण जगद्गुरु कहलायें।
एक दिवस रुक्मिणी भवन में सुनो, हुईं जो चर्चायें।
सेवा में संलग्न वहां थीं यद्यपि कई सेविकाएं।
पर रुक्मिणी स्वयं पंखा झलकर प्रभु को सुख पहुंचाएं॥ १॥

जो प्रभु प्रभव-प्रलय करते, इस जग का संचालन करते।
यदुकुल में अवतीर्ण कृष्ण, मर्यादा का पालन करते॥ २॥

गृह में शोभित शुभ्र-चंदोबों में झिलमिल करते मोती।
मणियों के दीपक थे जिनकी आभा भी जगमग होती॥ ३॥

बेला और चमेली के हारों पर भौंरे मंडरायें।
और झरोखों की जाली से शशि-किरणें भीतर आयें॥ ४॥

पारिजात की सुरभि प्राप्त कर मंद पवन भीतर आता।
अगर-धूप का धुआं झरोंखों से होकर बाहर जाता॥ ५॥

कृष्ण पलंग पर, दुग्ध-फेन-से धवल बिछावन पर बैठे।
थी रुक्मिणी भाग्यशाली, पति बनकर परमेश्वर बैठे॥ ६॥

लेकर चंवर सेविका से, रुक्मिणी पास में खड़ीं हुईं।
झलने लगी चंवर प्रभु पर जिसमें थी मणियां जड़ीं हुईं॥ ७॥

चंवर युक्त कर में शोभित थे कंगन और मुद्रिकाएं।
मणिमंडित नूपुर चरणों में रुनझुन कर शोभा पाएं॥
कंठ हार तक जाती आंचल से कुच-कुंमकुम की लाली।
थी नितम्ब पर सजी करधनी, मोती की लड़ियों वाली॥ ८॥

सुन्दर मुख, मुस्कान मधुर ज्यों सुधा, सुधाकर बरसाये।
स्वर्णजड़ित कुंडल अलकों के बीच विलक्षणता पाये॥
प्रभु अवतरित हुए कमला ने भी अनुकरण किया आकर।
उन्हें परायण पाकर, हो प्रसन्न प्रभु बोले मुस्काकर॥ ९॥

प्रभु ने कहा - तुम्हें पाने कितने नृप थे डेरा डाले।
बल, उदारता, सुन्दरता वाले, भारी वैभव वाले॥ १०॥

नहीं सुनी याचना नृपों की, नहीं पिता का वचन सुना।
क्यों समानता वालों को तजकर मुझ-सा असमान चुना॥ ११॥

सागर में छुपकर रहते, रण को छोड़ा भय के मारे।
सिंहासन से वंचित हैं, वैरी है नृपति बहुत सारे॥ १२॥

लोग न जाने रीति हमारी, किस पथ का अनुसरण करें।
दुख पातीं स्त्रियां सदा, जो हम जैसों का वरण करें॥ १३॥

हम निर्धन हैं सदा-सदा के, निर्धन हमें प्रेम करते।
हमको भी निर्धन ही प्रिय हैं, ध्यान न धन वाले धरते॥ १४॥

सदा मित्रता के, विवाह के, नाते वही सफल होते।
दोनों पक्षों के समान कुल, ऐश्वर्य, धन, बल होते॥
अपने से ऊंचे या नीचे से यदि किया गया नाता।
हो असमान विवाह, मित्रता, नाता अधिक न चल पाता॥ १५॥

राजकुमारी तुमने बिना विचारे यह आचरण किया।
मान याचकों की बातें, गुणहीन कृष्ण का वरण किया॥ १६॥

किसी श्रेष्ठ क्षत्रिय का कर लो वरण तुम्हें जो भी भाये।
दोनों लोक सुधर जायें, हर इच्छा पूरी हो जाये॥ १७॥

जरासंध, शिशुपाल, शाल्व सब, हैं रुक्मी के सहयोगी।
सारे मेरे द्वैषी हैं, यह बात ज्ञात तुमको होगी॥ १८॥

दर्प-भंग करने दुष्टों का, मैंने किया शस्त्र-धारण।
और तुम्हारा हरण किया था, मैंने देवि इसी कारण॥ १९॥

लोलुप-कामुक नहीं, दीप के जैसे उदासीन रहते।
पूर्ण-काम हैं आत्म निरीक्षण में ही सदा लीन रहते॥ २०॥

शुक बोले - अभिमान रुक्मिणी में पाया था इस कारण।
गर्व मिटाने को यह सब कह, प्रभु ने किया मौन धारण॥ २१॥

सुन प्रभु की अप्रिय बातें भयभीत हो गई कल्याणी।
सुनी न थी पति-परमेश्वर से, पहले ऐसी कटु वाणी॥
धड़कन बढ़ी, लगीं वे रोने, सुन-सुनकर प्रभु के ताने।
चिंता के अगाध सागर में लगीं डूबने-उतराने॥ २२॥

चरण, कमल जैसे कोमल, था रंग नखों का रतनारा।
नख से भूमि कुरेद रहीं थीं, बहने लगी अश्रु-धारा॥
धुला वक्ष का कुंमकुम-केसर-अंजन मिश्रित अश्रु बहे।
हुईं अवाक् झुकाया सिर को, बिना एक भी शब्द कहे॥ २३॥

बुद्धि विनष्ट हुई कुछ ऐसे दुख, भय, शोक नितान्त घिरा।
खिसक गया कर से कंगन, दूसरे हाथ से चंवर गिरा॥
हो अचेत गिर गईं भूमि पर, बिखरीं अलकें घुघराली।
जैसे तेज हवा चलने से गिरती कदली की डाली॥ २४॥

दशा देख हो गए द्रवित करुणाकर, करुणा के कारण।
समझ गए प्रभु हास्य नहीं समझी, है प्रेम असाधारण॥ २५॥

उठे पलंग से, उन्हें उठाया, प्रभु थे चार भुजा वाले।
केश संवारे दो हाथों से, दो से अश्रु पौंछ डाले॥ २६॥

अश्रु आंख के पौंछे, अश्रुसिक्त वक्षस्थल साफ किया।
फिर बांहों में भरकर अपने वक्षस्थल से लगा लिया॥ २७॥

दीन-दशा में दीनबंधु ने देवि-रुक्मिणी को पाया।
तब सांत्वना-श्रेष्ठ-प्रभु ने, कर कृपा प्रिया को समझाया॥ २८॥

प्रभु बोले है ज्ञात मुझे तुम मेरी सदा परायण हो।
मैंने किया विनोद ताकि तुम क्रोधित हो कुछ शब्द कहो॥ २९॥

मुझे देखना था ओंठों का कम्पन, आंखों की लाली।
क्रोध भरी तिरछी भौंहें, मुख को सुन्दर करने वाली॥ ३०॥

हम गृहस्थ घर में रहकर इतना ही लाभ उठाते हैं।
कर विनोद, भयभीत पत्नियों को दुख दे, सुख पाते हैं॥ ३१॥

शुक बोले - जब देवि-रुक्मिणी को आश्वासन प्राप्त हुआ।
समझ गई यह सब विनोद था, भय सम्पूर्ण समाप्त हुआ॥ ३२॥

थीं प्रसन्न, लज्जित भी थीं, परिहास-हास में क्यों रो लीं।
प्रभु को देख प्रेम से देवि-रुक्मिणी फिर हँसकर बोलीं॥ ३३॥

वे बोलीं - हे कमल-नयन, महिमामय, त्रिगुणों के स्वामी।
मैं कैसे समान हो सकती, प्रभु अनंत, मैं अनुगामी॥
प्रभु ब्रह्मादि सुरों से सेवित, पूर्णकाम अंतर्यामी।
मैं गुणमयी प्रकृति हूँ, मेरा पीछा करें मूर्ख कामी॥ ३४॥

सच है सागर में रहते हैं, और नृपतियों का डर है।
तीनों गुण है नृपति, आपकी अंतरात्मा सागर है॥

वे नृप हैं इन्द्रिय-रस जिनको प्रभु ने अपना शत्रु कहा।
आप, आपके भक्तों को कब सिंहासन से मोह रहा॥ ३५॥

मार्ग नहीं स्पष्ट, सत्य है, जो प्रभु पद-पराग पाते।
उनका मार्ग पृथक होता, नर-पशु उस ओर नहीं जाते॥
लौकिक नहीं आप यह सच है, पर यह लोक कहां टिकता।
आप, आपके भक्त अलौकिक, नहीं जानते लौकिकता॥ ३६॥

कहा स्वयं को निर्धन प्रभु ने, प्रभु हर धन का साधन हैं।
निर्धन प्रभु को पूजें, उन निर्धन का तो प्रभु ही धन हैं।
प्रभु उनको प्यारे हैं, प्रभु भी उनको सदा प्रेम करते।
जो धनाड्य हैं, धन के अंधे, धन का सदा ध्यान धरते॥ ३७॥

उनको मिलते चारों फल, जो जन प्रभु से अनुराग करें।
बुद्धिमान जन प्रभु को पाने, सब विषयों का त्याग करें॥
प्रभु का वही समाज, सदा जो प्रभु में ही अनुरक्त रहे।
उनका पृथक समाज सदा जो विषयों में आसक्त रहे॥ ३८॥

चुना आपको ऐसे संतों की अनुशंसा के कारण।
करते नहीं किसी को दण्डित, वे अत्यंत असाधारण॥
आत्म-रूप हैं आप, आपसे प्रेमी आत्मदान पायें।
प्रभु का भृकुटि-विलास देख नृप क्या सुर त्यागें इच्छायें॥ ३९॥

राजाओं के भय का सारा दृश्य घटा मेरे आगे।
सुन शार्ङ्ग धनुष की ध्वनि को, हो भयभीत नृपति भागे॥
और आप मुझ दासी को इस तरह हरण कर ले आये।
सिंह गर्जन कर सबको हड़काये, अपना हिस्सा पाये॥ ४०॥

सत्य नहीं यह, जो प्रभु का अनुसरण करे वह दुख पाये।
अंग, भरत, पृथु, गय, ययाति नृप, प्रभु की सभी शरण आये॥
सभी नृपों ने राज्य छोड़ कर मार्ग आपका अपनाया।
श्रेष्ठ नृपों ने प्रभु को पाया, नहीं किसी ने दुख पाया॥ ४१॥

अन्य कहां जाऊं जब मैंने, प्रभु पद-कमल-सुरभि पा ली।
जो है जग के पाप-ताप से सदा मुक्त करने वाली॥
श्री के आश्रय स्थल को तज, कौन अन्य का वरण करे।
जहां जीव भय, रोग युक्त हैं, सदा प्रतीक्षा मरण करे॥ ४२॥

मेरे तो अनुरूप आप हैं, जगदीश्वर जग के स्वामी।
जो भी मिले कर्मफल सदा रहूंगी प्रभु की अनुगामी॥
जो अपने भक्तों को मिथ्या-जग-भ्रम से निवृत्त करते।
मैं हूँ उनकी शरण, भक्त-हित में जो मनुज-रूप धरते॥ ४३॥

वरण हेतु प्रभु ने जिन राजाओं के नाम सुझाए हैं।
वे हैं क्रीत-दास, खर, वृषभ, विडाल वृत्तियां पाये हैं॥
इनसे तो विवाह कर सकती है वह अभागिनी नारी।
प्रभु की लीला सुनी न जिसने, गाती जिसे सृष्ठि सारी॥ ४४॥

तन के बाहर त्वचा, केश, नख आदि बढ़ाते सुन्दरता।
अंदर अस्थि, मांस, मल-मूत्र, रक्त, कफ आदि रहा करता॥
ऐसे तन को पति प्रियतम, माने वह अभागिनी नारी।
चरण-कमल-मकरंद-गंध जो सूंघ न पाई बेचारी॥ ४५॥

उदासीन हैं, संभव है, मुझ पर न आपकी दृष्टि पड़े।
चरण-कमल की सेवा कर पाऊं तो होंगे भाग्य बड़े॥
विश्व-वृद्धि के लिए रजोगुण को जब प्रभु स्वीकार करें।
मुझ पर दृष्टि डालते जब, मुझ पर यथेष्ट उपकार करें॥ ४६॥

किसी अन्य का वरण करूं यह बात आपने सत्य कही।
जीते जाने पर भी अम्बा को, प्रेमी में प्रीत रही॥ ४७॥

मन विवाहिता का यदि नए-नए पुरुषों में जाता है।
उस कुलटा को जो अपनाता, दोनों लोक गंवाता है॥ ४८॥

प्रभु बोले - सुकुमारी तुम्हें सताने की कोशिश क्या की।
तुमने उन सारी बातों की, सचमुच सही व्याख्या की॥ ४९॥

कामनाएं सब पूर्ण तुम्हारी हो जाती हैं सुकुमारी।
कामनाएं ऐसी होती जो काटें बंधन संसारी॥ ५०॥

देख लिया पति-प्रेम तुम्हारा और अटल पति-व्रत देखा।
कहीं अनर्गल बातें फिर भी, तुम्हें प्रेम में रत देखा॥ ५१॥

विषय-भोग के लिए लोग कुछ, करते हैं मेरा वंदन।
वे माया से मोहित, मोक्ष प्रदाता से मांगे बंधन॥ ५२॥

मैं अपवर्ग सम्पदाओं का आश्रय और प्रदाता हूँ।
पर लोगों को विषय-भोग का ही अभिलाषी पाता हूँ॥
विषय-भोग की इच्छा वाले नीच योनियों में जाते।
विषय-भोग है नर्क, नर्क में भी ये प्राणी सुख पाते॥ ५३॥

तुमने मेरी सेवा की है, उत्तम गृहिणी के नाते।
मुक्ति दिलाये जो सेवा, साधारण लोग न कर पाते॥
दूषित जिनकी अभिलाषाएं वे दूषित प्रपंच रचतीं।
विषय-भोग को छोड़, मुक्ति का मार्ग ढूढ़ने से बचतीं॥ ५४॥

जितना प्रेम तुम्हारा मुझसे, किसी अन्य का नहीं सुना।
सिर्फ प्रशंसा सुनकर तुमने, मुझको देखे बिना चुना॥
जैसे ही विवाह करने राजाओं का समूह आया।
गोपनीय संदेश विप्र को देकर तुमने भिजवाया॥ ५५॥

पाकर भी संदेश तुम्हारा मैं कुछ देरी से आया।
तुमने ऐसे समय समूची संसृति को सूना पाया॥
नहीं अन्य के लिए देह यह, सोचा तन त्यागा जाये।
स्वागत योग्य प्रेम है, जिसका ऋण हम चुका नहीं पाये॥५६॥

किया तुम्हारा हरण, विरुप किया भाई को, जब हारा।
फिर अनिरुद्ध-विवाहोत्सव में मारा गया राम द्वारा॥
पति-वियोग के भय से तुमने सारे दारुण कष्ट सहे।
मैं हो गया तुम्हारे वश में, सिर्फ प्रेम की कौन कहे॥५७॥

शुक बोले - जगदीश्वर करते ऐसी ही नर-लीलाएं।
दाम्पत्य-जीवन में भरतीं रस, रसपूर्ण वार्ताएं॥५८॥

इसी तरह की लीलाएं देखा करतीं सब ललनाएं।
प्रभु गुरु हैं संसृति के सबको प्रभु की लीलाएं भाएं॥५९॥

इकसठवां अध्याय

श्रीकृष्ण की संतति का वर्णन तथा अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का मारा जाना

बोले शुक - हर प्रभु-पत्नी ने दस-दस पुत्रों को जाया।
रूप और बल प्रभु जैसा पाया, प्रभु जैसी थी काया॥१॥

सदा साथ में रहते थे प्रभु, थी भ्रम में सारी रानी।
खुद को सबसे प्यारी मानें, प्रभु-महिमा से अनजानी॥२॥

वे प्रभु के मुख-कमल, कर्ण-स्पर्शी-नयन, दीर्घ बाहें।
चितवन चारु, मधुर मुस्काहट, मीठी वाणी को चाहें॥
प्रभु को आकर्षित करने, श्रृंगार करें बहुविधि नाना।
किंतु कठिन था आत्म-रमण-रत प्रभु का हृदय जीत पाना॥३॥

सब सुन्दर चितवन वालीं, सोलह सहस्त्र थीं ललनाएं।
मुस्कायें, नयनों के बाण चलायें, प्रभु को ललचाएं॥
थी निष्फल सब काम कलाएं, प्रभु पर क्या जादू चलता।
नहीं हो सकी पैदा प्रभु के मन-इन्द्रिय में चंचलता॥४॥

ब्रह्मा आदि देवगण को मोहित रखती प्रभु की माया।
भाग्यवान ललनाओं ने मायापति जैसा पति पाया॥
मधु-मुस्कान, मधुर-चितवन से बढ़तीं काम-लालसायें।
करें निरंतर प्रभु की सेवा, जिससे अधिक प्रेम पायें॥५॥

थीं सैकड़ों दासियां पर वे प्रभु का पूर्ण ध्यान धरतीं।
आसन देतीं, पग पखारतीं, पद की श्रांति दूर करतीं॥
स्नान करातीं, इत्र लगातीं, पुष्पहार भी पहनातीं।
भोजन, शयन करातीं, प्रभु को पान खिलातीं, सुख पातीं॥६॥

जैसा कहा पूर्व में, थीं हर रानी की दस संतानें।
थीं पटरानी आठ, नाम उनके पुत्रों के अब जानें॥७॥

पहले पुत्र रुक्मिणी के प्रद्युम्न काम के अवतारी।
चारुदेष्ण एवं सुदेष्ण थे, चारुगुप्त थे जयकारी॥८॥

चारुदेह थे, चारुचंद थे, भद्रचारु थे बलशाली।
चारु, विचारु, सुचारु सभी की देहयष्टि थी प्रभुवाली॥९॥

पुत्र सत्यभामा के भानु, सुभानु प्रभानु मनोहारी।
वृहद्भानु, स्वर्भानु, भानुमन, चन्द्रभानु की छबि न्यारी॥ १०॥

दो छोटे अतिभानु और प्रतिभानु साथ पाये जाते।
जाम्बवती के पुत्र साम्ब, वसुमान, द्रविड़, क्रतु कहलाते॥ ११॥

थे सहस्त्रजित, शतजित, पुरुजित यथानाम थे गुण वैसे।
चित्रकेतु, वसुमान, विजय थे दिखने में प्रभु के जैसे॥ १२॥

सत्या के दस पुत्र चन्द्र, बसु, वीर, शंकु, वृष, आम हुए।
अश्व, कुन्ति, चित्रगु, वेग जैसे पुत्रों के नाम हुए॥ १३॥

भद्र, सुबाहु, शांति, वृष, कवि, श्रुत, दर्श और सोमक सारे।
पूर्णमास था, और वीर, थे कालिंदी के सुत प्यारे॥ १४॥

उर्ध्वग, सिंह, बल, प्रबल, ओज, सह, महाशक्ति अपराजित भी।
गात्रवान एवं प्रघोष थे, लक्ष्मणा के पुत्र सभी॥ १५॥

पुत्र मित्रविन्दा के वृक, गृध, अनिल, हर्ष, वर्धन पावन।
थे क्षुधि, वह्नि, महाश और अन्नाद सभी थे मनभावन॥ १६॥

भद्रा के सुत, शूर, आयु, सत्यक, जय, भद्रक, वाम हुए।
वृहत्सेन, संग्रामजीत, अरिजीत, प्रहरण नाम हुए॥ १७॥

दस-दस पुत्र रोहिणी जैसी अन्य रानियों ने पाये।
ताम्रतप्त तेजस्वी, दीप्तमान बलशाली कहलाये॥
रुक्मी, नृपति भोजकट के थे, देवि-रुक्मिणी के भाई।
उनकी पुत्री रुक्मवती, प्रद्युम्न पत्नि बनकर आई॥
उनका सुत अनिरुद्ध, हुआ बलशाली जिसको जग जानें।
प्रभु की थी रानियां सहस्त्रों कोटि-कोटि थी संतानें॥ १८-१९॥

राजा ने पूछा - रुक्मी अपमानित हुआ कृष्ण द्वारा।
बदला लेने की कोशिश में समय बिताता था सारा॥
रुक्मवती-प्रद्युम्न किस तरह बंधे ब्याह के बंधन में।
वैवाहिक संबंध बना कैसे रुक्मी-यदुनंदन में॥ २०॥

वर्तमान-गत-आगत और अतीन्द्रिय को देखें योगी।
बतलायें, यह बात आपसे मुनिवर नहीं छुपी होगी॥ २१॥

शुक बोले - प्रद्युम्न काम साक्षात, काम की छबि पाई।
रुक्मवती ने उन पर मोहित हो वरमाला पहनाई॥
किया परास्त उन्हें, जिन नृपगण ने किंचित बाधा डाली।
हर कर रुक्मवती को ले आये प्रद्युम्न शक्तिशाली॥ २२॥

अपमानित रुक्मी के मन में प्रभु के प्रति था वैर बड़ा।
किंतु रुक्मिणी को खुश करने, पुत्री को ब्याहना पड़ा॥ २३॥

पुत्री एक रुक्मिणी की भी थी, विशाल नेत्रों वाली।
कृतवर्मा के पुत्र बली को, उसने वरमाला डाली॥ २४॥

प्रभु से रखकर वैर, रुक्मिणी को प्रसन्न करना चाहा।
रुक्मी ने अनिरुद्ध संग बेटे की बेटी को ब्याहा॥
वर्जित था अनिरुद्ध-रोचना का संबंध धर्म द्वारा।
किंतु प्रेम के बंधन में बंधकर रुक्मी ने स्वीकारा॥ २५॥

कृष्ण, राम, रुक्मिणी, साम्ब, प्रद्युम्न सभी अवसर पाये।
होने को शामिल विवाह में सभी भोजकट पुर आये॥ २६॥

हुआ ब्याह निर्विघ्न, कलिंग नृप ने रुक्मी को भड़काया।
बल को करो पराजित पांसों में, तुमने मौका पाया॥ २७॥

नहीं खेलना आता था, लेकिन बल को था व्यसन बड़ा।
रुक्मी का अनुरोध मान, यह खेल उन्हें खेलना पड़ा॥ २८॥

बल ने पहले सौ, सहस्त्र, फिर दस सहस्त्र का दांव चला।
जीत गया रुक्मी, आती थी उसको पूरी द्यूत कला॥
दांत दिखाकर हंसा कलिंग नृप, जब रुक्मी जीता बाजी।
यह उपहास देखकर आई बल के मन में नाराजी॥ २९॥

एक लाख मुद्राएं रखीं दांव पर फिर रुक्मी खल ने।
और लगा कहने मैं जीता, यद्यपि जीता था बल ने॥ ३०॥

ज्वार बढ़े ज्यों पूर्ण चंद्र पर, क्रुद्ध हुए बलराम बली।
करके आंखें लाल दांव पर दस करोड़ की चाल चली॥ ३१॥

जीत गए बलराम किंतु रुक्मी था छल करने वाला।
खुद को जीता कह कर, निर्णय धूर्त कलिंग नृप पर डाला॥ ३२॥

जीते हैं बलराम दांव को, ऐसी हुई गगन-वाणी।
और बताया देवताओं ने रुक्मी को झूठा प्राणी॥ ३३॥

सिर पर काल रहा, खल राजाओं का सिर पर हाथ रहा।
बल का कर उपहास, दुष्ट रुक्मी ने हंसते हुए कहा॥ ३४॥

द्यूत आप क्या जानें, वन में आप चराते थे गायें।
बाण और पांसों से तो बस केवल नृपति खेल पायें॥ ३५॥

रुक्मी का आक्षेप, कलिंग नृप का उपहास नहीं भाया।
क्रोधित बल ने मुग्दर से रुक्मी को यमपुर पहुँचाया॥ ३६॥

बल को क्रोधित देख भागने लगे नृपति हंसने वाले।
कलिंग नृपति को पकड़ा दस पग पर, फिर दांत तोड़ डाले॥ ३७॥

अन्य नृपतियों के सिर, जांघ, बांह भी मुग्दर से तोड़े।
सारे हंसने वाले, खून बहाते यहां-वहां दौड़े॥ ३८॥

रुक्मी के वध पर प्रभु चुप थे, मुश्किल था कुछ भी कहना।
बल-रुक्मिणी न हो जायें नाराज, उचित था चुप रहना॥ ३९॥

रुक्मी का वध हुआ, रोचना से अनिरुद्ध गये ब्याहे।
पूरे हुए प्रयोजन दोनों, जिस प्रकार प्रभु ने चाहे॥
फिर नवयुगल और यदुवंशी, श्रेष्ठ रथों पर बैठाये।
बल को लेकर साथ, भोजकट से प्रभु निज नगरी आये॥ ४०॥

बासठवां अध्याय

ऊषा-अनिरुद्ध मिलन

राजा ने पूछा - हे मुनि! जब मिलन उषा-अनिरुद्ध हुआ।
इस प्रसंग में कृष्ण और शिव में भी भारी युद्ध हुआ॥
विस्तृत वर्णन करें कृपा कर, इस प्रसंग का हे योगी।
आप समझ सकते हैं, मुझको कितनी उत्कंठा होगी॥ १॥

शुक बोले - बलि ने वामन को धरा दान में दी सारी।
बलि के थे सौ पुत्र, बाण था बड़ा, सहस्त्र भुजाधारी॥ २॥

शिव का भक्त अनन्य, सत्य-व्रतधारी, दृढ़-प्रतिज्ञ भारी।
धैर्यवान एवं उदार था, आदर करे प्रजा सारी॥ ३॥

बाण अजेय नगर का नृप था, जो शोणितपुर कहलाता।
महादेव का सेवक था, सेवा देवों से करवाता॥
शिव ने तांडव किया एक दिन सुनकर वाद्य बहुत हरषे।
बाण हजार हाथ वाला था, वाद्य बजाये हर कर से॥ ४॥

हो प्रसन्न जब शिव ने पूछा, क्या इच्छा है बाण, कहो।
कहा बाण ने नगर सुरक्षित होगा, हे प्रभु यहीं रहो॥५॥

गया एक दिन बाण, पास शिव के जब लगे वहीं रहने ।
चरणों पर रख मुकुट, दर्प के साथ लगा शिव से कहने॥६॥

नमस्कार आपको जगद्गुरु, आप महेश्वर कहलायें।
कल्पवृक्ष हैं आप, सभी की करते पूर्ण कामनायें॥७॥

भार बन गई हैं प्रभु मुझको, मेरी यह सहस्त्र बाहें।
तीन लोक में कोई भी बलवान नहीं लड़ना चाहें॥८॥

गया दिग्गजों से लड़ने, वे भाग खड़े, पर नहीं लड़े।
फिर मैंने बाहों से तोड़ा, पथ में कई पहाड़ पड़े॥९॥

शिव बोले - जब पतित-पताका होगी वह दिन आयेगा।
मुझ-सा वीर लड़ेगा तुझसे, दर्प-भंग हो जायेगा॥१०॥

मूर्ख बाण आनंदित था, है बड़ा वीर आने वाला।
वीर्य-नाश करने वाले से पड़ने वाला है पाला॥११॥

बाणासुर की पुत्री ऊषा को अनिरुद्ध बहुत भाये।
जिन्हें न देखा-सुना किसी ने, केवल सपने में आये॥१२॥

टूटी नींद तो ''कहां प्राण प्यारे हो'' ऊषा चिल्लाई।
पर सखियों के बीच स्वयं को पाया तो लज्जा आई॥१३॥

था कुम्भाण्ड बाण का मंत्री, उसकी सुता चित्रलेखा।
ऊषा से पूछा उसने, जब उसको परेशान देखा॥१४॥

तुम अविवाहित हो फिर किसको ढूढ़ रही हो सुकुमारी।
सखी, तुम्हारे मन में क्या है, बतलाओ घटना सारी॥१५॥

ऊषा बोली - सपने में देखा नवयुवक मनोहारी।
था शरीर सांवला सलोना, अप्रतिम, पीताम्बरधारी॥
नेत्र कमल-जैसे, बाँहें लम्बी जो घुटनों तक जायें।
ललनाओं का चित्त चुराता, उसे देख सब ललचायें॥१६॥

मुझे पिलाया मधुर अधर-मधु, पर मैं तृप्त न हो पायी।
छोड़ मुझे दुख के सागर में, कहां गया वह सुखदायी॥१७॥

कहा चित्रलेखा ने ऊषा, मेरा एक कहा मानो।
चित्र बनाऊंगी में युवकों के, तुम प्रिय को पहचानो॥
वह है कौन, कहां रहता है, मैं यह पता लगाऊंगी।
तीन लोक में जहां कहीं हो, पास तुम्हारे लाऊंगी॥१८॥

ऊषा को उसके चित्रों में सिद्ध, असुर, सुर, यक्ष दिखे।
चारण, पन्नग, विद्याधर एवं मनुष्य प्रत्यक्ष दिखे॥१९॥

वृष्णि वंश के कृष्ण, राम, वसुदेव, शूर की छबि भायी।
जैसे ही प्रद्युम्न दिखे तो ऊषा थोड़ी शर्मायी॥२०॥

जब अनिरुद्ध दिखे ऊषा को, सिर नीचा कर मुस्कायी।
यही, यही हैं मेरे प्रियतम, यही-यही हैं चिल्लाई॥२१॥

युवक, कृष्ण का पौत्र, चित्रलेखा ने उसको पहचाना।
थी योगिनी द्वारका पहुंची, नभ में था आना-जाना॥२२॥

ले आई योगिनी, पलंग पर ही अनिरुद्ध रहे सोते।
थी संतुष्ठ योगिनी, ऊषा को देखा जब खुश होते॥२३॥

था वर्जित ऊषा के अंत:पुर में पुरुषों का आना।
हुई प्रफुल्लित प्रिय को पा, आहार-विहार करे नाना॥२४॥

वस्त्र, हार, आसन, सुगंध का सब प्रबंध ऊषा करती।
खान-पान विश्राम कराती, सेवा-शुश्रूषा करती॥ २५॥

ऊषा ने अपनी सेवा से प्रियतम का यों मन जीता।
भूल गए अनिरुद्ध कि अंत:पुर में बहुत समय बीता॥ २६॥

नृप! ऊषा-अनिरुद्ध मिले, उनकी सारी समष्टि बदली।
भंग हुआ कौमार्य, दिखे लक्षण, जब देह-यष्टि बदली॥ २७॥

रक्षक समझ गए, मिलती है किसी पुरुष से सुकुमारी।
कहा बाण को जाकर, कुल पर है कलंक की तैयारी॥ २८॥

ऊषा के अंत:पुर में रहता है सतत सख्त पहरा।
दूषित कैसे हुई राजकन्या, यह है रहस्य गहरा॥ २९॥

समाचार सुन व्यथित बाण भागा अंत:पुर में आया।
ऊषा के समीप उसने यदुनंदन को बैठे पाया॥ ३०॥

कामरूप प्रद्युम्न-पुत्र की शोभा त्रिभुवन से न्यारी।
श्याम-सलौना रंग, भुजाएं लम्बी, पीताम्बरधारी॥
कमल-नयन, घुघराली अलकों में कुंडल झिलमिल करता।
चितवन चारु, मधुर मुस्काहट, दर्शनीय थी सुन्दरता॥ ३१॥

पहने थे अनिरुद्ध गले में सुन्दर बेला की माला।
उसमें केसर लगा दिखा ऊषा के वक्षस्थल वाला॥
सजी-धजी पुत्री ऊषा के निकट उन्हें बैठे पाया।
पांसे उन्हें खेलते देखा, तो बाणासुर चकराया॥ ३२॥

समझ गए अनिरुद्ध, बाण क्यों लाया कई शस्त्रधारी।
उन्हें बांध कर ले जाने की, है असुरों की तैयारी॥
परिघ हाथ में लिया, सभी को करने वहीं धराशायी।
खड़े हो गए, काल-दण्ड ले जैसे स्वयं मृत्यु आयी॥ ३३॥

जो भी आता निकट, परिघ का पा प्रहार नीचे गिरता।
ज्यों वाराह यूथपति करता, जब वह श्वानों से घिरता॥
मार परिघ की भारी, कोई टिका नहीं उनके आगे।
टूटे शीश, भुजा, जँघा, सब सैनिक छोड़ महल भागे॥ ३४॥

सेना का संहार देख, बाणासुर खुद आगे आया।
बाण बली ने नाग-पाश में यदुनंदन को बंधवाया॥
नाग-पाश में प्रियतम को जब बांधा गया पिता द्वारा।
ऊषा हुई शोक-विह्वल, आंखों से बही अश्रु धारा॥ ३५॥

तिरेसठवां अध्याय

श्रीकृष्ण बाणासुर युद्ध

शुक बोले - बरसात व्यतीत हुई, अनिरुद्ध नहीं आये।
परिजन की आंखों में अब भी थे दुख के बादल छाये॥ १॥

शोणितपुर का घटना क्रम, जब कहा गया नारद द्वारा।
हमला करने निकल पड़ा, प्रभु-प्रेमी यदु-समाज सारा॥ २॥

राम-कृष्ण के साथ चले सात्यकि, प्रद्युम्न, साम्ब, सारण।
नंद, भद्र, उपनंद, और गद निकले किए गदा धारण॥ ३॥

बारह अक्षौहिणी सैन्य दल, जिसका ओर-न-छोर दिखे।
घेर लिया शोणितपुर को, यदुसेना चारों ओर दिखे॥ ४॥

द्वार, बुर्ज, दीवारों को जब क्षतविक्षत होते पाया।
ले उतनी ही सेना, क्रोधित बाणासुर बाहर आया॥५॥

शिवशंकर नंदी पर आये, पीछे कार्तिकेय आये।
उनसे लड़ने राम-कृष्ण जैसे योद्धा अजेय आये॥६॥

कार्तिकेय-प्रद्युम्न लड़े पर कोई पार नहीं पाये।
युद्ध कृष्ण का शिव शंकर से, अति अद्‌भुत माना जाये॥७॥

कूपकर्ण-कुम्भाण्ड आदि से, बलशाली बलराम लड़े।
सात्यकि भिड़े बाण से, बाण तनय के आगे साम्ब खड़े॥८॥

ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि-मुनि, चारण, यक्ष, अप्सरायें।
सभी विमानों पर चढ़-चढ़ कर, युद्ध देखने को आयें॥९॥

शिव-शंकर के साथ बहुत से अनुचर एवं गण आये।
भूत, प्रेत, बेताल, विनायक, जिन्हें युद्ध करना भाये॥
गुह्यक, प्रमथ, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, कुष्माण्ड आदि सारे।
क्षत-विक्षत हो भागे, प्रभु के तीखे तीरों के मारे॥१०॥११॥

जब पिनाक से शस्त्र चलाए शिव ने अति विनाशकारी।
किए कृष्ण ने शांत सभी आसानी से बारी-बारी॥१२॥

था ब्रह्मास्त्र काटने को ब्रह्मास्त्र, अग्नि-पर्जन्य लड़े।
वायव्यास्त्र चला तो, पर्वतास्त्र से पर्वत किए खड़े॥
पाशुपतास्त्र चलाया शिव ने, सबको भयाक्रांत करने।
अस्त्र चलाया नारायण का, प्रभु ने उसे शांत करने॥१३॥

छोड़ा जृम्भणास्त्र प्रभु ने, शिवशंकर पर निद्रा छाई।
मोहित हुए इस तरह आई जमुहाई पर जमुहाई॥
शिव को छोड़ा वहीं, बाण-सेना पर प्रभु के बाण चले।
गदा और तलवार चली, रिपु की सेना के प्राण चले॥१४॥

कार्तिकेय को आहत किया गया प्रद्युम्न वीर द्वारा।
बैठ मोर पर भागे, जब अंगों से बही रक्त धारा॥१५॥

कूपकर्ण-कुम्भाण्ड गिर गए, बल के हल-मूसल खाकर।
सेना लगी भागने, सेना-पतियों को घायल पाकर॥१६॥

देखी दशा बाण ने, सात्यकि से निज द्वंद-युद्ध छोड़ा।
क्रोधित होकर अपने रथ को प्रभु थे जहां, वहां मोड़ा॥१७॥

धनुष पांच सौ एक साथ, उसने सहस्त्र कर से ताने।
फिर प्रत्येक धनुष पर दो-दो बाण, बाण ने संधाने॥१८॥

प्रभु ने एक बाण से उसके धनुष काट डाले सारे।
शंख बजाया, अश्व, सारथी, रक्षक गए सभी मारे॥१९॥

तभी कोटरा आई, बिना वस्त्र, बालों को बिखराये।
कहीं न धर्मपुत्र उसका, प्रभु के हाथों मारा जाये॥२०॥

उस पर दृष्टि न पड़ जाये, यह सोच कृष्ण ने मुंह मोड़ा।
मौका पाकर बाण घुस गया पुर में, डर कर रण छोड़ा॥२१॥

शिव के सब गण भाग गए, त्रिशिरा ज्वर मगर नहीं माना।
लपका प्रभु की ओर, चाहता था अपना ज्वर फैलाना॥२२॥

आता देखा त्रिशिरा को, प्रभु को भी ज्वर छोड़ना पड़ा।
वैष्णव ज्वर से माहेश्वर ज्वर, केवल थोड़ी देर लड़ा॥२३॥

वैष्णव ज्वर का तेज, शैव-ज्वर, ज्यादा सहन न कर पाया।
हो भयभीत किया क्रंदन फिर जान बचाने चिल्लाया॥
मिला नहीं परित्राण कहीं तो प्रभु की शरणागति पाई।
हो करबद्ध नम्रता से, ज्वर ने प्रभु की स्तुति गाई॥२४॥

ज्वर बोला प्रभु आप सभी ब्रह्मादि सुरों के स्वामी हैं।
शक्ति अनंत आपकी, ब्रह्म-रूप हैं, अंतर्यामी हैं॥
श्रुतियां भी गुणगान करें, लेकिन केवल अनुमान करें।
है प्रणाम आपको, कृपा कर मुझको शरण प्रदान करें॥ २५॥

काल, कर्म, आत्मा, जीव, मन, अहंकार एवं काया।
दैव, द्रव्य, इन्द्रिय, विकार एवं स्वभाव प्रभु की माया॥
तन से कर्म, कर्म से तन तक, सृष्टि-चक्र विस्तार करें।
कर्ता आप, निषेध आप, मेरा प्रणाम स्वीकार करें॥ २६॥

साधु और सुर सदा लोक मर्यादा का पालन करते।
आप दृष्टि सब पर रखते, संसृति का संचालन करते॥
हिंसक असुर त्याग मर्यादा, जब अतिचार किया करते।
लीला से शरीर धारण कर, प्रभु खुद भूमि-भार हरते॥ २७॥

ज्वर अत्यंत उग्र है प्रभु का, सुलग रही मेरी काया।
मुक्त कीजिये प्रभु पीड़ा से, मैं आप की शरण आया॥
बंध कर आशा के बंधन में जग के जीव कष्ट पाते।
होते बंधन मुक्त, शरण में प्रभु की जैसे ही आते॥ २८॥

प्रभु बोले - त्रिशिरा प्रसन्न हूँ, तुमको अभय प्राप्त होगा।
यह संवाद याद करने पर, त्रिशिरा ज्वर समाप्त होगा॥ २९॥

कर प्रणाम प्रभु को माहेश्वर ज्वर, महेश के लोक गया।
इसी बीच बाणासुर आया, लेकर रथ, सारथी नया॥ ३०॥

बाणासुर लेकर हजार हाथों में अस्त्र-शस्त्र नाना।
आते ही प्रारंभ किया, प्रभु पर बाणों पर बरसाना॥ ३१॥

प्रभु ने छोड़ा चक्र, बाण की बाहें कुछ कम की जायें।
बांहें कटने लगीं, वृक्ष की छटतीं जैसे शाखाएं॥ ३२॥

बाणासुर की बाँहें कटती देख, निकट शंकर आये।
भक्ति-भाव के साथ कृष्ण की स्तुति प्रलयंकर गाये॥ ३३॥

शिव बोले - प्रभु आप वेद मंत्रों का अर्थ कहे जाते।
नभ से व्यापक, निर्विकार को, केवल संत देख पाते॥ ३४॥

नभ है नाभि, अग्नि मुख है, प्रभु वीर्य आपका वृष्टि करे।
शीश स्वर्ग है, दिशा कान हैं, चरण धरा की सृष्टि करे॥
अहंकार मैं शिवशंकर हूँ, और इन्द्र प्रभु का कर है।
चित्त चन्द्रमा, नेत्र दिवाकर और उदर रत्नाकर है॥ ३५॥

हृदय धर्म, जननांग प्रजापति, प्रभु की बुद्धि विधाता है।
औषधियां हैं रोम, मेघ प्रभु का कुंतल कहलाता है॥
प्रभु का दिव्य स्वरूप, समूची ही संसृति में व्याप्त रहे।
लोक-रूप हैं आप, आप को ही यह महिमा प्राप्त रहे॥ ३६॥

पा प्रभुता का एक अंश हम सात भुवन पालन करते।
आप धर्म की रक्षा करने को मानव स्वरूप धरते॥ ३७॥

जाग्रत, सुप्त, सुषुप्तावस्था में सारे प्राणी जाते।
किंतु आपको जो पाते, वे ही तुरीय स्थिति पाते॥
आदि पुरुष हैं, अद्वितीय हैं, स्वयं-प्रकाश आदि-कारण।
भिन्न-भिन्न गुण पर आधारित, करते भिन्न रूप धारण॥ ३८॥

बादल में छुप सूर्य बनाता छबियां अपनी छाया से।
गुण में ढंक कर आप बनाते हैं जीवों को माया से॥ ३९॥

प्राणी पाकर देह, गेह, सुत, दारा में ही खो जाते।
माया-प्रेरित, दुख-सागर में सदा डूबते-उतराते॥ ४०॥

जो पा मानव देह, इन्द्रियों पर न नियंत्रण कर पाया।
उसका जीवन व्यर्थ गया, उसने खुद से धोखा खाया॥ ४१॥

प्रभु को छोड़, विषय-भोगों वाला जो जन जीवन जीता।
ईश्वरीय अमृत को तज कर, मूर्ख मनुष्य जहर पीता॥ ४२॥

रहते शरण आपकी, मैं, ब्रह्मा, सुरगण, ऋषिगण सारे।
हम सबकी हैं आप आत्मा, ईश्वर हैं, प्रियतम प्यारे॥ ४३॥

आप जगत के प्रभव-प्रलय-पालन का कारण कहलाते।
अंतरात्मा आप, आप हैं सुहृद, सदा पूजे जाते।
एकमेव हैं, अद्वितीय हैं, जग के आप अधिष्ठाता।
भव से पाने पार, आपका ही प्रभु भजन किया जाता॥ ४४॥

हे प्रभु! बाणासुर मेरा सेवक है, कृपापात्र, प्यारा।
दिया गया है अभयदान, हे प्रभु! इसको मेरे द्वारा॥
दैत्य-राज प्रहलाद आपकी जैसी अनुकम्पा पाये।
है उनका प्रपौत्र, इस की भी वैसी रक्षा की जाये॥ ४५॥

प्रभु बोले - देता हूँ इसको अभय आप जैसा चाहें।
जैसा निश्चय किया आपने, काटीं हैं केवल बाहें॥ ४६॥

अभयदान प्रहलाद-वंश को दिया गया मेरे द्वारा।
उसका वंशज बाण, इसलिए मैंने इसे नहीं मारा॥ ४७॥

भूमि-भार कम करने इसकी सेना का संहार किया।
किया गर्व का नाश और कुछ कम बांहों का भार किया॥ ४८॥

इसकी बांहें चार बचीं हैं, इनका कभी न क्षय होगा।
मुख्य पार्षदों में होगा, इसको न किसी का भय होगा॥ ४९॥

किया प्रणाम बाण ने सिर रख, प्रभु का अभयदान पाया।
फिर अनिरुद्ध और ऊषा को रथ पर बैठा कर लाया॥ ५०॥

शिव की सम्मति से धारण कर वस्त्राभूषण नए-नए।
सज-धज कर अनिरुद्ध धूम से सपत्नीक द्वारका गए॥ ५१॥

स्वागत में द्वारका सजी, बांधे तोरण वंदनवारे।
चंदन मिश्रित जल से सींचीं, गलियां एवं गलियारे॥
विप्र, बंधु-बांधव, स्वजनों से प्रेमपूर्ण स्वागत पाये।
शंख, नगाड़े बजे, द्वारका में जब प्रभु वापस आये॥ ५२॥

कृष्ण और शिव युद्ध-कथा को जो मनुष्य स्मरण करें।
होती नहीं पराजय उसकी, जो दोनों की शरण करें॥ ५३॥

चौसठवां अध्याय

राजा नृग की कथा

शुक बाले-नृप! एक दिवस विचरण की इच्छा ले मन में।
साम्ब, चारु, प्रद्युम्न और गद गए घूमने उपवन में॥ १॥

क्रीड़ा के पश्चात, प्यास जब लगी समीप कुआं देखा।
उस जल-हीन कुएं में, बड़े जीव को पड़ा हुआ देखा॥ २॥

था पर्वताकार गिरगिट वह, उस पर उन्हें दया आई।
गिरगिट को बाहर निकालने पर सहमत थे सब भाई॥ ३॥

बांध रस्सियों में खींचा पर जीव नहीं बाहर आया।
राजकुमारों ने सारा वृत्तांत कृष्ण को बतलाया॥ ४॥

सब के जीवनदाता कमल-नयन प्रभु शीघ्र वहां आये।
खेल-खेल में बायें कर से गिरगिट को बाहर लाये॥ ५॥

पा प्रभु का स्पर्श, तुच्छ गिरगिट का रूप समाप्त हुआ।
गिरगिट को स्वर्गीय देव जैसा सुन्दर तन प्राप्त हुआ॥
तपे हुए सोने जैसा था, उसका वर्ण चमत्कारी।
अद्‌भुत वस्त्र किए था धारण, स्वर्णाभूषण थे भारी॥६॥

प्रभु को था सब ज्ञात, योनि गिरगिट की पाई किस कारण।
फिर भी उससे ही पूछा, जिससे जाने जन-साधारण॥
महाभाग हो कौन, तुम्हारी दर्शनीय है सुन्दरता।
ऐसा दिव्य स्वरूप, सिर्फ देवों को प्राप्त हुआ करता॥७॥

जिससे गिरगिट की गति पाई, किया कौन सा कर्म-कहें।
इसके योग्य नहीं लगते हो, इस दुर्गति का मर्म कहें॥
उत्सुक हैं हम सभी, बतायें विवरण अगर उचित समझें।
अपना परिचय भी दें, यदि इसमें हम सबका हित समझें॥८॥

श्री शुक बोले - राजन! नृग ने प्रभु को अति-उत्सुक पाया।
शीश झुका करके प्रणाम, वृत्तांत समूचा बतलाया॥१०॥

सब जीवों के साक्षी हैं, सर्वज्ञ, आपको ज्ञात सभी।
पर आज्ञा पालन करने को, बतलाता हूँ बात सभी॥११॥

नभ में तारे, भू में रज कण, वर्षा में जल धारायें।
जितनी हैं, उतनी ही मैंने की थी दान श्रेष्ठ-गायें॥१२॥

गायें, तरुण, दुधारु, सुलक्षण, कपिला और पुष्ट काया।
मैंने की थीं प्राप्त, न्याय-संगत विधि से जो धन पाया॥
मालाओं से सज्जित थीं, थे सबके साथ स्वस्थ बछड़े।
खुर में चांदी मढ़ी हुई थी और सींग थे स्वर्ण जड़े॥१३॥

शीलवान, गुणवान, वेदपाठी, जो विद्या-दान करें।
सच्चरित्र हों, करें तपश्चर्या, न व्यर्थ अभिमान करें॥
ऐसे द्विज-सुत, होती हो जिन पर कुटुम्ब की निर्भरता।
वस्त्राभूषण उनको देता, गायें उन्हें दान करता॥१४॥

धन, धरती, घर, घोड़े, हाथी, गृह-सामग्री, शैय्यायें।
स्वर्ण, रजत, तिल-पर्वत, वस्त्राभूषण, गायें द्विज पायें॥
किया निरंतर दान, दान में युवा विप्र, कन्या पाये।
किए अनेकों यज्ञ, बावली, कुएं, जलाशय खुदवाये॥१५॥

एक विप्र की गाय, एक दिन गायों में हो गयी खड़ी।
उसका दान कर दिया मैंने, मगर न उस पर दृष्टि पड़ी॥१६॥

किंतु रोक ली गई गाय वह, असली मालिक के द्वारा।
दान प्राप्त करने वाले ने, मुझ पर मढ़ा दोष सारा॥१७॥

भ्रमित हो गया मैं, दोनों ने अपनी-अपनी बात कही।
एक-दूसरे को देते थे दोष, स्वयं को कहें सही॥१८॥

देख धर्म-संकट मैंने की विनय - 'गाय को लौटायें'॥
उसके बदले में देता हूँ, एक लाख उत्तम गायें॥१९॥

मैं सेवक हूँ, भूल हुई, अनजाने में, कीजिये दया।
क्या पायेंगे आप लोग, यदि मैं दण्डित हो नर्क गया॥२०॥

गया गाय स्वामी, बदले में उसको कुछ स्वीकार न था।
द्विज दूसरा लाख गायें ले, बदली को तैयार न था॥२१॥

बाद मृत्यु के मुझे, दूत यम का जब यमपुर ले आया।
धर्मराज ने पाप-पुण्य का सारा विवरण बतलाया॥२२॥

दान-पुण्य के बदले में था दिव्य-लोक मिलने वाला।
और पाप का फल भी था, जिसने मुझको भ्रम में डाला॥ २३॥

मैंने कहा पाप फल भोगूं, पुण्य-लोक में फिर जाऊं।
यम ने कहा बनूं मैं गिरगिट, फिर धरती पर गिर जाऊं॥ २४॥

प्रभु के भक्त, विप्र-सेवक, दानी ने अतःपतन पाया।
स्मृति रही सदा ही प्रभु की, और आज दर्शन पाया॥ २५॥

योगी ध्यान लगाते जिनका, जिनको श्रुतियों ने गाया।
जो इन्द्रिय से परे, उन्हीं के हाथों आज मोक्ष पाया॥
जो संसार चक्र से रहते दूर, वही प्रभु को पाते।
अद्‌भुत हैं प्रभु, मेरे जैसे पापी को भी अपनाते॥ २६॥

हे देवाधि-देव, पुरुषोत्तम, हे ऋषिकेश, जगतस्वामी।
पुण्यश्लोक, अच्युत, अव्यय, हे नारायण, अंतर्यामी॥ २७॥

देवलोक जाता हूँ करिये कृपा आप स्मरण रहें।
जहां कहीं भी रहूँ, ध्यान में मेरे, प्रभु के चरण रहें॥ २८॥

नमस्कार हे सर्वरूप, हे कृष्ण, नमन हे योगेश्वर।
बार-बार है नमन आपको, वासुदेव हे परमेश्वर॥ २९॥

किया मुकुट से चरणों को स्पर्श, नृपति ने नमन किया।
की परिक्रमा आज्ञा ली, निज लोक यान से गमन किया॥ ३०॥

कृष्ण, देवकी-सुत को सदा ब्राह्मणों के प्रति प्रेम रहा।
क्षात्र धर्म सिखलाने, अपने पुत्रों से इस तरह कहा॥ ३१॥

तेजस्वी नृप नृग भी जब द्विज का धन नहीं पचा पाया।
अभिमानी का क्या, दानी था, दान न उसे बचा पाया॥ ३२॥

नहीं हलाहल कोई, जिसकी औषधि या प्रतिकार नहीं।
ब्राह्मण का धन विष ऐसा, जिसका जग में उपचार नहीं॥ ३३॥

अग्नि शांत होती जल से, विष से मरता खाने वाला।
भस्म करे कुल, द्विज के धन की अरणि जलाये वह ज्वाला॥ ३४॥

तीन पीढ़ियां दुख पायें, बिन सम्मति यदि द्विज-धन भोगा।
हठ से लिया, नाश आगे-पीछे दस पीढ़ी का होगा॥ ३५॥

जो नृप राज्यलक्ष्मी के मद में विप्रों का धन हड़पे।
खुद के लिए खोदता गड्ढे, जिनमें गिर-गिर कर तड़पे॥ ३६॥

द्विज, उदार-मन, सद्‌गृहस्थ की अगर वृत्ति को ही छीना।
उसे रुलाया नृप ने और किया दुष्कर उसका जीना॥ ३७॥

रोने पर जितने रज-कण पर, उस द्विज के आंसू पड़ते।
कुम्भी-पाक नर्क में उतने वर्षों तक वे नृप सड़ते॥ ३८॥

वृत्ति छीन कर द्विज की जो नृप देता है उसको पीड़ा।
साठ सहस्त्र वर्ष तक बनना पड़ता है मल का कीड़ा॥ ३९॥

जो द्विज-धन की इच्छा करते, वे नृप राज्य हार जाते।
होते हैं अल्पायु, मृत्यु के बाद सर्प की गति पाते॥ ४०॥

द्वेष-योग्य द्विज नहीं, कथन मेरा सर्वदा ध्यान रखना।
यदि शापित भी करे विप्र, तो करना नमन, मान रखना॥ ४१॥

जैसे मैं पूजूं, सब दिन में तीन बार पूजें पण्डित।
नहीं मानता जो मेरी आज्ञा, वह तो होगा दण्डित॥ ४२॥

नृग की पतन-कथा को अच्छा हो सब उदाहरण मानें।
पतन हो गया, यद्यपि गाय विप्र की ली थी अनजानें॥ ४३॥

सुन प्रभु का उपदेश और सुनकर नृग की बातें सारी।
कृष्ण गये निज भवन, चकित थे पुर के सारे नर नारी॥ ४४॥

पैंसठवां अध्याय

बलराम जी का ब्रज गमन

शुक बोले - बल के मन में थी सुहृदों के प्रति उत्सुकता।
ब्रज आये बलराम, तीव्र रथ से जो कहीं नहीं रुकता॥ १॥

उत्कंठित थे ब्रजवासी भी, जैसे ही बल ब्रज आये।
सबको गले लगाया, नंद-यशोदा का दुलार पाये॥ २॥

लिया नंद ने गोद, आंख से बहने लगी अश्रुधारा।
बोले - ब्रज रक्षित है, राम-कृष्ण जगदीश्वर के द्वारा॥ ३॥

किया बड़ों को नमन, नमन सब छोटों का स्वीकार किया।
सबसे मेल-मिलाप, मित्रता और आयु अनुसार किया॥ ४॥

आनंदित हो, हाथ मिलाये, गले मिले बल से ग्वाले।
मिटा थकान, शांत बैठे, पूछा कैसे हैं घरवाले॥ ५॥

घर तो क्या जग से विरक्त थे, जब से गए कृष्ण प्यारे।
गद्-गद् होकर लगे पूछने बल से ग्वाल-बाल सारे॥ ६॥

आप लोग हैं कुशल, हो गए हैं पत्नी-पुत्रों वाले।
रहते होंगे व्यस्त, याद आते हैं क्या ब्रज के ग्वाले॥ ७॥

है सौभाग्य कंस वध करके, सुहृदों का दुख दूर किया।
दुर्ग बनाया रहने को, राजाओं का मद चूर किया॥ ८॥

बल के दर्शन से प्रसन्न हो कहने लगी गोपिकाएं।
नगर-नारियों के प्रिय प्रभु के, हाल-चाल भी बतलाएं॥ ९॥

क्या आते स्मरण उन्हें बांधव-गण और पिता-माता।
कभी कृष्ण को क्या हम सबका सेवा-भाव याद आता॥ १०॥

हमने उनके लिए पिता-माता, पति-पुत्र सभी त्यागे।
आप जानते होंगे, होता कठिन तोड़ना यह धागे॥ ११॥

वे सौहार्द-प्रेम को तज, संबंध तोड़ कर चले गए।
उनकी मीठी बातों में आ, हम ब्रजवासी छले गए॥ १२॥

एक सखी बोली - होतीं हैं चतुर नगर की ललनाएं।
चंचल और कृतघ्न कृष्ण की बातों में वे क्या आएं॥
अन्य सखी बोली - उनकी मुस्कान और चितवन प्यारी।
करे न खुद को न्यौछावर, क्या होती है ऐसी नारी॥ १३॥

बोली एक - व्यर्थ क्यों उस निष्ठुर की बातें सुने-कहें।
बिना हमारे वे रहते जब, हम भी उनके बिना रहें॥ १४॥

प्रेम भरी मुस्कान, चारु-चितवन में सभी लगीं खोने।
प्रेम-भरी बातें, प्रेमालिंगन कर याद लगीं रोने॥ १५॥

थे सांत्वना-निपुण बल, सबको विनय-पूर्वक समझाया।
प्रेम भरे संदेश सुने जब प्रभु के, तब धीरज आया॥ १६॥

ऋतु बसंत के मास, चैत्र-वैशाख वहीं बलराम रहे।
रात्रि बीतती गोपिकाओं के मध्य, प्रेम की धार बहे॥ १७॥

करते वहीं विहार, कुमुदिनी की ले गंध पवन बहती।
यमुना-तट पर पूर्ण-चंद्र की उज्जवल छटा जहां रहती॥ १८॥

वन में देवि-वारुणी को पहुंचाया गया वरुण द्वारा।
बही वृक्ष से धारा, जिससे महक उठा मधुवन सारा॥ १९॥

महक वारुणी की पहुंची बल तक मानो आह्वान किया।
गए गोपियों संग वहां बलराम और मधुपान किया॥ २०॥

मधु से थे उन्मत्त नयन, वन में बिचरें शोभा पायें।
उन्हें घेर कर खड़ीं गोपियां, बल का यशोगान गायें॥ २१॥

माथे पर श्रम बिंदु, गले में सजी वैजयन्ती माला।
मुख पर मधु मुस्कान, कान में कुंडल चमक-दमक वाला॥ २२॥

बलशाली बलराम चाहते थे, जल-क्रीड़ा की जाये।
यमुना को आदेश दिया वह उनके निकट चली आये॥
बल को मतवाला माना, इससे आदेश नहीं माना।
अप्रसन्न बल ने हल से खींचा तो उनका बल जाना॥ २३॥

क्रोधित हो बल बोले, इस पापिन ने बात नहीं मानी।
सौ टुकड़ों में अब विभक्त होगी यह यमुना अभिमानी॥ २४॥

क्रोधित बल का सौ टुकड़े करने का जब अभिवचन सुना।
करने लगी प्रार्थना, बल के चरणों में गिरकर यमुना॥ २५॥

बलशाली बलराम आपका बल अत्यंत असाधारण।
एक अंश से आप शेष बन, करते धरती को धारण॥ २६॥

जाना नहीं स्वरूप आपका इससे यह अपराध बना।
शरण आपकी आई मुझको क्षमा कीजिये महामना॥ २७॥

यमुना को कर दिया क्षमा, बल ने सुनकर उसकी पीड़ा।
करने लगे गोपियों के संग गजपति जैसी जल क्रीड़ा॥ २८॥

जल-विहार करके यमुना-जल से जब बल बाहर आये।
नीलाम्बर परिधान अन्य आभूषण कमला से पाये॥ २९॥

नीलाम्बर, आभूषण-धारी बल की ऐसा शोभा थी।
नीलगगन में जैसे सजकर, बैठा ऐरावत हाथी॥ ३०॥

बल के खीचें हुए मार्ग से नृप! अब भी यमुना बहती।
ऐसा लगता है वह बल के बल की यश-गाथा कहती॥ ३१॥

गोपिकाओं का रूप मनोहर और मनोहर थी बातें।
एक रात सी बीती ब्रज में बल की कई-कई रातें॥ ३२॥

छियासठवां अध्याय

पौण्ड्रक और काशीराज का उद्धार

बल जब ब्रज में थे, करूष का दूत द्वारका में आया।
असली वासुदेव मैं हूँ, पौण्ड्रक का संदेशा लाया॥ १॥

वह अवतारी वासुदेव है, जग-रक्षा करने आया।
लोगों ने ऐसा बहकाया, उसको भी यह भ्रम भाया॥ २॥

खेल-खेल में जैसे कोई बालक राजा बन जाये।
लगें समझने खुद को राजा, महामूर्ख वह कहलाये॥ ३॥

यादव राजसभा में अनुमति लेकर राजदूत आया।
पौण्ड्रक का संदेश अनर्गल, उसने प्रभु को बतलाया॥ ४॥

जग के जीवों का रक्षक, धरती पर एकमेव मैं हूँ।
वासुदेव का नाम छोड़ दो, असली वासुदेव मैं हूँ॥ ५॥

छोड़ो मेरे चिन्हों को, कर लिए मूर्ख तुमने धारण।
आओ मेरी शरण नहीं तो होगा युद्ध इसी कारण॥६॥

शुक बोले - संदेश सुना तो प्रभु थे अविचल, अविकारी।
किंतु मूर्खता पर पौण्ड्रक की हँसने लगी सभा सारी॥७॥

प्रभु ने कहा दूत से, अपने राजा से जाकर कहना।
छोड़ूंगा में चक्र उसी पर, पौण्ड्रक सावधान रहना॥८॥

चील-गिद्ध से घिरा धूर्त धरती पर पाया जायेगा।
श्वान शरण देंगे, वह नौंच-नौंच कर खाया जायेगा॥९॥

पौण्ड्रक ठहरा था काशी में, दूत वहीं उत्तर लाया।
और आक्रमण करने पीछे से यदुवंशी दल आया॥१०॥

यदुसेना ने किया आक्रमण, उसने समाचार पाया।
वह दो अक्षौहिणी सैन्य-दल ले, क्रोधित बाहर आया॥११॥

काशी-नृप था मित्र, सामने आया लेकर कुमुक बड़ी।
नकली वासुदेव पर असली वासुदेव की दृष्टि पड़ी॥१२॥

लिए हुए था सारे आयुध, दो नकली हाथों वाला।
था श्रीवत्स वक्ष पर नकली, नकली कौस्तुभमणि माला॥१३॥

रथ के ध्वज पर गरुड़-चिन्ह था, वह था पीताम्बर पहने।
पहन रखे थे मकराकृति कुंडल, मणि-मुकुट और गहने॥१४॥

रंगमंच पर पात्र दिखाता जैसे प्रभु की प्रभुताई।
अपने जैसा वेश देखकर प्रभु को बहुत हँसी आई॥१५॥

प्रभु पर गदा, त्रिशूल, शक्ति, मुग्दर से उसने वार किए।
पट्टिश, प्राश, ऋष्टि, असि, धनुष-बाण से कई प्रहार किए॥१६॥

प्रभु के भी शस्त्रास्त्र, गदा, असि, चक्र, बाण समवेत चले।
ज्यों प्रलयाग्नि जलाती सबको, रथ-सारथी समेत जले॥
काशीपति के हाथी घोड़े, पौण्ड्रक के सैनिक सारे।
या तो घायल थे या मृत थे, प्रभु के बाणों के मारे॥१७॥

भीरू हुए भयभीत, शूरवीरों में था उत्साह भरा।
हाथी, घोड़ों ऊंट, मनुष्यों के अंगों से पटी धरा॥
चला सुदर्शन चक्र, हो गए टुकड़े-टुकड़े जीव सभी।
ऐसा लगा कि प्रलयंकारी शिव ने ताण्डव किया अभी॥१८॥

प्रभु बोले - संदेश दूत से जैसा तूने भिजवाया।
पौण्ड्रक ले मैं शस्त्र छोड़ता हूँ, यह उचित समय आया॥१९॥

नकली वासुदेव का आज पड़ा है असली से पाला।
मुझे पराजित कर पहले, था मुझे शरण देने वाला॥२०॥

प्रभु ने पहले रथ को उसके, बाणों से तिल-तिल बांटा।
ज्यों काटे गिरि श्रृंग इन्द्र ने, शीश सुदर्शन से काटा॥२१॥

काशी-नृप निष्प्राण हुआ जब प्रभु के तीक्ष्ण तीर आये।
शीश गिरा काशी में जैसे वायु कमल को ले जाये॥२२॥

सखा सहित पौण्ड्रक का वध कर प्रभु द्वारका लौट आये।
प्रभु की अमृतमयी कथा को सिद्ध, देवता-गण गाये॥२३॥

पौण्ड्रक ने प्रभु-रूप धरा, सर्वदा उन्हीं का ध्यान किया।
भाव रहा जैसा भी प्रभु ने, अपना लोक प्रदान किया॥२४॥

काशी राजमहल में जब सिर गिरा मुकुट-कुंडल वाला।
समझ न पाये पहले, किसका सिर है, यह किसने डाला॥२५॥

यह सिर तो काशीपति का है, जब लोगों ने पहचाना।
रोये रानी, राजपुत्र, लोगों ने सर्वनाश माना॥ २६॥

पुत्र सुदक्षिण ने अंत्येष्ठि आदि की, पर मन था भारी।
करने लगा पितृहंता का वध करने की तैयारी॥ २७॥

आचार्यों के साथ बैठ कर तप-साधना लगा करने।
होते शीघ्र प्रसन्न सदा, शिव की आराधना लगा करने॥ २८॥

हुए प्रसन्न शीघ्र शिव-शंकर वांछित वर देने आये।
उसे पितृहंता का वध करने की विधि भी बतलाये॥ २९॥

शिव ने कहा करो अभिमंत्रित दक्षिणाग्नि अभिचारी को।
साथ ब्राह्मणों से मिलकर ही करना इस तैयारी को॥ ३०॥

शिव की आज्ञा पा उसने यज्ञाग्नि जला अभिचार किया।
किंतु कृष्ण की विप्र भक्ति का कुछ भी नहीं विचार किया॥ ३१॥

हुआ पूर्ण जब यज्ञ, कुंड से प्रकटी मूर्तिमान ज्वाला।
आंखों में अंगारे थे, था रंग तपे ताँबे वाला॥ ३२॥

दाड़ें विकट, भृकुटियां विकृत, क्रूर मुखाकृति भयकारी।
नग्न, जीभ से मुंह को चाटे, कृत्या थी त्रिशूलधारी॥ ३३॥

टांगें जैसे ताड़, कदम रखने से काँप उठी धरती।
ले भूतों को गई द्वारका, तप्त दिशाओं को करती॥ ३४॥

पुरवासी डर गए दिखी जब मूर्तिमान ज्वाला चलती।
होते ज्यों भयभीत हिरण, जब वन में दावानल जलती॥ ३५॥

चौसर खेल रहे थे प्रभु, भयभीत लोग जा चिल्लाये।
त्राहिमाम त्रिलोकेश, जलाने पुर को अग्निदेव आये॥ ३६॥

शरणागत वत्सल ने डरे हुए स्वजनों को समझाया।
डरो नहीं परित्राण हेतु ही तो मैं धरती पर आया॥ ३७॥

जान गए प्रभु शिव की कृत्या काशी से आई होगी।
चक्र सुदर्शन को छोड़ा, प्रभु हैं सर्वज्ञ महायोगी॥ ३८॥

चक्र सुदर्शन, कोटि सूर्य-सा तेजस्वी तत्काल चला।
मन की गति से चक्र, उगलते हुए आग विकराल चला॥
अंतरिक्ष तक दिखी सुदर्शन की जाज्वल्यमान ज्वाला।
चक्र सुदर्शन ने कृत्या का मुख तत्काल कुचल डाला॥ ३९॥

शक्ति हुई कृत्या की कुंठित, नहीं चक्र पर जोर चला।
वह क्षतिग्रस्त आग का गोला, फिर काशी की ओर चला॥
जला दिये कृत्या ने नृपति सुदक्षिण सहित विप्र सारे।
जो विनाश को प्रश्रय देते, वे ही जाते हैं मारे॥ ४०॥

काशी पहुंचा चक्र सुदर्शन, कृत्या का पीछा करता।
भवन, द्वार, बाजार बढ़ाते थे काशी की सुन्दरता॥
गज-रथ-अश्व भरे पथ थे, थे जिन्सों के भण्डार वहां।
थे कोषालय बड़े, बड़े बाजार, बड़ा व्यापार वहां॥ ४१॥

करके भस्म भव्य नगरी को, वापस चक्र लौट आया।
करते कर्म कठोर कृष्ण, माया को कौन समझ पाया॥ ४२॥

कही-सुनी जाती है प्रभु की दिव्य-कथा जिन के द्वारा।
उन सबको निश्चित मिलता है, भव-बंधन से छुटकारा॥ ४३॥

सड़सठवां अध्याय

द्विविद उद्धार

राजा बोले - बलशाली बल की शक्तियां अनंत रहें।
उनकी लीलाएं सुनने की इच्छा है, मुनिश्रेष्ठ कहें॥ १॥

शुक बोले - था द्विविद एक बानर भौमासुर का साथी।
था सुग्रीव सचिव, भाई था मैंद, शक्ति जैसे हाथी॥ २॥

भौमासुर के वध का बदला, जनसाधारण से लेता।
नगरों, गांवों और बस्तियों में जा आग लगा देता॥ ३॥

वह आनर्त देश में ऊधम करता, जहां कृष्ण रहते।
फेंका करता गिरि-श्रृंगों को जिससे नगर-गांव ढहते॥ ४॥

दस हजार हाथी का बल था, करे हमेशा मनमानी।
जलप्लावन करता नगरों में, सागर से फेंके पानी॥ ५॥

ऋषियों के आश्रम की लता-वनस्पतियां मरोड़ता था।
यज्ञ-अग्नि को दूषित करने को मल-मूत्र छोड़ता था॥ ६॥

करके बंद गुफाओं में लोगों को देता था पीड़ा।
कीटों को बिल में ज्यों करता बंद दुष्ट भृंगी कीड़ा॥ ७॥

पुरुषों का अपमान, नारियों को दूषित करना भाया।
सुना ललित संगीत एक दिन शैल रेवतक तक आया॥ ८॥

देखा उसने यदुपति-बल को, घेरे थीं ब्रज-बालायें।
अंग-अंग सुन्दर था बल का, शोभित थीं वन-मालायें॥ ९॥

मद-विह्वल थे नयन, पान कर मधु, मदमस्त गीत गाते।
जैसे हो गजराज धवल, बल ऐसी ही शोभा पाते॥ १०॥

लगा हिलाने खल-बानर वृक्षों की शाखाएं सारी।
लगा चिढ़ाने, ब्रज-बालाओं को भर-भर कर किलकारी॥ ११॥

बानर की धृष्टता देखकर हँसी युवा ब्रज-बालाएं।
चंचल होतीं हैं, परिहास-हास करने में सुख पायें॥ १२॥

बल के आगे आकर भी बानर ने जब मुंह बिचकाया।
बालाओं को गुदा दिखाई, गरज-तरज कर गुर्राया॥ १३॥

बानर को तब पत्थर मारा, कुछ क्रोधित होकर बल ने।
खुद को बचा लिया, फिर उठा लिया मधुकलश धृष्ट-खल ने॥ १४॥

बल को उत्तेजित करने को मधु का कलश तोड़ डाला।
फाड़े बालाओं के कपड़े, बल से नहीं गया टाला॥ १५॥

बल ने किया विचार धृष्ट-बानर का समय निकट आया।
इस बानर ने जन-साधारण को काफी दुख पहुंचाया॥ १६॥

हल-मूसल को उठा लिया, बल ने की वध की तैयारी।
तब तक कपि ने उनके सिर पर मारा शाल वृक्ष भारी॥ १७॥

बल तो है बलवान, शाल का वृक्ष एक कर से पकड़ा।
अविचल थे प्रहार से जैसे रहता पर्वतराज खड़ा॥ १८॥

प्रत्याक्रमण किया बल ने उसके सिर पर मूसल मारा।
सिर फट गया द्विविद् का, सिर से बहने लगी रक्त धारा॥ १९॥

ऐसा दिखा, बह रहा हो ज्यों गिरि से गेरू का सोता।
फिर उखाड़ने लगा वृक्ष वह, दिखा नहीं विचलित होता॥ २०॥

वह उखाड़कर लाता था तरु, बल कर देते सौ टुकड़े।
वह करता था श्रम काफी, बल उत्तर देते खड़े-खड़े॥ २१॥

लाता रहा वृक्ष वह, बल ने काटे आनन-फानन में।
एक समय आया कि वृक्ष ही शेष नहीं थे उस वन में॥ २२॥

वृक्ष हो गए खत्म, लगा बरसाने चट्टानें भारी।
बल ने मूसल मार-मार कीं चूर-चूर वे भी सारी॥ २३॥

वृक्ष उखाड़ फेंकने से था कुछ-कुछ द्विविद थका-हारा।
बाँहें बांध ताड़-सी उसने फिर बल को घूंसा मारा॥ २४॥

बल ने भी हल-मूसल त्यागे, मल्लों की विधि अपनाई।
हंसली तोड़ी, खून बहाता, बानर हुआ धराशायी॥ २५॥

द्विविद गिरा ज्यों ही धरती पर क्षण भर को कांपी धरती।
जैसे आंधी आने पर जल में नौका डगमग करती॥ २६॥

सिद्धों, सुरों और संतों ने सुमन राम पर बरसाये।
साधु-साधु, जय, नमो-नमो कहकर यश-गीत गए गाये॥ २७॥

मार द्विविद उत्पाती को बलराम द्वारका जब आये।
पुरजन, परिजन थे प्रसन्न, स्वजनों से अनुसंशा पाये॥ २८॥

अड़सठवां अध्याय

कौरवों पर बलराम जी का क्रोध और साम्ब विवाह

शुक बोले - एकाकी प्रभु-सुत साम्ब हस्तिनापुर आये।
दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा को बल से हर लाये॥ १॥

कौरव क्रोधित हुए उन्हें अपना अपमान लगा भारी।
इच्छा जाने बिना हरी थी कृष्ण-पुत्र ने सुकुमारी॥ २॥

बोले - बांधो इसको, कौरव नहीं यादवों से डरते।
जो धन-धान्य-धरा हमने दी, उसका सुख भोगा करते॥ ३॥

वश में कर लेंगे यदि यादव, पुत्र छुड़ाने को आये।
करके प्राणायाम मनुज जैसे मन पर काबू पाये॥ ४॥

कुरुवृद्धों की अनुमति लेकर निकली कुरु-सेना भारी।
भूरिश्रवा, यज्ञ, शल, दुर्योधन, राधेय धनुर्धारी॥ ५॥

कुरुवीरों को आते देखा, साम्ब तनिक भी नहीं डरे।
सुंदर धनुष उठाया, सिंह जैसे मृगदल पर वार करे॥ ६॥

रुको-रुको चिल्लाये, ज्यों ही कौरव-वीर निकट आये।
किया कर्ण को सबने आगे, बाण साम्ब पर बरसाये॥ ७॥

देख पराक्रम हिरणों का सिंह जैसे क्रोधित हो जाये।
थे ऐश्वर्यवान प्रभु के सुत, उनको क्यों न क्रोध आये॥ ८॥

एक साम्ब से लड़ने, एक साथ आ गए वीर सारे।
छह-छह तीर साम्ब ने एक साथ छह वीरों को मारे॥ ९॥

चार अश्व को, एक सारथी, एक रथी को तीर लगा।
कौरव योद्धाओं को बालक साम्ब अनोखा वीर लगा॥ १०॥

छह कौरव वीरों ने एक साथ छह तीक्ष्ण तीर छोड़े।
धनुष कटा, मृत हुआ सारथी, मारे गए चार घोड़े॥ ११॥

बांधा लिया रथहीन साम्ब को कठिनाई से जय पाई।
साम्ब अैर पुत्री को लेकर, कुरुसेना वापस आई॥ १२॥

नारद से सुन समाचार यह, यादव थे क्रोधित भारी।
उग्रसेन से आज्ञा लेकर, की हमले की तैयारी॥ १३॥

कुरु एवं यदुवंशों का यह कलह नहीं बल को भाया।
सभी युद्ध-इच्छुक वीरों को शांत कर दिया, समझाया॥ १४॥

चले हस्तिनापुर रथ पर बल साथ विप्रगण बैठाये।
नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा-जैसी बल शोभा पाये॥ १५॥

बल रुक गए हस्तिनापुर के बाहर सुन्दर उपवन में।
उद्धव, पुर में गए जानने क्या है कुरुओं के मन में॥ १६॥

भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र और दुर्योधन का करके वंदन।
बतलाया उद्धव ने उपवन में ठहरे हैं यदुनंदन॥ १७॥

बल को परम हितैषी माना करते थे कौरव सारे।
स्वागत करने उपवन आये, सब प्रसन्नता के मारे॥ १८॥

अर्ध्य दिया, गो अर्पण की, सबने उनका सत्कार किया।
एक दूसरे को प्रणाम सबने विधि के अनुसार किया॥ १९॥

बंधु-बांधवों का दोनों पक्षों ने कुशल-क्षेम जाना।
फिर बल ने बतलाया उनका वहां हुआ है, क्यों आना॥ २०॥

उग्रसेन राजाधिराज की आज्ञा को तुम सुनो सभी।
सुनो सावधानी से उसका पालन निश्चित करो अभी॥ २१॥

धर्म विरुद्ध बना है बंदी, साम्ब उसे छोड़ा जाये।
नहीं चाहते हम संबंधों में कोई दरार आये॥ २२॥

बल ने यद्यपि धीर-वीर वाणी में था संदेशा कहा।
कुपित हुए कौरव, उत्तर में, वाणी में संयम न रहा॥ २३॥

बोले - यह है चाल-काल की इसको भला कौन टाले।
जूती कहती आज शीश से, मुझे मुकुट पर बैठा ले॥ २४॥

कर विवाह-संबंध इन्हें अपने समकक्ष बनाया है।
साथ बिठाया इन्हें, राज-सिंहासन पर बैठाया है॥ २५॥

हमने दिया न ध्यान, इसलिए हैं यह छत्र-मुकुटधारी।
यदुवंशी हैं नहीं सिंहासन, चंवर, शंख के अधिकारी॥ २६॥

वृष्णि-वंश ने हमसे ही अधिकार राज्य का पाया है।
अब लगता है हमने ज्यों विषधर को दूध पिलाया है॥
पाया कृपा-प्रसाद, बड़े हो गए हमारी ही दम पर।
हुकुम चलाने लगे आज निर्लज्ज वृष्णि-वंशी हम पर॥ २७॥

भीष्म, द्रोण, अर्जुन के रहते, इन्द्र नहीं करता मन की।
सिंह का ग्रास मेमना छीने, फिर क्या मर्यादा वन की॥ २८॥

शुक बोले - कुरुवंशी कुल-धन-बल के मद में चूर रहे।
कह अपशब्द गए, सामान्य शिष्ठता से भी दूर रहे॥ २९॥

कहे दुर्वचन कुरु-पुत्रों ने, अति-अशिष्ठ व्यवहार रहा।
अति-क्रोधित थे किंतु राम ने हँसते-हँसते यही कहा॥ ३०॥

शांति नहीं चाहे, जिसको कुल-धन-बल का घमंड होता।
पशु को लगता दण्ड, घमंडी का उपचार दण्ड होता॥ ३१॥

कुपित कृष्ण, यदुवीरों को मैंने धीरे-से समझाया।
उनको करके शांत, सुलह करवाने को मैं था आया॥ ३२॥

मूर्ख, घमंडी कलह चाहते, इनको शांति नहीं प्यारी।
मुझको दीं गलियां, किया है मेरा तिरस्कार भारी॥ ३३॥

उग्रसेन हैं नृपति श्रेष्ठ, उनकी महिमा से अनजानें।
मूर्ख न जानें, उनकी आज्ञा सारे लोकपाल मानें॥ ३४॥

पारिजात छीना सुरेन्द्र से, जो दे सुविधाएं सारी।
धर्म सभा के अधिकारी, क्यों नहीं राज्य के अधिकारी॥ ३५॥

जिन चरणों की सेवा से कमला के हाथ नहीं थकते।
चक्र, चंवर-से राज्य चिन्ह वह कृष्ण न धारण कर सकते॥ ३६॥

लोकपाल करते हैं सिर पर जिन चरणों की रज धारण।
संतों द्वारा सेवित गंगा, तीर्थ बनी रज के कारण॥
हम सब कला, कलाओं की हैं, मैं, ब्रह्मा, शंकर, कमला।
करते उनकी रज को धारण, शायद उन्हें न पता चला॥ ३७॥

कौरव सिर, हम पादत्राण हैं, है कुरु-पुत्रों का कहना।
उनके भूमि-खण्ड का करते भोग, कठिन है यह सहना॥ ३८॥

कहीं अनर्गल रूखी बातें, जो थीं कहने योग्य नहीं।
उन्हें करूंगा दण्डित, यह सब मेरे सहने योग्य नहीं॥ ३९॥

कौरव-हीन करूंगा धरती को, क्रोधित हो बल बोले।
लगा त्रिलोकी भस्म करेंगे, खड़े हुए जब हल को ले॥ ४०॥

लिया उखाड़ हस्तिनापुर को, कर-कर के चोटें हल से।
चले डुबाने गंगा में पुर, कौन बचायेगा बल से॥ ४१॥

लगा कांपने पुर जैसे, जलयान तीव्र जल में जाये।
पुर को गंगा में गिरते देखा तो कौरव घबराये॥ ४२॥

लक्ष्मणा के साथ साम्ब को ले सारे कौरव आये।
करने लगे प्रार्थना उनकी त्रुटि को क्षमा किया जाये॥ ४३॥

बोले - हम दुर्बुद्धि मूढ़ थे, प्रभु प्रभाव से अनजाने।
हम आये हैं शरण आपकी, प्रभु की कृपा दृष्टि पाने॥ ४४॥

आप शेष रहते, जो गति हो, पालन, सृजन, प्रलय वाली।
ऋषि कहते लोकों से क्रीड़ा करते हैं बल-बलशाली॥ ४५॥

खेल-खेल में सिर पर करते हैं भूमंडल को धारण।
शीश सहस्त्रों, बल अनंत है, धारण-शक्ति असाधारण॥
प्रलय-समय में सभी समाहित होते आप शेष रहते।
अद्वितीय हैं आप, आपको सब इसलिए शेष कहते॥ ४६॥

सत्व रूप हैं आप, जगत के हित में किये देह धारण।
शिक्षा देने किया क्रोध, यह नहीं ईर्ष्या के कारण॥ ४७॥

सर्वशक्ति-सम्पन्न, अनश्वर, को हम नमस्कार करते।
शरण आपकी आये हैं हम वंदन बार-बार करते॥ ४८॥

शुक बोले - प्रार्थना कर रहे थे कौरव-गण घबराये।
शरणगत हो गए, शीघ्र ही बल से अभय-दान पाये॥ ४९॥

दुर्योधन को था पुत्री से प्रेम, सप्रेम दहेज दिया।
एक सहस्त्र सेविकाओं को, कर श्रृंगारित भेज दिया॥ ५०॥

दह हजार सोने से सज्जित रथ थे, दस हजार घोड़े।
साठ साल वाले मतवाले हाथी थे छह सौ जोड़े॥ ५१॥

स्वीकारा दहेज, स्वीकारा कुरु-पुत्रों का पद-वंदन।
वधु के साथ पुत्र को लेकर, गये द्वारका यदुनंदन॥ ५२॥

पहुंचे जब द्वारका, बहुत उत्सुक थे पुर के नर-नारी।
राजसभा में स्वजनों को दी बल ने सभी जानकारी॥ ५३॥

दक्षिण ऊंचा है, गंगा की ओर झुका बाकी हिस्सा।
सुना रहा है आज हस्तिनापुर, बल के बल का किस्सा॥५४॥

उनहत्तरवां अध्याय

देवर्षि नारद द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की दिनचर्या का अवलोकन

शुक बोले - बाणासुर-बालाओं को प्रभु ने अपनाया।
दिनचर्या देखूं प्रभु की, यह नारद के मन में आया॥१॥

विस्मित नारद सोच रहे थे, प्रभु हैं एकाकी मेरे।
फिर कैसे सोलह सहस्त्र वधुओं के साथ लिए फेरे॥२॥

जब देवर्षि द्वारका, दर्शन करने प्रभुलीला आये।
उद्यानों में विविध पुष्प, पक्षी, भौंरों के दल पाये॥३॥

निर्मल जल था जलाशयों में, भांति-भांति के कमल खिले।
कलरव करते हुए हंस, सारस उनको सर्वत्र मिले॥४॥

थे नौ लाख भवन चांदी-स्फटिक जड़ा कोना-कोना।
पन्ना मढ़ा फर्श, द्वारों में शोभित मणि-मुक्ता-सोना॥५॥

गलियां-चौराहे अति-सुंदर, सभा-भवन, पशु-शालाएं।
बड़े-बड़े बाजार, बीच में देवालय शोभा पायें॥
गंध-युक्त जल से सिंचित थे, सड़कें, गलियां, चौबारे।
धूप नहीं लगने देते थे, ध्वज, झंडे, वंदनवारे॥६॥

प्रभु के अंतःपुर में जैसे प्राण पड़े पाषाणों में।
स्वयं विश्वकर्मा ने झोंकी शिल्पकला निर्माणों में॥७॥

थे सोलह हजार संख्या में, नारद थोड़ा चकराये।
अंदर का सौंदर्य देखने, नारद जी अंदर आये॥८॥

मूंगे लगे हुए खम्बों में, दीवारों में मणि-नीले।
छज्जों पर वैदूर्य लगे थे, सदा रहें जो चमकीले॥९॥

मोती की झालर वाले थे लगे चंदोबे बड़े-बड़े।
हस्तिदंत के आसन, शैय्या जिनमें सुन्दर रत्न जड़े॥१०॥

सेवा-रत दासियां, सभी ग्रीवा में स्वर्ण-हार डाले।
सेवक भी थे व्यस्त, सभी कुंडल एवं पगड़ी वाले॥११॥

रत्नों के दीपक जगमग कर हटा रहे थे अंधियारा।
खुले झरोखों से जाता था, बाहर अगर-धूम्र सारा॥
मणि-छज्जों पर बैठे हुए मयूर समझते घन आये।
करने लगते नृत्य, कूकते, सदा वहां सावन छाये॥१२॥

था वह महल रुक्मिणी का, प्रभु बैठ जहां शोभा पायें।
चंवर डुलाती स्वयं रुक्मिणी, करती सारी सेवायें॥
यद्यपि थी मौजूद भवन में कई हजार सेविकाएं।
सारी ही गुण, रूप, अवस्था में रुक्मिणी नजर आएं॥१३॥

धर्म-प्राण है कृष्ण, धर्म के जानकार, धर्मज्ञ बड़े।
जैसे ही देवर्षि दिखे, तत्काल कृष्ण हो गए खड़े॥
अपने शीश-मुकुट से प्रभु ने, नारदजी के चरण छुए।
अपने आसन पर बैठाया, नारद बहुत प्रसन्न हुए॥१४॥

कृष्ण जगद्गुरु, परम-भक्त-वत्सल, जग के कर्ता-धर्ता।
प्रभु का चरणामृत-गंगाजल, इस जग को पावन करता॥
पांव पखारे नारद के, धोबन को प्रभु सिर पर लाये।
विप्र-भक्ति के कारण प्रभु, ब्रह्मण्यदेव भी कहलाये॥१५॥

परम-पुरुष, नर-लीलाधारी ने मुनि का सम्मान किया।
और बहुत कम शब्दों में, नारदजी का गुणगान किया।
कहा - आप वैराग्य, ज्ञान, यश, ऐश्वर्य, श्रीपूर्ण रहें।
फिर भी मेरे योग्य कार्य हो, निसंकोच देवर्षि कहें॥ १६॥

नारद बोले - कृष्ण आप हैं, तीनों लोकों के स्वामी।
दुष्ट दण्ड पाते हैं, पाते प्रेम आपके अनुगामी।
हमें ज्ञात है आप जगत का पालन संरक्षण करते।
करने को कल्याण मनुष्यों का, मनुष्य का तन धरते॥ १७॥

मैंने चरणों के दर्शन पाये जो मोक्ष प्रदान करें।
ब्रह्मा, शंकर सभी इन्हीं प्रभु के चरणों का ध्यान करें॥
विश्व-कूप में गिरे हुओं का, यही चरण कल्याण करें।
जहां कहीं भी रहूं आपकी स्मृति मेरे प्राण करें॥ १८॥

मुनि की इच्छा थी योगेश्वर की माया देखी जाये।
वे तत्काल दूसरी पत्नी के अंतःपुर में आये॥ १९॥

चौसर खेल रहे थे उद्धव, कृष्ण और कृष्ण की प्रिया।
प्रभु ने नारद जी का स्वागत, भक्ति-भाव के साथ किया॥ २०॥

प्रभु ने कहा - आप कब आये, आप सदा परिपूर्ण रहें।
हम अपूर्ण हैं फिर भी कोई सेवा कार्य अवश्य कहें॥ २१॥

चकित और विस्मित थे नारद, माया द्वारा छले गए।
वे उठकर चुपचाप, शीघ्र ही अन्य महल में चले गए॥ २२॥

उसमें कृष्ण दिखे सब बच्चों से करते बातें प्यारी।
अन्य भवन में दिखे कृष्ण कर रहे स्नान की तैयारी॥ २३॥

कहीं दिखे वे पूजन करते, कहीं दिखे भोजन करते।
कहीं कराते दिखे विप्र भोजन, तो कहीं हवन करते॥ २४॥

कहीं दिखे गायत्री जपते, कहीं करें संध्या वंदन।
कहीं ढाल-तलवार लिए, पैंतरे सीखते यदुनंदन॥ २५॥

कहीं अश्व, गज, रथ पर चढ़कर, प्रभु वन में विचरण करते।
कहीं पलंग पर सोते, कही प्रार्थना बंदी-गण करते॥ २६॥

उद्धव आदि मंत्रियों से चर्चा कर परामर्श पाते।
ललनाओं से कर जल-क्रीड़ा, कहीं दिखे प्रभु हर्षाते॥ २७॥

कहीं श्रेष्ठ विप्रों को देते दिखे सजीं उत्तम गायें।
मंगलमय इतिहास-कथायें सुनकर कहीं तृप्ति पायें॥ २८॥

कहीं अर्थ का संचय करते, कहीं धर्म का प्रतिपादन।
कहीं प्रिया के साथ हास्य का करते दिखे रसास्वादन॥ २९॥

कहीं किसी एकांत जगह में, प्रभु खुद करते ध्यान दिखे।
और कहीं गुरुजन की सेवा कर, देते सम्मान दिखे॥ ३०॥

कहीं संधि की बातें करते, कहीं करें रण की बातें।
बल के साथ दिखे वे करते जनसाधारण की बातें॥ ३१॥

कहीं पुत्रियों को सदृश्य वर से कर ब्याह तृप्ति पाते।
और कहीं पुत्रों का करके ब्याह, योग्य वधुएं लाते॥ ३२॥

कहीं बिदा करते कन्या को और कहीं स्वागत करते।
लोग चकित थे देख, कृष्ण सब आयोजन विधिवत करते॥ ३३॥

कहीं देवताओं को करने तृप्त, यज्ञ करते पाये।
कहीं मिले उस जगह, जहां मठ, कुएं, बगीचे बनवाये॥ ३४॥

चढ़े दिखे सैंधव-घोड़ों पर, वन में साथ समूह गया।
और यज्ञ के लिए योग्य पशुओं की स्वयं करें मृगया॥ ३५॥

कहीं प्रजा में, अंतःपुर में वेष बदल कर छुप जाते।
योगेश्वर छुप-छुप कर सारी जानकारियों को पाते॥ ३६॥

चकित हुए प्रभु की माया के वैभव के दर्शन पाकर।
मानव-लीलाधारी प्रभु से बोले नारद मुस्काकर॥ ३७॥

बड़े-बड़े मायापतियों को है अगम्य प्रभु की माया।
मैं प्रभु के चरणों का सेवक हूँ, इसलिए देख पाया॥ ३८॥

आज्ञा दें प्रभु अब लोकों में विचरण करने को जाऊं।
और आपकी त्रिभुवन-पावन लीला, त्रिभुवन में गाऊं॥ ३९॥

प्रभु बोले - नारद तुम मुझको इतने रूपों में पाये।
मैं आचरण धर्म का करता, ताकि विश्व भी अपनाये॥
मैं ही पालनकर्ता, अनुमोदनकर्ता, मैं ही वक्ता।
पुत्र, तुम्हें माया से मेरी, बस गुण-गान बचा सकता॥ ४०॥

शुक बोले - नारद ने प्रभु को, सारे महलों में पाया।
कैसे करें गृहस्थ धर्म का पालन, प्रभु ने सिखलाया॥ ४१॥

प्रभु की शक्ति अनंत और वैभव से युक्त योगमाया।
नारद ने देखा सब कुछ पर, कुछ भी समझ नहीं आया॥ ४२॥

अर्थ-धर्म-कामादि दिखे उनको, प्रभु से श्रद्धा पाते।
नारद को भी मिला मान, वे चले कृष्ण के गुण गाते॥ ४३॥

करने को कल्याण जगत का प्रभु माया स्वीकार करें।
लीलाधारी प्रभु खुद भी मानव जैसा व्यवहार करें।
थीं पत्नियां सहस्त्रों, प्रभु की परम-कृपा सबने पा ली।
सबके साथ विहार करें प्रभु, माया बहुत शक्तिशाली॥ ४४॥

प्रभव-प्रलय-पालन के कारण सभी ओर है व्यापकता।
जो लीलाएं की हैं प्रभु ने, अन्य न कोई कर सकता॥
जो लीलाओं का अनुमोदन, श्रवण करें अथवा गायें।
मार्ग मोक्ष का मिले उन्हें, वे प्रभु की श्रेष्ठ भक्ति पायें॥ ४५॥

सत्तरवां अध्याय

भगवान श्रीकृष्ण की दिनचर्या और उनके पास जरासंध के कैदी राजाओं के दूत का आगमन

शुक बोले - प्रभु-भुजा कंठ में डाले ललनाएं सोतीं।
सुन कुक्कुट की बांग, कोसतीं उसको, विरहाकुल होतीं॥ १॥

पारिजात की गंध वायु ले बहे, भ्रमर छेड़ें तानें।
बंदी-जन की तरह जगाने प्रभु को खग गायें गानें॥ २॥

बाहुपाश में बंधी रुक्मिणी, बांह छूटने से डरतीं।
वे पवित्र सुन्दर मुहुर्त को बिलकुल सहन नहीं करतीं॥ ३॥

ब्रह्म-मुहुर्त जगाता प्रभु को, धो मुंह-हाथ ध्यान करते।
आत्म-रूप का ध्यान करें, आनंद आत्मा में भरते॥ ४॥

आत्म-रूप जो है अखण्ड, अव्यय, अनन्य, अविनाशी है।
कल्मष-नाशक, सत्य, स्वयं-संस्थित है स्वयं प्रकाशी है।
वही ब्रह्म जो उद्भव, पालन और प्रलय का है कारण।
शक्ति असीम, अनंत, अप्रितम, अच्युत और असाधारण॥ ५॥

निर्मल जल से स्नान करें प्रभु, शुद्ध वस्त्र करते धारण।
नित्य-कर्म, संध्या करते, जैसे करते जन-साधारण॥
करते हवन, जपें गायत्री, प्रभु ऐसे आचरण करें।
जन-साधारण उन्हें देखकर उनका ही अनुकरण करें॥६॥

पितृ, देव, ऋषि-तर्पण नित प्रभु, सूर्योदय के साथ करें।
कुल वृद्धों-विप्रों का वंदन, कृष्ण झुका कर माथ करें॥७॥

फिर विप्रों को देते, सजी-धजी बछड़ों वाली गायें।
खुर में रजत, सींग में सोना, पहनें मणि की मालायें॥८॥

एक हजार और चौरासी गायें रोज विप्र पायें।
विप्रों को भी वस्त्र रेशमी, तिल, मृगचर्म दिए जायें॥९॥

देव, विप्र, गौ, कुल-वृद्धों को छूकर प्रभु प्रणाम करते।
इस सबके पश्चात नित्य प्रभु कोई नया काम करते॥१०॥

प्रभु तो अलंकार हैं, सारा जग सुन्दर उनके कारण।
फिर भी प्रभु करते हैं वस्त्राभूषण-अंगराग धारण॥११॥

अपनी छबि देखें दर्पण में, फिर देखें सुर-प्रतिमायें।
विप्रों को देखते, देखते फिर वे वृषभ और गायें॥
पुर-अंतःपुर-वासी सबकी पूरी करते इच्छाएं।
प्रभु आनंदित करते सबको, खुद आनंदित हो जाएं॥१२॥

अंगराग, ताम्बूल, सुगंधित-चंदन एवं मालायें।
विप्र, रानियों, स्वजन, मंत्रियों में पहले बांटे जायें॥
जो सामग्री बच जाती, प्रभु उसका ही उपयोग करें।
प्रभु ऐसा करते संभवतः, ताकि अनुसरण लोग करें॥१३॥

दारुक लाता तभी दिव्य रथ, सुग्रीवादि अश्व जोते।
कर प्रणाम उस जगह ठहरता, प्रभु जिस जगह खड़े होते॥१४॥

प्रभु, उद्धव, सात्यकि को ले, उस उत्तम रथ पर चढ़ जाते।
जिस प्रकार उदयाचल पर रवि हो, वैसी शोभा पाते॥१५॥

करतीं बिदा रानियां प्रभु को, बहुत लजाते-सकुचाते।
प्रभु मुस्काते, चित्त चुराते, महलों से बाहर जाते॥१६॥

दिव्य सुधर्मा सभा जहां, प्रभु सब स्वजनों के सहित रहें।
जरा-मृत्यु, दुख-ममता-भूख-प्यास से सारे रहित रहें॥१७॥

प्रभु सिंहासन ग्रहण करें, जब सभी सभासद आ जायें।
उनकी अंग-कांति से दसों-दिशाएं उज्ज्वलता पायें॥
प्रभु के चारों ओर बैठते हैं, जब यदुवंशी सारे।
ऐसे शोभा पाते, चन्द्रदेव को घेरे हों तारे॥१८॥

विविध नृत्य करतीं नर्तकियां, नाटक करते अभिनेता।
हास्य-विनोद विदूषकगण करते, जो प्रभु को सुख देता॥१९॥

प्रभु के यश का गान करें, मागध-बंदीजन सजे-धजे।
तान मिला कर शंख, पंखावज, वीणा, वंशी, झांझ बजे॥२०॥

कभी वेद-पाठी द्विज कठिन ऋचाएं समझाया करते।
कभी यशस्वी-राजाओं के आख्यान गाया करते॥२१॥

एक दिवस उस राजसभा के बाहर एक पुरुष आया।
प्रभु की आज्ञा पाकर द्वारपाल उसको भीतर लाया॥२२॥

किया दूत ने नमन, बताया - उनका संदेशा लाया।
जरासंध ने जिन नृपगण को बंदीगृह में डलवाया॥२३॥

जरासंध के आगे नहीं झुके जो नृप भय के मारे।
बंदीगृह में पड़े हुए हैं, बीस सहस्त्र नृपति सारे॥ २४॥

कृष्ण आप हैं अप्रमेय, भव-भंजन-कर्ता, सुखदाता।
उसका भय समाप्त हो जाता, शरण आपकी जो आता॥ २५॥

जो निषिद्ध हैं काम, उन्हीं में घिरते सभी जीवधारी।
भूल गए कल्याण-मार्ग को, भूले उपासना सारी॥
बांधे रहतीं पुष्ट लताओं जैसी दृढ़ अभिलाषाएं।
प्रभु आये हैं शरण, आप उनका विच्छेदन कर पाएं॥ २६॥

हे जगदीश्वर! आप जगत में, सब शक्तियों सहित आये।
ताकि दुष्ट दण्डित हों, संतों का परित्राण किया जाये॥
तब प्रभु कैसे अन्य हमें दे सकता कठिन यातनाएं।
हम हैं प्रभु आपके, मुक्त करने हमको हे प्रभु आयें॥ २७॥

है प्रारब्ध अधीन राज्यसुख, स्वप्न सदृश्य असत् होता।
इसे भोगने वाला तन भी, कब निर्भय-शाश्वत होता॥
भोग रहे हैं क्लेश, आपकी माया में फंस अज्ञानी।
आत्मिक सुख, निष्काम भाव की अब हमने महिमा जानी॥ २८॥

शरणागत के शोक-मोह को प्रभु के चरण-कमल हरते।
जरासंध के बंधन को प्रभु, फिर क्यों नहीं दूर करते॥
दस सहस्त्र हाथी का बल है, जरासंध से जग डरता।
हमको घेरे है जैसे, भेड़ों को सिंह घेरा करता॥ २९॥

प्रभु आपने पराजित जरासंध को सत्रह बार किया।
एक बार रण छोड़ा प्रभु ने, नर जैसा व्यवहार किया॥
दर्प बढ़ गया उसका, प्रजा आपकी ज्यादा दुख पाये।
प्रभु वह करिये शीघ्र, आपकी जो इच्छा हो, जो भाये॥ ३०॥

कहा दूत ने - प्रभु बंदी राजाओं का परित्राण करें।
चरण-शरण में हैं, दर्शन के इच्छुक हैं, कल्याण करें॥ ३१॥

शुक बोले - इस बीच सभा में तेजस्वी नारद आये।
जटा सुनहरी थी, सब सूरज उगने का धोखा खाये॥ ३२॥

हर्षित हुए देख कर उनको लोकेश्वर, प्रभु, यदुनंदन।
सभी सभासद सहित खड़े हो, मुनि का किया चरण-वंदन॥ ३३॥

प्रभु ने पूजा की विधि से, मुनि को आसन पर बैठाकर।
जब मुनिवर संतुष्ठ दिखे, तब प्रभु ने पूछा मुस्काकर॥ ३४॥

तीनों लोकों में मंगल है, मुनिवर कृपया बतलाएं।
विचरण करते आप, सभी घर बैठे समाचार पाएं॥ ३५॥

तीन लोक में ऐसा क्या, मुनि जिसे न आप जान पायें।
कृपया बतलाएं, पांडव-पुत्रों की नई योजनायें॥ ३६॥

मुनि बोले - प्रभु की माया, ब्रह्मा भी समझ न पाये हैं।
ज्यों लकड़ी में अग्नि रहे, घट-घट में आप समाये हैं॥
हैं सर्वज्ञ आप, रहती है प्रभु को सभी जानकारी।
फिर भी पूछ रहे प्रभु मुझसे, माया की है बलिहारी॥ ३७॥

इस संसृति का प्रभव-प्रलय-पालन करती प्रभु की माया।
जग असत्य है, सच लगता क्यों, कोई नहीं समझ पाया॥
कोई न जाने प्रभु कब, क्या सोचें, क्या करें, विचार करें।
हैं सर्वथा विलक्षण प्रभु, मेरा प्रणाम स्वीकार करें॥ ३८॥

वासनाओं का चक्र, जीव को जीवन भर भटकाता है।
मुक्ति प्राप्त कैसे होगी, जीवन भर समझ न पाता है॥
यश के दीप जला करते हैं, प्रभु जब-जब अवतार धरें।
इस प्रकाश में ही प्राणी भव-भय से बेड़ा पार करें॥ ३९॥

परम ब्रह्म हैं आप, जानते हैं सब कुछ लीलाधारी।
बतलाता हूँ धर्मराज की भावी गतिविधियां सारी॥ ४०॥

होगा यज्ञ आपको पाने, राजसूय जो कहलाये।
होगी कृपा, अगर अनुमोदन प्रभु का उनको मिल जाये॥ ४१॥

सभी यशस्वी नृपति वहां आ, प्रभु का दर्शन पायेंगे।
बड़े-बड़े देवता-देवियां यज्ञ देखने आयेंगे॥ ४२॥

श्रवण, कीर्तन और ध्यान करके सब भवसागर तरते।
उनका क्या कहना, करते स्पर्श और दर्शन करते॥ ४३॥

दसों दिशाओं में प्रभु का निर्मल यश व्याप्त हो रहा है।
वसुंधरा, पाताल, स्वर्ग, सबको सुख प्राप्त हो रहा है॥
मंदाकिनी स्वर्ग में कहलाती है चरणामृत धारा।
भोगवती पाताल, करे गंगा पावन यह जग सारा॥ ४४॥

शुक बोले - यदुवीरों को हमला करने उद्यत पाकर।
मीठी वाणी में उद्धव से, बोले प्रभु कुछ मुस्काकर॥ ४५॥

प्रभु बोले - तुम सुहृद, हितैषी, हो तत्वज्ञ, परमयोगी।
तुम सलाह दोगे उपयोगी, वही श्रेष्ठ सम्मति होगी॥ ४६॥

उद्धव ने देखा प्रभु हैं सर्वज्ञ बन रहे अनजाने।
होगा उचित, उचित मत देने की प्रभु की आज्ञा माने॥ ४७॥

इकहत्तरवां अध्याय

श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पधारना

शुक बोले - नारद जी का मत, स्वजनों की इच्छा जानी।
प्रभु की आज्ञा पर, विचार करके बोले उद्धव-ज्ञानी॥ १॥

उद्धव बोले - यज्ञ-कार्य में जाना अपरिहार्य होगा।
शरणागत की रक्षा करना भी करणीय कार्य होगा॥ २॥

राजसूय वह यज्ञ, दिग्विजय पहली आवश्यकता है।
इस कारण भी जरासंध पहले मारा जा सकता है॥ ३॥

राजा होंगे मुक्त, यज्ञ का बाधक भी समाप्त होगा।
जरासंध के वध से प्रभु को भारी सुयश प्राप्त होगा॥ ४॥

दस-सहस्त्र-गज-बल है, जरासंध से सारा जग हारा।
वह समान बल-युक्त भीम के हाथों जायेगा मारा॥ ५॥

है सौ अक्षौहिणी सैन्य बल, जो उसका संबल होगा।
द्वंद्व-युद्ध में जरासंध का वध अत्यंत सरल होगा।
है वह भक्त ब्राह्मणों का, यदि ब्राह्मण कुछ याचना करे।
संभव नहीं कि जरासंध उसको देने से मना करे॥ ६॥

द्वंद्व-युद्ध की भिक्षा मांगें, भीम विप्र बन कर जायें।
आप अगर मौजूद रहें तो, उसको भीम मार पायें॥ ७॥

ब्रह्मा-शिव निमित्त हैं, प्रभव-प्रलय करती प्रभु की माया।
काल रूप हैं आप, वही होता है जो प्रभु को भाया॥ ८॥

जरासंध का वध करके, बंदी-नृप मुक्त किये जायें।
प्रभु के यश का गान करेंगी राजाओं की ललनायें॥
मुक्त हुए वसुदेव-देवकी, गज, जानकी, गोपिकाएं।
सारे मुनिगण प्रभु की इन लीलाओं को नित-प्रति गाएं॥ ९॥

जरासंध का वध करना तो, पहले इन्द्रप्रस्थ जायें।
भीमसेन को लायें, वध करवायें, नृपति मुक्ति पायें॥ १०॥

शुक बोले - उद्धव के मत को माना सबने हितकारी।
प्रभु ने किया समर्थन, नारद खुश, संतुष्ठ सभा सारी॥ ११॥

फिर प्रभु ने वृद्धों-विप्रों को देकर सभी जानकारी।
आज्ञा दी दारुक को, कहा, करे चलने की तैयारी॥ १२॥

उग्रसेन-बल से आज्ञा लेकर प्रस्थित परिवार हुए।
फिर दारुक के गरुड़ध्वज रथ पर प्रभु स्वयं सवार हुए॥ १३॥

साथ चले रथ, हाथी, अश्वारोही, पैदल सजे-धजे।
शंख, मृदंग, नगाड़े, नरसिंहे जैसे सब वाद्य बजे॥ १४॥

रुक्मिणी आदि रानियां एवं उनकी सारी संतानें।
चढ़ी डोलियों में सजधज कर, उत्सुक इन्द्रप्रस्थ जानें॥
रथ, पालकी, डोलियों का यह रेला था विस्तार लिए।
सेना भी थी साथ, हाथ में ढाल और तलवार लिए॥ १५॥

साथ अनुचरों की महिलाएं भी पीछे-पीछे आयें।
कंबल, तम्बु, कनात लिए सब पूरी करें व्यवस्थाएं॥
सामग्री को लाद चल रहे थे छकड़े, खच्चर, हाथी।
होतीं थीं उपलब्ध वस्तुएं, जब जिसकी आवश्यकता थी॥ १६॥

छत्र, चंवर, आभूषण, कवच, मुकुट पर रवि किरणें ठहरें।
ऐसी शोभा होती जैसे सागर में उठती लहरें॥ १७॥

थे देवर्षि प्रसन्न, कृष्ण ने उनका ही सुझाव माना।
प्रभु के दर्शन मिले, हो गया उनका सफल वहां आना॥
प्रभु की छबि को मन में रखकर, मन ही मन में नमन किया।
प्रभु की आज्ञा पा मुनि ने फिर गगन मार्ग से गमन किया॥ १८॥

कहा दूत से प्रभु ने - राजाओं को आश्वासन देना।
जरासंध मारा जायेगा, बिन शस्त्रास्त्र, बिना सेना॥ १९॥

गया दूत आज्ञा ले, राजाओं से सब वृत्तांत कहा।
नृप सोचे, प्रभु के दर्शन के लिए उन्होंने कष्ट सहा॥ २०॥

मरु, आनर्त, सुबीर और कुरुक्षेत्र कृष्ण ने पार किये।
नदी, पहाड़, नगर, गांवों में रुक आहार-विहार किये॥ २१॥

सरस्वती, दृषद्वती सरित-जल पीकर कृष्ण तृप्ति पाये।
मत्स्य और पांचाल देश होकर प्रभु इन्द्रप्रस्थ आये॥ २२॥

नृपति युधिष्ठिर प्रभु के आने का जब समाचार पाये।
स्वजनों, विप्रों के समेत स्वागत करने बाहर आये॥ २३॥

स्वागत वाद्य बजायें बंदी, द्विज-गण वेद-मंत्र गायें।
सभी चले इस तरह इन्द्रियां, प्राणों से मिलने जायें॥ २४॥

नृपति युधिष्ठिर मिले कृष्ण से, मिलकर गद्‌गद हो जायें।
बार-बार आलिंगन करते, पर संतुष्ठ न हो पायें॥ २५॥

कमला का आवास वक्ष, प्रभु जिसको गले लगाते हैं।
वे जन सारे पापों-तापों से छुटकारा पाते हैं॥
अंग-अंग पुलकित, आंखों में अश्रु प्रेम के भर आये।
सब कुछ भूले, नृपति प्रेम-सागर में डूबे-उतराये॥ २६॥

किया भीम ने प्रभु का आलिंगन सारी सुध-बुध खोकर।
बह निकले उनकी आंखों से, आंसू आनंदित होकर॥
प्रभु से मिलने को अर्जुन, सहदेव, नकुल तीनों आये।
सबको प्रभु ने प्रेम दिया, सब प्रभु का आलिंगन पाये॥ २७॥

अर्जुन गले मिले फिर-फिर, सहदेव, नकुल करते वंदन।
प्रभु ने भी विप्रों-वृद्धों का किया प्रेम से अभिनंदन॥ २८॥

कुरु, केकय, सृंजन के प्रजाजनों ने प्रभु का मान किया।
मागध, सूत और बंदीजन ने प्रभु का गुण-गान किया॥ २९॥

नट, गंधर्व, विदूषक नाचे, तोरण-वंदनवार सजे।
शंख, नगाड़े, नरसिंघे, वीणा, मृदंग सब वाद्य बजे॥ ३०॥

स्वजन, सुहृद, सेवकों सहित प्रभु इन्द्रप्रस्थ नगरी आये।
पाप-ताप हो गए नष्ट, जिसने प्रभु के दर्शन पाये॥ ३१॥

पुर में लगे हुए बहुरंगी ध्वज, स्वर्णिम वंदनवारे।
स्वर्ण-कलश थे रखे, सुगंधित जल अभिसिंचित गलियारे॥
नये वस्त्र धारण कर सजे-धजे थे सारे नर-नारी।
प्रभु के स्वागत की तैयारी में संलग्न प्रजा सारी॥ ३२॥

द्वार-द्वार पर दीप सजे थे, घर-घर सजी पताकाएं।
महल सजे थे स्वर्ण-कलश से, रजत-शिखर शोभा पायें॥
घर-घर में सुगंध फैलाता, चंदन, धूप, अगर देखा।
हो प्रसन्न प्रभु ने गलियां, चौराहे, पूर्ण नगर देखा॥ ३३॥

ललनाएं आ गईं राजपथ पर उत्सुकता के मारे।
होने लगे शिथिल चोटी के, सारी के बंधन सारे॥
घर का काम-काज भी छोड़ा, छोड़ दिया पति को सोता।
प्राप्त कृष्ण के दर्शन का अवसर तो कभी-कभी होता॥ ३४॥

सड़कों पर रथ, हाथी, घोड़े, पैदल सेना थी भारी।
छज्जे, छत, अटारियों पर भी चढ़े हुए थे नर-नारी॥
दर्शन करें, पुष्प बरसायें, मन में आलिंगन पायें।
मधु-मुस्कान, चारु-चितवन से स्वागत करती ललनाएं॥ ३५॥

प्रभु चन्द्रमा, रानियां तारागण जैसी शोभा पायें।
जाने कितने पुण्य किए होंगे, यह सोचे ललनाएं।
हैं अति-भाग्यवान तिरछी-चितवन, मुस्कान-मधुर देखें।
ललनाएं प्रभु को देखें, प्रभु ललनाओं का पुर देखें॥ ३६॥

राजमार्ग में पुरवासी, प्रभु का स्वागत सत्कार करें
प्रभु का पूजन करें, भेंट दें, प्रभु वंदन स्वीकार करें॥ ३७॥

राजमार्ग से निकल कृष्ण ज्यों ही अंत:पुर में आये।
सारी ललनाओं को स्वागत-आदर में तत्पर पाये॥ ३८॥

कुंती ने भ्रातृज को देखा, छोड़ पलंग उठकर आईं।
भरे हृदय से प्रभु को गले लगाया, आत्मिक सुख पाईं॥ ३९॥

नृपति युधिष्ठिर थे विभोर, आनंदित एवं प्रेम सने।
प्रभु का पूजन किस क्रम से हो, कुछ कहते-करते न बने॥ ४०॥

विप्र-पत्नियों का, कुंती का प्रभु ने किया चरण-वंदन।
किया सुभद्रा और द्रोपदी ने भी प्रभु का अभिनंदन॥ ४१॥

कृष्णा-कुन्ती लेकर आईं वस्त्राभूषण, मालाएं।
प्रेम सहित रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा को पहनाएं॥
जाम्बवती, कालिन्दी, लक्ष्मणा का भी सत्कार हुआ।
सत्या और मित्रविंदा का स्वागत विधि अनुसार हुआ॥ ४२॥ ४३॥

नृपति युधिष्ठिर ने कीं ऐसी सबके लिए व्यवस्थायें।
प्रभु के सेवक, सचिव, सैन्यदल, सपरिवार सुविधा पायें॥ ४४॥

खाण्डव वन का दाह हुआ जब, मय का प्रभु ने त्राण किया।
दिव्य भवन का प्रभु के कहने से मय ने निर्माण किया॥ ४५॥

प्रभु कुछ मास वहीं थे, सबको सुख देते, खुद सुख पाते।
कभी-कभी ले साथ पार्थ को, वन-विहार करने जाते॥ ४६॥

बहत्तरवां अध्याय

पांडवों के राजसूय यज्ञ का आयोजन एवं जरासंध उद्धार

शुक ने कहा - एक दिन नृप की राजसभा में प्रभु आये।
क्षत्रिय, विप्र, वैश्य, मुनि, आचार्यों को नृप थे बुलवाये॥ १॥

कुल के वृद्ध, कुटुम्बी, भाई का नृप को सहयोग रहा।
सबकी सम्मति लेकर नृप ने प्रभु से हो करबद्ध कहा॥ २॥

धर्मराज बोले - अच्युत! आपका अगर अनुमोदन हो।
करने यजन आपका, राजसूय मख का आयोजन हो॥ ३॥

करें अमंगल नष्ट, नाथ की मंगल चरण-पादुकाएं।
उनकी जो सेवा करते हैं, वे ही पावन कहलाएं॥
वे चाहें तो सांसारिक सुख पायें, छुटकारा पायें।
पर वे दोनों लोक गंवाये, नहीं शरण प्रभु की आयें॥ ४॥

प्रभु देखे संसार, आपकी चरण-शरण में जो आयें।
वे राजागण कृपा आपकी पायें, सारे सुख पायें॥
कुरु-सृंजनवंशी नृप जिनकी श्रद्धा नित्य-निरंतर है।
उनमें, और अन्य नृपगण में सब देखें क्या अंतर है॥ ५॥

ब्रह्म-स्वरूप आप समदर्शी मन में भेद नहीं लाते।
पर जैसी सेवा जो करते, वे वैसा ही फल पाते॥
कल्पवृक्ष में नहीं विषमता पर फल ज्यादा-कम मिलता।
जैसी हो भावना उसी से, फल सम और विषम मिलता॥ ६॥

प्रभु बोले - नृप श्रेष्ठ आपके सद्विचार मन को भाये।
यज्ञ श्रेष्ठ है राजसूय, जो लोकों में यश फैलाये॥ ७॥

महायज्ञ यह, ऋषि, सुर, पितरों, स्वजनों का कल्याण करे।
मैं हूँ तुष्ठ, सभी जीवों में शुचिता का निर्माण करे॥ ८॥

धरती के सब नृप जीतो, फिर धरती पर अधिकार करो।
राजसूय यह यज्ञ नृपति पूरी विधि के अनुसार करो॥ ९॥

देवों के हैं अंश सभी भाई, मन पर संयम पाया।
मन पर जिसने वश पाया, मैं भी उसके वश में आया॥ १०॥

यश, श्री, तेज, विभूति और ऐश्वर्य युक्त हैं सुर सारे।
इन सारी विभूतियों से भी मेरा भक्त नहीं हारे॥
तिरस्कार कर सके भक्त का, उपादान वह बना नहीं।
तिरस्कार कोई नृप कर दे इसकी संभावना नहीं॥ ११॥

शुक बोले - सुन प्रभु की वाणी, नृप को हर्ष अपार हुआ।
कहा भाइयों को दिग्विजय करें, बल का संचार हुआ॥ १२॥

कहा भीम को मद्र-सैन्य-बल लेकर पूर्व दिशा जायें॥
कैकय वीरों को लेकर अर्जुन उत्तर में जय पायें॥
नकुल, मत्स्यवीरों को लेकर पश्चिम में ध्वज फहरायें।
दक्षिण में सहदेव सैन्य दल सृंजय का लेकर जायें॥ १३॥

चारों वीर, दिशायें चारों जीत, शीघ्र वापस आये।
यज्ञ हेतु राजाओं से धन एकत्रित करके लाये॥१४॥

चिंतित हुए युधिष्ठिर, जरासंध अविजित है जब जाना।
प्रभु बोले - तो नृप ने, उद्धव-वाला ही सुझाव माना॥१५॥

याचक-विप्र बन गए अर्जुन, भीम, कृष्ण जैसे दानी।
गिरिब्रज पहुंचे, जरासंध की थी जिस जगह राजधानी॥१६॥

जरासंध का विप्रों की सेवा का सरल स्वभाव रहा।
छद्म वेशधारी विप्रों ने राजा से इस तरह कहा॥१७॥

राजन हम हैं अतिथि, आपके पास प्रयोजन से आये।
है याचना हमारी जो भी, उसको पूर्ण किया जाये॥१८॥

नहीं बुरा जो नहीं करे खल, सहनशील क्या नहीं सहे।
नहीं पराया कुछ सहिष्णु को, कभी न दानी नहीं कहे॥१९॥

अविनाशी-यश करे न संग्रह, जो इस नाशवान तन से।
वह है निंदा योग्य, नहीं पाया उसने कुछ जीवन से॥२०॥

हरिश्चन्द्र, बलि, रन्तिदेव, मुद्गल का यश जाता गाया।
नाशवान तन दिया अतिथि को, अविनाशी पद को पाया॥२१॥

शुक बोले - स्वर, आकृति, हाथों पर प्रत्यंचा की रेखा।
उसने देखी, क्षत्रिय माना, सोचा इन्हें कहीं देखा॥२२॥

क्षत्रिय हैं पर मेरे भय से, विप्र-रूप धर कर आये।
दे दूंगा दुस्त्यज्य देह भी, यदि भिक्षा मांगी जाये॥२३॥

विप्र-वेष धर हरि ने बलि से, धन-ऐश्वर्य भले पाया।
पर बलि का यश-गान आज भी, जग में जाता है गाया॥२४॥

उसे ज्ञात था हरि-इच्छा है, भूमि इन्द्र को लौटाना।
दान भूमि का किया, शुक्र ने रोका मगर नहीं माना॥२५॥

यदि प्राणी इस नाशवान तन से यश नहीं कमाता है।
जीवन करे न द्विज को अर्पण, जीवन व्यर्थ गंवाता है॥२६॥

भीम, कृष्ण, अर्जुन से जरासंध ने इसके बाद कहा।
सिर मांगोगे तो दे दूंगा, मांगो जो भी ध्येय रहा॥२७॥

प्रभु बोले - नृप, नहीं विप्र हम जिन्हें अन्न लेना भाये।
हम क्षत्रिय हैं द्वंद-युद्ध करने की इच्छा से आये॥२८॥

यह है भीम और यह अर्जुन दोनों जाने-माने हैं।
मैं हूँ कृष्ण ममेरा भाई, हम-तुम शत्रु पुराने हैं॥२९॥

सुनकर प्रभु के वचन, लगाया उसने अट्टहास भारी।
चिढ़ कर बोला मूर्ख, तुम्हारी युद्ध-याचना स्वीकारी॥३०॥

तुम कायर हो कृष्ण, सिंधु में छिपे और मथुरा छोड़ी।
तुम तो हो रणछोड़ नहीं बनती तुमसे मेरी जोड़ी॥३१॥

अर्जुन मुझसे वय में छोटा, शारीरिक बल में कम है।
द्वंद करूंगा भीमसेन से, वह बल में मेरे सम है॥३२॥

इतना कह कर जरासंध, दो बड़ी गदाओं को लाया।
एक भीम को दी फिर करने द्वंद, अखाड़े में आया॥३३॥

दोनों महावीर थे, दोनों गदायुद्ध के अधिकारी।
होने लगे प्रहार गदा के, एक दूसरे पर भारी॥३४॥

दायें-बायें बदल पैंतरे, दोनों मारें और बचें।
ऐसा लगा कि रंगमंच पर दो अभिनेता युद्ध रचें॥३५॥

जब टकरायें गदा, गदा से, ज्यों टकरायें गज भारी।
तड़-तड़ की ध्वनि निकले, तड़ित सदृश्य चमकती चिंगारी॥ ३६॥

लिए वृक्ष की शाख, एक-दूजे को ज्यों हाथी मारें।
शाखाएं हो जातीं चूर-चूर, गज मगर नहीं हारें॥
कंधा, कमर, भुजा, जंघा से वज्र गदायें टकरायें।
अंग सुरक्षित रहें, गदायें चूर-चूर होती जायें॥ ३७॥

हुईं गदायें चूर, कुचलने की कोशिश की दुश्मन को।
घूंसे ऐसे लगे कि जैसे, पटका लोहे के घन को॥
लड़े हाथियों जैसे दोनों, थके नहीं वे लड़-लड़ के।
चले तमाचे-थप्पड़ जैसे तड़-तड़ कर बिजली तड़के॥ ३८॥

दोनों थे समान बलशाली, मल्ल-युद्ध के थे ज्ञानी।
क्षीण नहीं बल हुआ, किसी ने अपनी हार नहीं मानी॥ ३९॥

दिन में लड़ते और रात में एक साथ खाते पीते।
कोई जीता और न हारा, सत्ताईस दिवस बीते॥ ४०॥

अट्ठाइसवें दिवस भीम ने आ प्रभु के समक्ष माना।
जरासंध को मल्लयुद्ध में संभव नहीं हरा पाना॥ ४१॥

जरासंध के जन्म-मृत्यु पर प्रभु ने तनिक विचार किया।
और भीम के तन में फिर अपने बल का संचार किया॥ ४२॥

युक्ति बताई प्रभु ने उसको जरासंध के वध वाली।
प्रभु ने एक वृक्ष की डाली बीचों-बीच चीर डाली॥ ४३॥

प्रभु ने किया इशारा, भीमसेन ने समझ लिया सारा।
जरासंध का पैर पकड़ कर, उसे भूमि पर दे मारा॥ ४४॥

एक पांव को दबा पांव से, दूजा खींचा खड़े-खड़े।
जैसे हाथी फाड़े डाली, किए दुष्ट के दो टुकड़े॥ ४५॥

सभी अंग दोनों टुकड़ों में, एक बराबर बंटे दिखे।
हाथ-पांव थे एक-एक, बाकी के हिस्से कटे दिखे॥ ४६॥

मगध-प्रजा ने मगधराज के वध पर हाहाकार किया।
और भीम का प्रभु ने आलिंगन करके सत्कार किया॥ ४७॥

प्रभु के रूपों और विचारों को कब कौन समझ पाया।
जरासंध के सिंहासन पर उसके सुत को बैठाया॥
प्रभु ने जब अभिषेक किया, सहदेव हो गया आभारी।
मुक्त हुए राजागण, आनंदित हो गई प्रजा सारी॥ ४८॥

तिहत्तरवां अध्याय

जरासंध की जेल से छूटे हुए राजाओं की बिदाई और श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ लौटना

बीस हजार आठ सौ राजा, जो बंदी थे - शुक बोले।
प्रभु के कहने पर उन सबके बंधन गए शीघ्र खोले॥
बहुत दिनों से कैद कंदरा में थे राजा डरे हुए।
मन उज्जवल थे, वस्त्र और तन सभी मैल से भरे हुए॥ १॥

दुर्बल थे सब नृपति, कई दिन से वे सारे भूखे थे।
अंग शिथिल, तन दुर्बल था, जल बिन सबके मुख सूखे थे॥
बाहर निकले तो नृपगण, प्रभु को अपने सम्मुख पाये।
था घनश्याम शरीर और कटि में पीताम्बर लहराये॥ २॥

शंख-चक्र के साथ करों में करके पद्म, गदा धारण।
कमल सदृश्य नेत्र रतनारे, मुख की छटा असाधारण॥ ३॥

वक्षस्थल पर दिखा दिव्य श्रीवत्स और स्वर्णिम रेखा।
मुकुट, कड़े, कुंडल, करधन सब आभूषण पहने देखा॥ ४॥

ग्रीवा में कौस्तुभ-मणि एवं वनमाला शोभा पायें।
राजाओं की आंखें, प्रभु की रूप सुधा पीती जायें॥ ५॥

भरा बाहुओं में मन ही मन, छबि को सूंघा और चखा।
पावन हुए सभी दर्शन पा, फिर चरणों में शीश रखा॥ ६॥

क्लेश नष्ट हो गये कृष्ण-दर्शन से नृपति तृप्ति पाये।
हाथ जोड़ गद्-गद् वाणी में सब प्रभु की स्तुति गाये॥ ७॥

हे देवेश्वर, दुख-भय हारी, कृष्ण नमन स्वीकार करें।
किया कैद से मुक्त हमें अब भव-सागर से पार करें॥ ८॥

दोष नहीं कुछ जरासंध का, यह तो है आपकी दया।
जो हम जैसे राजाओं को श्री से वंचित किया गया॥ ९॥

हो जाते उन्मत्त राज्य-मद में, प्रभु की ऐसी माया।
चंचल धन को अचल मान, किसने कल्याण यहां पाया॥ १०॥

मृग-तृष्णा के जल में ज्यों आभास जलाशय का होता।
मान सत्य माया को मानव, मूर्ख व्यर्थ जीवन खोता॥ ११॥

धन के मद में चूर हो गये थे, अंधे हम नृप सारे।
करते रहे होड़ आपस में, दुखी प्रजाजन बेचारे॥
निर्भय होकर हम जैसे नृप, सारे क्रूर कर्म करते।
मृत्यु-रूप में आप खड़े होंगे, यह ध्यान नहीं धरते॥ १२॥

थी यह कृपा आपकी, जिसने दाताओं को दीन किया।
चूर-चूर कर दिया दर्प, श्रीमन्तों को श्री-हीन किया॥
गति है अति बलवती काल की प्रभु की अनुकम्पा पाई।
प्रभु के चरण-शरण में आकर हुआ कष्ट भी सुखदाई॥ १३॥

रोगों का आश्रय स्थल है यह शरीर घटता जाता।
राज्य-भोग भी है मृगतृष्णा, सबको केवल भरमाता॥
इच्छा नहीं कर्म के बदले हम स्वर्गादि लोक पायें।
केवल सुनने में आकर्षक, सारहीन ही कहलायें॥ १४॥

वह उपाय बतलाएं, प्रभु की स्मृति सदा रहे मन में।
भूले नहीं आपको चाहे, किसी योनि में भी जन्में॥ १५॥

नमन हमारा वासुदेव, गोविंद, कृष्ण स्वीकार करें।
हे देवेश्वर, हम चरणों में वंदन बारम्बार करें॥ १६॥

शुक बोले - बंदी नृपगण को प्रभु ने शरणागत पाकर।
सुनकर स्तुति प्रभु शरणगत-वत्सल बोले मुस्काकर॥ १७॥

प्रभु बोले - इच्छानुसार मेरी दृढ़ भक्ति प्राप्त होगी।
मुक्ति प्राप्त होगी, संसार-चक्र की गति समाप्त होगी॥ १८॥

तुमने ठीक कहा जो भी ऐश्वर्य और सम्पत्ति पा ले।
होकर मद में चूर हुआ करते उछृंखल-मतवाले॥ १९॥

हैहय, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर, देव-दैत्य सारे।
श्रीमद के कारण ही पदच्युत हुए, गये अथवा मारे॥ २०॥

जो शरीर पैदा होता उसका विनाश भी निश्चित है।
मन को वश में करो, भजो मुझको, इसमें सबका हित है॥ २१॥

सुख-दुख, हानि-लाभ मेरी इच्छा मानें, स्वीकार करें।
सदा प्रजा से अपने सुत के जैसा ही व्यवहार करें॥ २२॥

उदासीन होने से ही भव का बंधन समाप्त होगा।
आत्म-रमण-रत रहें, अंत में निश्चित ब्रह्म प्राप्त होगा॥ २३॥

शुक बोले - ऐसा कह प्रभु ने किए नियुक्त भृत्य सारे।
ताकि कर सके नृपति स्नान-मंजन इत्यादि कृत्य सारे॥ २४॥

की सहदेव नृपति ने उनकी दैहिक सभी व्यवस्थाएं।
पहनाए राजोचित उत्तम-वस्त्र, मुकुट, मणि-मालाएं॥ २५॥

प्रभु ने अपनी देखरेख में करवाये सब आयोजन।
स्नान-ध्यान के बाद कराया, सबको राजोचित भोजन॥ २६॥

क्लेशों से छुटकारा पाकर, मुकुट-किरीट पहन सारे।
ऐसे शोभित हुए बाद वर्षा के ज्यों चमकें तारे॥ २७॥

सारे राजाओं ने प्रभु की कृपा प्राप्त कर नमन किया।
फिर स्वर्णिम रथ में चढ़कर निज-निज देशों का गमन किया॥ २८॥

मिली कष्ट से मुक्ति, मगध में भी सम्मान-मान पाये।
प्रभु का चिंतन करते-करते सभी राजधानी आये॥ २९॥

राजाओं ने प्रभु की लीला-कथा प्रजा को बतलाई।
राजा और प्रजा दोनों के जीवन में शुचिता आई॥ ३०॥

जरासंध-सुत ने प्रभु का पूजन-अर्चन सम्मान किया।
भीम-पार्थ के साथ कृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान किया॥ ३१॥

शंख बजाये तीनों ने ही, ज्यों ही नगर निकट आया।
हर्षित हुए हृदय सुहृदों के, पर दुष्टों ने दुख पाया॥ ३२॥

समझ गए पुरवासी जरासंध को वीरों ने मारा।
यज्ञ करेंगे धर्मराज, धरती पर बहे धर्मधारा॥ ३३॥

कृष्ण-भीम-अर्जुन ने नृप को सब घटनाएं बतलाईं।
जरासंध का वध करने में जो युक्तियां काम आईं॥ ३४॥

धर्मराज थे धैर्यवान, पर अश्रुश्राव बिन रह न सके।
गद्-गद् हुए, गला भर आया, बहुत देर कुछ कह न सके॥ ३५॥

चौहत्तरवां अध्याय

भगवान श्रीकृष्ण की अग्रपूजा और शिशुपाल उद्धार

शुक बोले - सुन जरासंध-वध का वर्णन विस्मयकारी।
कहा कृष्ण से नृप ने, प्रभु की महिमा की है बलिहारी॥ १॥

धर्मराज बोले - लालायित रहते सुर आज्ञा पानें।
यदि आज्ञा मिलती है प्रभु की, तो वे अहोभाग्य मानें॥ २॥

हम नृप दीन, दण्ड के भागी, यदि आग्रह सविनय करते।
पूरा उसे आप करते प्रभु, मानव-सा अभिनय करते॥ ३॥

उदय-अस्त के समय सूर्य का तेज एक जैसा रहता।
ह्रास-विकास-रहित प्रभु को जग सारा उदासीन कहता॥ ४॥

भेद-बुद्धि रखते पशु, हम भक्तों की यह भावना नहीं।
अपराजेय और समदर्शी में यह संभावना नहीं॥ ५॥

शुक बोले - फिर नृप ने प्रभु की आज्ञा का अनुसरण किया।
यज्ञ हेतु आचार्य और ऋत्विज विप्रों का वरण किया॥ ६॥

भेजा आमंत्रण, ऋषि गौतम, व्यास, वसिष्ठ, गर्ग आये।
भारद्वाज, समन्तु, असित, त्रित, आचार्यों का पद पाये॥७॥

सुमति, च्यवन, मैत्रेय, अकृतव्रण, आसुरि, परशुराम आये।
धौम्य, अथर्व, पैल, मधुछंदा, शुक्राचार्य, वाम आये॥८॥

कषव, कण्व, क्रतु, कश्यप, जैमिनि, वैशम्पायन, पाराशर।
वीति होत्र मुनि वीर-सेन, ऋषि विश्वमित्र आये सादर॥९॥

भीष्म-पितामह, कृपाचार्य, आचार्य-द्रोण भी बुलवाये।
साथ विदुर के महाराज धृतराष्ट्र और सब सुत आये॥१०॥

यज्ञ देखने को विभिन्न देशों के राजागण आये।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सारे जन-साधारण आये॥११॥

धर्मराज ने स्वर्णिम हल से यज्ञ-भूमि को खुद जोता।
ऋत्विज विप्रों के द्वारा तब ही याज्ञिक दीक्षित होता॥१२॥

वरुण-देव की तरह नृपति ने पात्र स्वर्ण के बनवाये।
यज्ञ देखने, ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, देवता-गण आये॥१३॥

यज्ञ देखने सिद्ध, नाग, गंधर्व अैर किन्नर आये।
पक्षी, यक्ष, असुर, मुनि आये चारण, विद्याधर आये॥१४॥

सपरिवार सब आये नृपगण, थी सब तरफ भीड़ भारी।
सबने कहा युधिष्ठिर ही हैं, राजसूय के अधिकारी॥१५॥

ऐसे आयोजन में प्रभु की कृपा बहुत आवश्यक है।
धर्मराज पर कृष्ण कृपा है, अब इस पर किसको शक है॥
तेजस्वी विप्रों ने करवाया सम्पन्न यज्ञ सारा।
वरुण-देव से करवाया था जैसे देवताओं द्वारा॥१६॥

पूजे गए सभी याजक-गण नृपति युधिष्ठिर के द्वारा।
वे भी पूजे गए बताते थे जो विधि-विधान सारा॥१७॥

नहीं एक मत हुई सभा जब किसे प्रथम पूजा जाये।
रखने अपना पक्ष अनुज सहदेव स्वयं आगे आये॥१८॥

देवताओं में, राजाओं में नहीं कृष्ण जैसा दूजा।
सर्वमान्य हैं कृष्ण, उन्हीं की होगी यहां अग्र-पूजा॥१९॥

यज्ञ, अग्नि, आहुति वे ही हैं, उनमें है यह जग सारा।
उनको पाया जा सकता है, केवल कर्मयोग द्वारा॥२०॥

एकमेव हैं, अद्वितीय हैं, भेदहीन व्यवहार करें।
जग है उनका रूप, सृष्टि, पालन एवं संहार करें॥२१॥

उनकी कृपा प्राप्त कर प्राणी, सारे अनुष्ठान करते।
अर्थ-धर्म जैसे पुरुषार्थों को वे ही प्रदान करते॥२२॥

इसीलिए भगवान कृष्ण ही सर्वप्रथम पूजे जायें।
पूजित होगा जीव जगत, पायेंगी तृप्ति आत्मायें॥२३॥

कृष्ण शांत, परिपूर्ण, आत्मा सब जीवों की कहलायें।
उनको जो भी दान दिया जाता, सारे प्राणी पायें॥२४॥

जैसे ही सहदेव चुप हुए, होने लगा शोर भारी।
साधु-साधु कहकर अनुमोदन करने लगी सभा सारी॥२५॥

विप्रों की आज्ञा, सम्पूर्ण सभा का अनुमोदन पाया।
धर्मराज ने प्रभु को पूजा, हृदय प्रेम से भर आया॥२६॥

प्रभु के पांव पखारे नृप ने फिर चरणोदक शीश धरा।
पत्नी, भाई, सुहृद, सचिव ने भी पालन की परम्परा॥२७॥

प्रभु को अर्पित किए वस्त्र पीले, रत्नाभूषण नाना।
नृप की आंखों में आंसू थे, संभव न था देख पाना॥ २८॥

लगा रही थी सभा निरंतर, प्रभु की जय-जय के नारे।
सुर बरसाये सुमन, कर रहे थे प्रभु को प्रणाम सारे॥ २९॥

बैठा था शिशुपाल सभा में, जब प्रभु का गुणगान सुना।
था पूर्वाग्रह प्रेरित, उसका क्रोध बढ़ गया कई गुना॥
आसन से उठ, हाथ उठा, उसने प्रभु को अपशब्द कहे।
क्रोधित होने लगे सभासद, शांत रहे प्रभु मौन रहे॥ ३०॥

बोला - ईश्वर काल रूप है, पर है परिवर्तनकारी।
पड़ा इसलिए वृद्धों के मत पर बालक का मत भारी॥ ३१॥

बालक है सहदेव, कृष्ण को जिसने प्रथम-पूज्य माना।
होगा उचित अन्य का इस पूजा के लिए चुना जाना॥ ३२॥

परम-तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, ऋषि बैठे हैं विद्वान यहां।
जिनको पूजें सुरगण, उनका होना था सम्मान यहां॥ ३३॥

प्रथम-पूज्य कैसे हो सकता है यह कुल-कलंक ग्वाला।
पूर्णाहुति का अधिकारी कैसे होगा कौआ काला॥ ३४॥

वर्णहीन, गुणहीन, धर्म से बाहर, कुल भी अनजाना।
ऐसे स्वेच्छाचारी को ही प्रथम-पूज्य कैसे माना॥ ३५॥

नृप ययाति से शापित, सद्पुरुषों का बहिष्कार भोगा।
करता जो मधुपान सदा, वह प्रथम-पूज्य कैसे होगा॥ ३६॥

पावन धरा त्याग, सागर में दुर्ग बनाया रहने को।
है व्यवहार डाकुओं जैसा, प्रजा सुखी है कहने को॥ ३७॥

नाश कर रहा था शुभ का, शिशुपाल अभद्र शब्द कहकर।
गीदड़ की ध्वनि ज्यों सुनता सिंह, सुना कृष्ण ने चुप रहकर॥ ३८॥

सभासदों को बहुत कठिन था, प्रभु की निंदा सुन पाना।
कान बंद कर लिए उन्होंने, उचित लगा बाहर जाना॥ ३९॥

राजन! जो प्रभु की निंदा को चुप रहकर सुनता जाता।
उसके पुण्य क्षीण हो जाते, और अधोगति को पाता॥ ४०॥

पांडव, केकय, सृंजय वंशों के राजागण बड़े-बड़े ।
क्रोधित होकर उसे मारने, शस्त्र उठाकर हुए खड़े॥ ४१॥

डरा नहीं शिशुपाल, नृपतियों को क्रोधित हो ललकारा।
प्रभु को लगा कि मारा जायेगा वह किसी नृपति द्वारा॥ ४२॥

लिया हाथ में चक्र कृष्ण ने हुआ सभा में सन्नाटा।
किए एक क्षण में दो टुकड़े, तीव्र चक्र ने सिर काटा॥ ४३॥

कोलाहल मच गया हुआ ज्यों ही शिशुपाल धराशायी।
अपने-अपने प्राण बचाने, भागे उसके अनुयायी॥ ४४॥

गिरे गगन से उल्का, धरती में जिस तरह समा जाती।
लोगों को शिशुपाल देह से ज्योति दिखी प्रभु तक आती॥ ४५॥

तीन जन्म तक तन्मय होकर भाव शत्रुता का पाला।
समा गया प्रभु में, प्रभु का स्मरण नित्य करने वाला॥ ४६॥

धर्मराज से ऋत्विज विप्रों को अपार धन प्राप्त हुआ।
यज्ञ समापन स्नान किया नृप ने तब यज्ञ समाप्त हुआ॥ ४७॥

पूर्ण कराया प्रभु ने इस प्रकार वह यज्ञ असाधारण।
कुछ माहों तक रुके वहां प्रभु, सुहृदों की जिद के कारण॥ ४८॥

प्रभु रानियों, मंत्रियों को ले चले द्वारका जाने को।
अनुमति दी पर लगे हुए थे सब रोकने-मनाने को॥४९॥

बार-बार जग में जन्मे, यह शाप संत से पाया था।
विष्णु पार्षदों का किस्सा, नृप! मैंने तुम्हें सुनाया था॥५०॥

सभागार में धर्मराज जब कर यज्ञान्त स्नान आये।
ज्यों सुरेन्द्र शोभित देवों में, वैसी ही शोभा पाये॥५१॥

धर्मराज ने सभी अतिथियों का यथेष्ट सम्मान किया।
करते हुए कृष्ण चर्चा, सबने सहर्ष प्रस्थान किया॥५२॥

सब प्रसन्न थे पर दुर्योधन था ईष्यालु और पापी।
पाते हैं संताप अन्य के सुख में भी पर-संतापी॥५३॥

प्रभु की इस लीला का वर्णन जो भी करे-सुने-गाये।
वह हो बंधन मुक्त कैद से, जैसे नृपति मुक्ति पाये॥५४॥

पचहत्तरवां अध्याय

राजसूय यज्ञ की पूर्ति और दुर्योधन का अपमान

नृप बोले - मुनि! धर्मराज का राजसूय था सुखकारी।
थे प्रसन्न सब देव, नृपति, ऋषि, मुनिगण और प्रजा सारी॥१॥

कहा आपने दुर्योधन को हुआ यज्ञ से दुख भारी।
हे मुनिवर! कृपया बतलायें उसकी व्यथा-कथा सारी॥२॥

शुक बोले - आपके पितामह धर्मराज सबको भायें।
था उनका ही स्नेह, यज्ञ में सबने दी थीं सेवायें॥३॥

दुर्योधन को कोष, भीम के जिम्मे थी भोजन-शाला।
स्वागत में सहदेव, नकुल का था दायित्व पूर्ति वाला॥४॥

अर्जुन गुरुसेवा करते, प्रभु पग धोकर सम्मान करें।
भोजन परसा करे द्रोपदी, कर्ण मुक्त कर दान करें॥५॥

सात्यकि, विदुर, विकर्ण आदि भी थे नियुक्त नृप के द्वारा।
संतर्दन, हार्दिक्य आदि में था कामों का बंटवारा॥६॥

भूरिश्रवा आदि भी करते वही, नृपति को जो भाये।
पूरी श्रद्धा सहित वीर सब, यज्ञ-कार्य करने आये॥७॥

आनंदित थे सभी स्वजन जैसे ही यज्ञ समाप्त हुआ।
ऋत्विज और याज्ञिकों को, भरपूर मान-धन प्राप्त हुआ॥
समा गया शिशुपाल उन्हीं में, यद्यपि प्रभु ने था मारा।
किया गया यज्ञांत स्नान, गंगा में धर्मराज द्वारा॥८॥

जब यज्ञान्त स्नान करने नृप रथ पर निकले सजे-धजे।
ढोल, नगाड़े, शंख और नरसिंघे जैसे वाद्य बजे॥९॥

नर्तकियां नाचने लगीं, यशगान गायकों ने गाये।
वंशी, वीणा और झांझ की ध्वनि नभ मंडल तक जाये॥१०॥

यदु, सृंजय, कैकय, कोसल, काम्बोज नृपति पीछे आते।
अपने भव्य रथों पर अपनी ध्वजा-पताका फहराते॥११॥

आगे धर्मराज थे, पीछे सेना जय-निनाद करती।
था जय-घोष तीव्र इतना, नभ हिला और कांपी धरती॥१२॥

चले श्रेष्ठ ऋत्विज, याज्ञिक, ब्राह्मण सब वेद-मंत्र गाते।
देव, पितृ, गंधर्व, सिद्ध, ऋषि, पुष्प गगन से बरसाते॥१३॥

इन्द्रप्रस्थ के नर-नारी सजधज कर साथ-साथ चलते।
एक दूसरे पर जल फेंकें, दूध, स्नेह, मक्खन मलते॥ १४॥

लगी डालने जब पुरुषों पर ललनाएं केसर-हल्दी।
पुरुषों ने वह केसर-हल्दी, उनके आनन पर मल दी॥ १५॥

चढ़ विमान में नभ से उत्सव देखें सभी अप्सरायें।
चढ़ पालकी राज-महिलायें सजी-धजी पीछे आयें॥ १६॥

रंग, रानियों पर जब कृष्ण आदि द्वारा डाले जायें।
तनिक लजायें, फिर मुस्काएं, रंगों में शोभा पायें॥ १६॥

डाल रहीं थी रंग देवरों पर वे भर-भर पिचकारी।
दिखने लगीं अंग आकृतियां, लगी भीगने जब सारी॥
वेणी ढीली हुई, पुष्प जूड़े के यहां-वहां फैले।
पावनता में काम देखते, वे जिनके मन है मैले॥ १७॥

धर्मराज-द्रोपदी स्वर्ण-रथ पर ऐसी शोभा पाये।
साथ अग्नि के यज्ञ-देवता, होकर मूर्तिमान आये॥ १८॥

ऋत्विज के अनुसार नृपति ने पूरा यज्ञ विधान किया।
धर्मराज के साथ द्रोपदी ने गंगा में स्नान किया॥ १९॥

लगे बजाने दुंदुभियां सब देव और नर हरषाये।
सुमन देवताओं, पितरों, ऋषियों-मुनियों ने बरसाये॥ २०॥

सभी वर्ग के लोगों ने फिर स्नान किया बारी-बारी।
गंगा-जल में धुल जाते हैं, भारी से पातक भारी॥ २१॥

धारण किए युधिष्ठिर ने फिर वस्त्राभूषण नये-नये।
ऋत्विज और याज्ञिकों को भी वस्त्राभूषण दिये गये॥ २२॥

धर्मराज तो सभी प्राणियों में प्रभु के दर्शन पायें।
सुहृद, स्वजन, राजागण की पूजा कर के वे सुख पायें॥ २३॥

मणि-कुंडल, मणिहार, वस्त्र सुंदर, फूलों की मालाएं।
धारण करके लोग देवताओं सदृश्य नजर आएं॥
घुंघराली अलकों में स्वर्णिम कर्ण-फूल झिलमिल करता।
कटि की करधन बढ़ा रही थी, ललनाओं की सुन्दरता॥ २४॥

धर्मराज ने पूजे ऋत्विज, विप्र यज्ञ जो करवाये।
क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी पूजे गए यज्ञ में जो आये॥
पितृ, देव, मुनि, नृप, सारे जीवों को नृप ने नमन किया।
पूजा पाकर, आज्ञा लेकर सबने निज-गृह गमन किया॥ २५-२६॥

तृप्त न होते, सभी प्रशंसा करते थे जाते-जाते।
जैसे तृप्त नहीं हो पाते, प्यासे जब अमृत पाते॥ २७॥

बरबस रोक लिया प्रभु को, स्वजनों को, सुहृदों को नृप ने।
यह कल्पना कष्ट देती है, अगर दूर जायें अपने॥ २८॥

प्रभु रुक गए वहीं, नृप को सुख देने को, सुख पाने को।
साम्ब आदि वीरों को प्रभु ने कहा द्वारका जाने को॥ २९॥

नृप के मनोरथों के सागर से था कठिन पार जाना।
उसको कठिन नहीं कुछ भी, जिसको प्रभु ने अपना माना॥ ३०॥

मान यज्ञ का देखा, देखा सौंदर्य अंतःपुर का।
ईर्ष्या से भर गया हृदय, उस दुर्योधन कामातुर का॥ ३१॥

जो विभूतियां नृपति, दैत्यपति, सुरपति मुश्किल से पाते।
दिखीं वही अंतःपुर में दुर्योधन को आते-जाते॥

पति-सेवा करती थी कृष्णा, उन विभूतियों के द्वारा।
सच तो यह है, दुर्योधन ने हृदय द्रौपदी पर हारा॥ ३२॥

प्रभु की थी रानियां सहस्त्रों, अंतःपुर में सुख पातीं।
थे नितम्ब उन्नत, चलने में पायल, करधन खनकातीं॥
श्वेत हार को करती थी रक्ताभ वक्षवाली लाली।
शोभा पातीं, मणिकुंडल को घेरे अलकें घुंघराली॥ ३३॥

एक दिवस नृप थे सिंहासन पर, परिजन भी थे सारे।
नृप के साथ कृष्ण बैठे थे, उनकी आंखों के तारे॥ ३४॥

स्वर्ण-सिंहासन पर नृप, देवराज जैसी शोभा पाते।
ब्रह्मा का ऐश्वर्य वहां था, बंदीजन स्तुति गाते॥ ३५॥

लिए हाथ में असि दुर्योधन, तभी दिखा भीतर आता।
भाई भी पीछे थे, आया प्रतिहारी को धमकाता॥ ३६॥

मय-निर्मित था सभा-भवन, थल दिखता था जैसे पानी।
थल में वस्त्र समेट, थल समझ गिरा कुंड में अभिमानी॥ ३७॥

हँसे भीम, नृप, ललनाएं, पानी-पानी दुर्योधन था।
रोक रहे थे धर्मराज, लेकिन प्रभु का अनुमोदन था॥ ३८॥

लज्जित था, पर क्रोध बढ़ गया, जब सबको हँसते पाया।
दुर्योधन चुपचाप, सभा से निकल हस्तिनापुर आया॥
हुए युधिष्ठिर खिन्न, सभी सत्पुरुषों में भी भय छाया।
पर प्रभु चुप थे, सारी घटना थी केवल प्रभु की माया॥ ३९॥

नृप! पूछा था तुमने दुर्योधन की ईर्ष्या का कारण।
वह था, राजसूय का आयोजन, ऐश्वर्य असाधारण॥ ४०॥

छिहत्तरवां अध्याय

शाल्व के साथ यादवों का युद्ध

शुक बोले - नृप सुनो, की गई नर-लीला प्रभु के द्वारा।
सौभयान पर उड़ने वाले को प्रभु ने कैसे मारा॥ १॥

जरासंध, शिशुपाल, शाल्व, रुक्मिणी ब्याह में आये थे।
यदुवीरों के साथ युद्ध में सारे मुंह की खाये थे॥ २॥

राजाओं के बीच शाल्व ने तभी किया था प्रण भारी।
यदुवीरों से मुक्त करूंगा मैं यह वसुंधरा सारी॥ ३॥

करने लगा तपस्या, ध्यान लगाया शिव-प्रलयंकर में।
निराहार रह, भस्म एक मुट्ठी खाता था, दिन भर में॥ ४॥

देख घोर संकल्प शाल्व का शिवशंकर समक्ष आये।
कहा शाल्व शरणागत से वर मांग तुझे जो भी भाये॥ ५॥

कहा शाल्व ने यान सर्वगामी प्रभु मुझको दिलवायें।
कष्ट यादवों को दे, देव-असुर-नर नहीं तोड़ पायें॥ ६॥

शिव ने कहा तथास्तु और मायावी मय को बुलवाया।
पा शिव-कृपा, विमान शाल्व ने जैसा चाहा था पाया॥ ७॥

पाकर सौभ-विमान शाल्व ने अपना प्रण स्मरण किया।
प्रभु को माना शत्रु, द्वारका पर तुरंत आक्रमण किया॥ ८॥

बहुत बड़ी सेना को लाकर नगर द्वारका को घेरा।
फूल-फलों के पौधे कुचले, डाला उपवन में डेरा॥ ९॥

तोड़े नगर-द्वार, दीवारें, महल, अटारी बड़ी-बड़ी।
सौभयान से लगी नगर पर शस्त्रों की अनवरत झड़ी॥ १०॥

वज्रपात-सी गिरी शिलायें, वृक्ष, सर्प, ओले भारी।
चक्रवात में धूल-धूसरित होने लगी प्रजा सारी॥ ११॥

सौभ-यान पर चढ़े शाल्व से पीड़ित थे सब नर-नारी।
थी द्वारका दुखी, ज्यों त्रिपुरासुर से थी धरती सारी॥ १२॥

कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न वीर ने लोगों को कातर पाया।
रथारूढ़ हो बाहर आये, डरो नहीं, कह समझाया॥ १३॥

सात्यकि, साम्ब, चारु, गद, शुक के रथ पीछे-पीछे निकले।
कृतवर्मा, अक्रूर, भानु, सारण, ले धनुष विशाल चले॥ १४॥

महारथी सब, कवच पहन, लेकर विभिन्न हथियार चले।
चली साथ में पैदल सेना, हाथी, अश्व-सवार चले॥ १५॥

हुआ शाल्व सेना से भारी युद्ध, पड़े यादव भारी।
देवासुर संग्राम सरीखा, युद्ध लोमहर्षणकारी॥ १६॥

कृष्ण-पुत्र ने काटी दिव्यास्त्रों से वैरी की माया।
जैसे सूर्य तिमिर को काटे, रहा रात्रि भर जो छाया॥ १७॥

पंख स्वर्ण से, फल लोहे से, निर्मित उनके शर सारे।
घायल किया सैन्यपति को, पच्चीस बाण स्वर्णिम मारे॥ १८॥

हर सैनिक को एक, शाल्व को एक साथ सौ बाण लगे।
रथी-सारथी सभी हुए आहत, संकट में प्राण लगे॥ १९॥

महारथी प्रद्युम्न जिस तरह बाण शत्रु पर बरसायें।
दोनों ही सेनाओं के वीरों की सराहना पायें॥ २०॥

मय निर्मित विमान, दिखता, फिर गायब होकर दिख जाता।
है किस जगह विमान वृष्णि वीरों को पता न चल पाता॥ २१॥

कभी भूमि पर, कभी गगन में, गिरि पर कभी, कभी जल में।
घूम रहा था चकरी जैसा, पल में यहां, वहां पल में॥ २२॥

दिखता जहां विमान, शाल्व को भी जिस जगह देख पाते।
यादव-वीर शीघ्रता से तीखे बाणों को बरसाते॥ २३॥

कभी नाग-से, कभी आग-से, यदुवीरों के बाण लगे।
मूर्छित हुआ शाल्व उसको संकट में अपने प्राण लगे॥ २४॥

डटे रहे यदुवीर कष्ट पाकर भी, यह निश्चय करके।
स्वर्ग मिलेगा मरने पर, भूलोक मिलेगा जय करके॥ २५॥

था बलवान द्युमान सैन्यपति जो पच्चीस तीर खाया।
आकर उसने गदा चलायी, मारा-मारा चिल्लाया॥ २६॥

थे मूर्छित प्रद्युम्न, सूत ने वक्षस्थल चोटिल पाया।
जो था उसका धर्म, शीघ्र रथ को रण से बाहर लाया॥ २७॥

जैसे ही चैतन्य हुए, प्रद्युम्न सारथी से बोले।
तूने किया अनर्थ, छोड़ रण, बाहर आया रथ को ले॥ २८॥

याद नहीं कोई यदुवंशी युद्ध छोड़ बाहर आया।
तू कायर है, कायरता का टीका मुझ पर लगवाया॥ २९॥

मुझको होगा कठिन, पिता को, ताऊ को उत्तर देना।
युद्ध क्षेत्र से क्यों भागा मैं, छोड़ यादवों की सेना॥ ३०॥

हँसते हुए भाभियां पूछेंगी, बनते थे वीर बड़े।
पर निकले तुम क्लीव, छोड़कर रण को बाहर हुए खड़े॥ ३१॥

बोला सूत - आपको बाहर ले आया इस कारण मैं।
रथी-सारथी एक दूसरे के रक्षक होते रण में॥ ३२॥
करके गदा प्रहार शत्रु ने जीवन संकट में डाला।
मैंने अपना धर्म, मूर्छित को बाहर लाकर पाला॥ ३३॥

सतहत्तरवां अध्याय

शाल्व उद्धार

शुक बोले - प्रद्युम्न हाथ-मुंह धोये किया धनुष धारण।
कहा सूत से चलो, शेष है इस द्युमान से मेरा रण॥ १॥

जब पहुंचे प्रद्युम्न त्रस्त थे उससे वृष्णिवीर सारे।
आकर कृष्ण-पुत्र ने तीखे आठ तीर उसको मारे॥ २॥

पहले मारे अश्व-सारथी धनुष-ध्वजा को फिर काटा।
कृष्ण-पुत्र के एक बाण ने ही द्युमान का सिर काटा॥ ३॥

सात्यकि, साम्ब और गद ने अनगिनत शत्रु सैनिक मारे।
सौभ-यान में सिर कटता तो गिरते सागर में सारे॥ ४॥

यादव और शाम्ब सेना का युद्ध लोमहर्षणकारी।
सत्ताइस दिन हुए, किसी ने हिम्मत मगर नहीं हारी॥ ५॥

राजसूय सम्पन्न हो चुका था, शिशुपाल गया मारा।
प्रभु को रोका गया प्रेमवश, नृपति युधिष्ठिर के द्वारा॥ ६॥

प्रभु ने देखे कई अपशकुन, संकट का अनुमान किया।
अनुमति लेकर सबसे प्रभु ने निज पुर को प्रस्थान किया॥ ७॥

सोचा प्रभु ने अनुपस्थित हैं पुर से हम दोनों भाई।
मान निरापद नगरी को संभव कुछ करें आतताई॥ ८॥

पहुँच द्वारका प्रभु ने देखा नगरी पर संकट छाया।
बल को कहा नगर में जायें, फिर दारुक को समझाया॥ ९॥

चलो शाल्व के निकट सारथी, उसका समय निकट आया।
भ्रमित न होना, मायावी है, शाल्व किया करता माया॥ १०॥

प्रभु की आज्ञा पा दारुक, रथ युद्धभूमि में ले आया।
देख गरुड़-ध्वज डरी शत्रुसेना, यादव-दल हरषाया॥ ११॥

राजन! अब तक नष्ट हो चुकी थी, रिपु की सेना सारी।
प्रभु को देख शाल्व ने भारी शक्ति सारथी को मारी॥ १२॥

शक्ति दिखी आती उल्का-सी दिग्दिगंत को चमकाती।
सौ टुकड़े कर दिए कृष्ण ने, जब तक दारुक तक आती॥ १३॥

दुष्ट शाल्व पर आठ, सौभ पर प्रभु के अनगिन तीर चले।
छलनी यान हुआ, ज्यों रवि की किरण तिमिर को चीर चलें॥ १४॥

लगा शाल्व का तीर, धनुष धारण करते प्रभु जिस कर में।
धनुष हाथ से गिरा, दिखा आश्चर्य, अवनि में, अंबर में॥ १५॥

हाय-हाय की ध्वनि से गूंजी धरती और गगन सारा।
तभी शाल्व ने प्रभु को अपने सौभ-यान से ललकारा॥ १६॥

किया रुक्मिणी-हरण मूढ़, जिस पर तेरा अधिकार न था।
फिर मारा शिशुपाल, जिस समय वह लड़ने तैयार न था॥ १७॥

मुझे ज्ञात है अब तक तुझको अपराजेय कहा जाता।
भेजूंगा में वहां, जहां से कोई लौट नहीं पाता॥ १८॥

प्रभु बोले - जब सिर पर होती मौत मंदमति चिल्लाते।
शूरवीर बकवास न करते, सिर्फ वीरता दिखलाते॥ १९॥

ऐसा कह कर प्रभु ने किया प्रहार कौमुदी के द्वारा।
हंसली टूटी, लगा कांपने, मुंह से बही रक्त धारा॥ २०॥

आहत हुआ शाल्व जब उसका, प्रभु पर जोर न चल पाया।
अंतर्धान हो गया उसने फैलायी अपनी माया॥
रोता हुआ मनुष्य सामने प्रभु ने एक खड़ा पाया।
उसको प्रभु की माता ने भेजा है, ऐसा बतलाया॥ २१॥

कहा उन्होंने - कृष्ण! पिता जो करते तुम्हें प्रेम भारी।
उन्हें बांध कर पशु जैसा, ले गया शाल्व अत्याचारी॥ २२॥

समाचार पाकर प्रभु दुखी दिखे अपने प्रिय को खोकर।
प्रभु ने नर-लीला की, लगे सोचने कुछ उदास होकर॥ २३॥

बलदाऊ सर्वदा सतर्क रहते बलशाली कहलायें।
असुर और सुर मिल कर भी उनको न पराजित कर पायें॥
करें पराजित बल को, और पिता मेरे बांधे जायें।
नहीं शाल्व के वश की, यह प्रारब्ध रचित हैं घटनाएं॥ २४॥

सोच रहे थे प्रभु ऐसा, मायावी फिर समक्ष आया।
प्रभु से कहने लगा दिखा, वसुदेव तात जैसी काया॥ २५॥

यह है तेरा पिता मूढ़, इस में यदि तुझको ममता हो।
इसका वध होगा, रक्षा कर ले, यदि पौरुष-क्षमता हो॥ २६॥

शीश पृथक कर दिया शाल्व ने, प्रभु को यह धमकी देकर।
बैठ गया अपने विमान में कटे हुए सिर को लेकर॥ २७॥

प्रभु को प्रिय थे पिता इसलिए हुए घड़ी भर को शोकित।
ज्ञान रूप प्रभु स्वयं सिद्ध, फिर समझे यह है प्रायोजित॥
मय दानव ने जो माया इस दुष्ट शाल्व को सिखलाई।
दुष्ट शाल्व ने वह दुखदायी, माया मुझ पर फैलाई॥ २८॥

देखा जब सचेत हो प्रभु ने दूर हुई सारी माया।
दूत नहीं था, और नहीं थी वहां पिताजी की काया॥
टूटा स्वप्न तो प्रभु ने खल को सौभ-यान में ही पाया।
प्रभु ने सोचा इसके वध का अब सुयोग्य अवसर आया॥ २९॥

राजन! प्रभु के मोहित होने पर ऋषि प्रश्न उठाते हैं।
प्रभु के वचनों के विरुद्ध उनके कर्मों को पाते हैं॥ ३०॥

शोक, मोह, भय और स्नेह को अज्ञानी करते धारण।
प्रभु तो हैं विज्ञान-ज्ञान, परिपूर्ण, अखण्ड, असाधारण॥ ३१॥

जिन प्रभु के चरणों की सेवा करके संत ज्ञान पाते।
आत्म-ज्ञान पाते, अज्ञान मिटाते, हर निदान पाते॥
हैं गतिमान कृष्ण सर्वत्र उन्हीं की होती व्यापकता।
उन संतों के स्वामी को फिर मोह किस तरह हो सकता॥ ३२॥

अति-उत्साहित शाल्व, यान से था शस्त्रों को बरसाता।
प्रभु की शक्ति अमोघ, किस तरह प्रभु पर दुष्ट पार पाता॥
प्रभु ने काटा धनुष, कवच, सिर की मणि को भी चूर किया।
सौभ-यान पर वार गदा का फिर प्रभु ने भरपूर किया॥ ३३॥

था प्रहार भरपूर गदा का, यान शाल्व का चूर हुआ।
गिरने लगा यान सागर में शाल्व कूद कर दूर हुआ॥
सावधान होकर उसने फिर थामी एक गदा भारी।
दौड़ा प्रभु की ओर लगाकर सारी शक्ति दुराचारी॥ ३४॥

आता दिखा तो प्रभु ने फेंका भाला तेज धार वाला।
गदा सहित उसके उस कर को प्रभु ने शीघ्र काट डाला॥
उसे मारने प्रभु ने धारण किया सुदर्शन-चक्र तभी।
ऐसी शोभा हुई उगा हो उदयाचल पर सूर्य अभी॥ ३५॥

था मायावी शाल्व, शीश उसका किरीट-कुंडल वाला।
चक्र-सुदर्शन ने क्षण भर में पृथक देह से कर डाला॥
ऐसा लगा कि जैसे वृत्तासुर पर वज्र प्रहार हुआ।
शाल्व हुआ मृत तो उसकी सेना में हाहाकार हुआ॥ ३६॥

नष्ट हो गया सौभ-यान, मायावी शाल्व गया मारा।
गईं बजाईं दुंदुभियां अम्बर में गंधर्वों द्वारा॥
लेकिन यह आनंद देर तक नहीं गगन में टिक पाया।
बदला लेने मित्रों का, क्रोधित हो दन्तवक्त्र आया॥ ३७॥

अठहत्तरवां अध्याय

दन्तवक्त्र और विदूरथ का उद्धार तथा तीर्थ यात्रा में बलराम जी द्वारा सूत जी का मारा जाना

शुक बोले - शिशुपाल, शाल्व, पौण्ड्रक का था अभिन्न साथी।
ऋण मित्रों का चुक जाये, यह दन्तवक्त्र की इच्छा थी॥ १॥

सिर्फ गदा थी हाथों में, पैदल आया अभिमान भरा।
इतना बलशाली था, चलने से हिलती थी वसुंधरा॥ २॥

आता देख उसे प्रभु गदा उठा, रथ से कूदे झट से।
रोका उसे जिस तरह रुकतीं लहरें टकराकर तट से॥ ३॥

गदा तान कर दन्तवक्त्र ने प्रभु पर करके क्रोध कहा।
तुम पर मेरी दृष्टि पड़ गई यह मेरा सौभाग्य रहा॥ ४॥

हो मामा के पुत्र कृष्ण, पर मेरे मित्रों को मारा।
मुझसे है शत्रुता, तुम्हें मारूंगा वज्र-गदा द्वारा॥ ५॥

संबंधी तुम हो, जैसे संबंधित व्याधि और काया।
तुम्हें मार मित्रों का कर्ज चुकाने का अवसर आया॥ ६॥

गज को अंकुश चुभे जिस तरह, प्रभु को चुभी बात सारी।
सिंह जैसा गरजा फिर प्रभु के सिर पर वज्र-गदा मारी॥ ७॥

रहे अविचलित कृष्ण, शत्रु का था यद्यपि प्रहार भारी।
फिर प्रभु ने उसकी छाती पर निज कौमुदी गदा मारी॥ ८॥

मुंह से खून बहा, वक्षस्थल फटा, चोट ऐसी खायी।
हाथ-पांव फैले, निष्प्राण हुआ, तत्काल आततायी॥ ९॥

उसके तन से ज्योति निकल कर प्रभु के चरणों में आई।
दन्तवक्त्र ने भी शिशुपाल सरीखी उत्तम गति पाई॥ १०॥

दन्तवक्त्र के वध से क्रोधित हुआ विदूरथ, था भ्राता।
ले तलवार ढाल हाथों में, प्रभु को दिखा निकट आता॥ ११॥

प्रभु ने जब देखा वह उन पर है प्रहार करने वाला।
चक्र चला कुंडल-किरीट वाला सिर शीघ्र का डाला॥ १२॥

शाल्व, विदूरथ, दन्तवक्त्र को प्रभु ने एक साथ मारा।
हो प्रसन्न की गई वंदना मनुजों और सुरों द्वारा॥ १३॥

ऋषि, विद्याधर, सिद्ध, नाग, चारण, गंधर्व, अप्सरायें।
नाचें किन्नर, यक्ष पुष्प बरसायें, विजय गीत गायें॥ १४॥

प्रभु ने किया प्रवेश पुरी में पीछे वृष्णि-वीर सारे।
सजी-धजी थी पुरी द्वारका, शोभित थे वंदनवारे॥ १५॥

योगेश्वर हैं, जगदीश्वर हैं, कृष्ण सर्वदा जय पाते।
जिनकी है पशु-दृष्टि, हारते उनको कृष्ण नजर आते॥ १६॥

जब बल ने कौरव-पांडव के रण का समाचार पाया।
थे मध्यस्थ, इसलिए उनको तीर्थाटन करना भाया॥ १७॥

करने देव-पितृ-ऋषि तर्पण, पहले राम प्रभास गए।
ले विप्रों को सरस्वती के उद्गम के फिर पास गए॥ १८॥

गए पृथूदक, चक्रतीर्थ, त्रितकूप, बिंदुसर-धाम गए।
किया सुदर्शन का दर्शन, फिर ब्रह्म-तीर्थ बलराम गए॥
गए विशाल-तीर्थ भी बल जिस जगह सर्वदा शांति रहे।
सरस्वती का वह तट देखा, जो प्राची की ओर बहे॥ १९॥

गए नैमिषारण्य, देख गंगा-यमुना की धाराएं।
वही नैमिषारण्य कथाएं सुनने जहां संत आएं॥ २०॥

बल को आया देख किया ऋषियों ने उनका अभिनंदन।
आसन से उठकर ऋषियों ने पूजन किया, किया वंदन॥ २१॥

आसन ग्रहण किया बल ने, सब संत कथा में लीन दिखे।
किंतु उच्च आसन पर उन्हें रोमहर्षण आसीन दिखे॥ २२॥

स्वागत नहीं, प्रणाम नहीं, हाथों को जोड़ नहीं पाया।
बैठा रहा सूत गद्दी पर, बल को बहुत क्रोध आया॥ २३॥

बल बोले उच्चासन पर मैंने सोचा पण्डित होगा।
यह दुर्बुद्धि सूत है, मृत्यु-दण्ड से अब दण्डित होगा॥ २४॥

है यह शिष्य व्यासजी का, उनसे ही उत्तम ज्ञान मिला।
धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण पढ़े, इससे सम्मान मिला॥ २५॥

संयम-विनय-विहीन पंडितों जैसा स्वांग रचा डाला।
अजितात्मा के उपदेशों से लाभ नहीं होने वाला॥ २६॥

पालन करते नहीं धर्म का, केवल चिन्ह करें धारण।
वे पातक वध-योग्य, हुआ हूँ मैं अवतरित इसी कारण॥ २७॥

जबसे तीर्थाटन पर आये, संयत था जीवन सारा।
किंतु सूत निष्प्राण हुए, अभिमंत्रित कुश बल ने मारा॥ २८॥

हुई सूत की मृत्यु सभी संतों ने हाहाकार किया।
बल से बोले यह अधर्म है, व्यास-शिष्य पर वार किया॥ २९॥

सब ऋषियों ने उन्हें सत्र के लिए योग्यतम पाया था।
देकर आयु ब्राह्मणों ने ब्रह्मासन पर बैठाया था॥ ३०॥

है यह कृत्य ब्रह्म-हत्या का किंतु आप योगेश्वर हैं।
नियम आपके लिए नहीं हैं आप वेद से ऊपर हैं॥ ३१॥

धर्म तभी स्थापित होगा जब सत्पुरुष करें धारण।
आप करें प्रायश्चित तो अनुसरण करें जन-साधारण॥ ३२॥

बल बोले - प्रायश्चित होगा, ताकि लोग शिक्षा पायें।
मेरे लिए उचित क्या होगा, मुनिगण कृपया बतलायें॥ ३३॥

आप कहें तो इसे आयु, बल, इन्द्रिय, शक्ति सभी दे दूँ।
अपने यौगिक बल से इसको जीवन नया अभी दे दूँ॥ ३४॥

बोले विप्र - शस्त्र मर्यादा रखें, मृत्यु का मान करें।
ब्रह्म-आयु जो दी विप्रों ने, किसी अन्य को दान करें॥ ३५॥

बल बोले - उसका सुत मुझसे आयु, आत्म-बल पायेगा।
पुत्र आत्मवत होता, सूत-पुत्र अब कथा सुनायेगा॥ ३६॥

प्रायश्चित बतलायें, अपनी इच्छायें भी बतलायें।
पूरी होंगीं सब इच्छायें, होंगीं दूर समस्यायें॥ ३७॥

मुनि बोले - बल्वल दानव है जो हर पर्व यहां आता।
है इल्वल का पुत्र - सभी सत्रों को दूषित कर जाता॥ ३८॥

वह आकर मल-मूल-रक्त-मदिरा पर्वों पर बरसाता।
होगी बहुत बड़ी सेवा, यदि यह दानव मारा जाता॥ ३९॥

हो एकाग्र-चित्त भारत के सभी तीर्थों में जायें।
बारह मास तीर्थ में स्नान करें तो परम शुद्धि पायें॥ ४०॥

उन्यासीवां अध्याय

बल्वल का उद्धार और बलराम जी की तीर्थ यात्रा

शुक बोले - जब पर्व-दिवस आया, पहले आंधी आई।
फिर आई दुर्गंध पीव की, चारों ओर धूल छाई॥ १॥

फिर उसने मल-मूल यज्ञ-शाला के ऊपर बरसाया।
लिये त्रिशूल हाथ में बल्वल इसके बाद नजर आया॥ २॥

था काजल का ढेर, केश का रंग ताम्र-सा लाल दिखा।
तिरछी भौंहें, विकृत-दाड़ें, मुख विशाल, विकराल दिखा॥ ३॥

बल को लगा उचित होगा वध, ज्यों ही देखा उस खल को।
करते नाश शत्रुओं का जो, याद किया हल-मूसल को॥ ४॥

हल के अग्रभाग से खींचा, बल ने नभचारी खल को।
मूसल एक जोर से मारा, ब्रह्म-विरोधी बल्वल को॥ ५॥

फटा ललाट, गिरा धरती पर, खून बहाता-चिल्लाता।
ज्यों लगने से वज्र, भूमि पर गेरू वाला गिरि आता॥ ६॥

ऋषियों ने आशीष दिए, जब बल ने बल्वल को मारा॥
फिर अभिषेक किया, जैसे सुरेन्द्र पूजित देवों द्वारा॥ ७॥

दिव्य वस्त्र एवं आभूषण बल ने ऋषियों से पाये।
दिव्य वैजयन्ती माला पायी जो कभी न मुरझाये॥ ८॥

ऋषियों से ले बिदा कौशकी सरिता के तट पर आये।
स्नान किया उस सर में, जो सरयू का उद्गम कहलाये॥ ९॥

करने पितरों का तर्पण, बल फिर प्रयाग संगम आये।
करके विधिवत तर्पण-पूजन चलकर पुलहाश्रम आये॥ १०॥

मिलीं, गोमती, सोम, गंडकी और विपाशा सरिताएं।
शुचिता पाने बल सब सरिताओं में स्नान किये जाएं॥
गए गया बल तो पितरों का तर्पण सहित विधान किया।
फिर बलराम गए गंगासागर, संगम में स्नान किया॥ ११॥

जा महेन्द्र पर्वत पर परशुराम जी के दर्शन पाये।
वेणा, पम्पा, भीमरथी हो, गोदावरी राम आये॥ १२॥

कार्तिकेय के दर्शन करके फिर श्रीशैल राम पहुंचे।
द्रविड़ क्षेत्र के महापुण्यमय वैंकटचलम धाम पहुंचे॥ १३॥

शिवकाशी, कावेरी देखी, जिसे श्रेष्ठ सरिता कहते।
फिर देखा श्रीरंग क्षेत्र, श्रीहरि जिस जगह सदा रहते॥ १४॥

हरि का पर्वत ऋषभ देख, फिर दक्षिण की मथुरा आये।
सेतुबंध भी गए, जहां जाने से पातक धुल जाये॥ १५॥

दस हजार गायों का बल ने यहां द्विजों को दान किया।
फिर कृतमाला और ताम्रपर्णी नदियों में स्नान किया॥ १६॥

फिर अगस्त्य मुनि का अभिवादन किया मलय पर्वत जाकर।
दर्शन वहां किए दुर्गा के, मुनिश्री की अनुमति पाकर॥ १७॥

फाल्गुन तीर्थ गये, पंचाप्सरस में उत्तम स्नान किया।
दस सहस्त्र गायों को बल ने, यहां द्विजों का दान किया॥ १८॥

फिर त्रिगर्त, केरल देशों से बल गोकर्ण तीर्थ आये।
सदा-सर्वदा जहां स्वयं शिवशंकर जाते हैं पाये॥ १९॥

शूर्पारक भी गए राम, करके आर्या-देवी दर्शन।
निर्विंध्या, तापी, पयोष्णी नहा, गए बल दण्डक-वन॥ २०॥

किए नर्मदा के दर्शन, मनु-तट पर बल ने स्नान किया।
महिष्मती नगरी को देखा, फिर प्रभास प्रस्थान किया॥ २१॥

ज्ञात हुआ कौरव-पाण्डव रण में भारी संहार हुआ।
क्षत्रिय मारे गए, लगा बल को कम भू का भार हुआ॥ २२॥

गदा युद्ध था जारी, भीमसेन एवं दुर्योधन में।
गए वहां बल, युद्ध रोकने की इच्छा लेकर मन में॥ २३॥

कृष्ण-युधिष्ठिर-अर्जुन ने कर वंदन, रखा मौन धारण।
सोच रहे थे सभी, न जाने क्या है आने का कारण॥ २४॥

चला रहे थे गदा, भीम-दुर्योधन दोनों थे क्रोधित।
देख पैंतरे, दोनों को ही किया राम ने सम्बोधित॥ २५॥

भीमसेन-दुर्योधन दोनों ही हो श्रेष्ठ गदाधारी।
शिक्षा में है एक श्रेष्ठ तो, एक शक्ति में है भारी॥ २६॥

हो समान बल तो होता है, मुश्किल जीत प्राप्त करना।
व्यर्थ युद्ध मत करो, उचित होगा इसको समाप्त करना॥ २७॥

दोनों ही ने बात नहीं मानी, यद्यपि थी हितकारी।
दोनों में था पूर्वाग्रह, दोनों में थी कटुता भारी॥ २८॥

उन्हें युद्ध-रत छोड़, मान प्रारब्ध, राम जब घर आये।
उग्रसेन एवं स्वजनों को, स्वागत में तत्पर पाये॥ २९॥

वैरभाव से मुक्त राम फिर से नैमिषारण्य आये।
संतों ने उनसे निवृत्तिक-यज्ञ प्रेम से करवाये॥ ३०॥

ऋषियों को उपदेश तात्विक, दिया गया बल के द्वारा।
लगा व्याप्त हैं वे जग में, उनमें है व्याप्त जगत सारा॥ ३१॥

सपत्नीक यज्ञांत स्नान कर सज आभूषण वस्त्रों में।
स्वजन मध्य बल शोभित ज्यों, चंद्रिका-चन्द्र नक्षत्रों में॥ ३२॥

हैं बलराम अनंत, रूप उनका मन-वाणी से ऊपर।
है चरित्र अद्‌भुत, मानव-लीला करने आये भूपर॥ ३३॥

बल की इन लीलाओं को जो करें स्मरण, गान करें।
ऐसे प्राणी पर अहेतुकी कृपा विष्णु भगवान करें॥ ३४॥

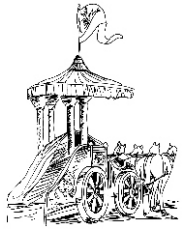

अस्सीवां अध्याय

श्रीकृष्ण द्वारा सुदामाजी का स्वागत

नृप बोले - माधुर्य और ऐश्वर्य युक्त थी लीलाएं।
उनकी जो अनसुनी कथाएं, मुनिवर वे भी बतलाएं॥ १॥

चुभा चित्त में जिनके बाण विषय-भोगों का जहरीला।
होगा ऐसा कौन रसिक जो सुने नहीं प्रभु की लीला॥ २॥

वह वाणी सच्ची वाणी जो प्रभु-लीला का गान करे।
प्रभु की लीला कथा श्रवण बस केवल सच्चा कान करे॥
सच्चे हाथ वही जो प्रभु की सेवा का आचरण करें।
सच्चे मन, सचराचर-वासी भगवन् का स्मरण करें॥ ३॥

सच्ची आंखें वह जो सब जीवों में प्रभु-दर्शन पायें।
सच्चे सिर वे सिर जो सब में प्रभु को देखें, झुक जायें॥
जो शरीर के अंग सर्वदा प्रभु का चरणोदक पाते।
केवल ऐसे अंग वस्तुतः सच्चे अंग कहे जाते॥ ४॥

बोले सूत - नृपति की देखी शुक ने उत्सुकता भारी।
भावुक होकर लगे सुनाने, बाकी लीलाएं सारी॥ ५॥

शुक बोले - थे मित्र कृष्ण के ब्राह्मण एक ब्रह्मज्ञानी।
शांत, विरक्त, जितेन्द्रिय थे, विषयों से दूर स्वाभिमानी॥ ६॥

अपरिग्रही, गृहस्थ विप्र का था दरिद्रता से नाता।
वस्त्र फटे थे, तन दुर्बल था, भोजन रोज न मिल पाता॥ ७॥

दरिद्रता को पतिव्रता पत्नी ने यद्यपि बहुत सहा।
एक दिवस भूखे पति से, रूखे मुख से इस तरह कहा॥ ८॥

लक्ष्मीपति भगवान कृष्ण को सखा आपने बतलाया।
शरणागत वत्सल हैं, उनसे, जिसने जो मांगा, पाया॥ ९॥

सत्पुरुषों के आश्रय प्रभु के पास आप यदि जायेंगे।
दुख-दरिद्रता मिटे, कृष्ण से आप बहुत धन पायेंगे॥ १०॥

भोज, वृष्णि, अंधक-वंशी यदुवीरों के बनकर स्वामी।
है निवास द्वारका आजकल, वैसे हैं अंतर्यामी॥
वे उदार हैं ऐसे, खुद भक्तों के वश में हो जायें।
क्या आश्चर्य आप यदि उनसे, धन पायें, वैभव पायें॥ ११॥

पत्नी ने होकर विनम्र जब इसी बात को दुहराया।
धन का लालच नहीं, विप्र को दर्शन का लालच आया॥ १२॥

यही सोचकर विप्र हुए तैयार द्वारका जाने को।
पत्नी से बोला - कुछ भेंट-योग्य सामग्री लाने को॥ १३॥

उसे पड़ोसी विप्रों से चिवड़ा कुल मुट्ठी चार मिला।
बांध वस्त्र में दिया, विप्र को लगा श्रेष्ठ उपहार मिला॥ १४॥

तीन छावनी, तीन ड्योड़ियों से निर्बाध प्रवेश हुआ।
पहुंच गए महलों तक, उन्हें सहायक उनका वेश हुआ॥ १६॥

वहां भवन सोलह हजार थे, पर जिसमें द्विजवर आये।
कृष्ण वहीं थे, सुख-सागर में द्विजवर डूबे-उतराये॥ १७॥

द्विजवर थे संतुष्ठ, दूर से ही प्रभु के दर्शन पाकर।
उठकर दौड़े कृष्ण, विप्र को गले लगाया खुद आकर॥ १८॥

सखा-मिलन से आनंदित थे, पर मुख से कुछ नहीं कहा।
लेकिन कमलनयन की आंखों से बन आंसू प्रेम बहा॥ १९॥

फिर प्रभु उनको लाये, अपने भव्य पलंग पर बैठाये।
चरण पखारे उनके, खुद ही पूजा-सामग्री लाये॥ २०॥

चरणोदक सिर रखा, तभी तो प्रभु जग-पावन कहलाते।
केसर-चंदन-अगर लगाने में उनको प्रभु सुख पाते॥ २१॥

हो आनंदित धूप-दीप से की आरती किया वंदन।
ताम्बूल देकर प्रभु बोले, मित्र तुम्हारा अभिनंदन॥ २२॥

दुर्बल तन से नसें झांकती, पहिने मलिन फटे कपड़े।
चंवर डुलाकर उनकी सेवा, करें रुक्मिणी खड़े-खड़े॥ २३॥

विस्मित और चकित थीं सारी अंत:पुर की ललनाएं।
प्रभु कैसे अवधूत, मलिन की सेवा करके सुख पाएं॥ २४॥

इस भिक्षुक, श्री-हीन अधम ने निश्चित पुण्य अपार किया।
तब तो इस अवधूत विप्र का श्रीपति ने सत्कार किया॥ २५॥

इससे मिलने को प्रभु भागे, छोड़ रुक्मिणी की शैया।
गले मिले वैसे ही जैसे मिलते बलदाऊ भैया॥ २६॥

हाथ पकड़कर दोनों करने लगे याद सब घटनाएं।
एक दूसरे को बतलायें, याद जिसे जो-जो आएं॥ २७॥

प्रभु ने पूछा - चुका दक्षिणा जब तुम गुरुकुल से आये।
क्या अपने अनुरूप मित्र, कोई जीवन-साथी पाये॥ २८॥

हो गृहस्थ, पर विषय-भोग में ध्यान तुम्हारा रहा नहीं।
मुझे ज्ञात है मित्र तुम्हें धन की कोई स्पृहा नहीं॥ २९॥

बिरले हैं वे लोग सताती नहीं जिन्हें मेरी माया।
विषय-भोग से दूर लोक-शिक्षा का कार्य जिन्हें भाया॥ ३०॥

हम दोनों रहते थे गुरुकुल में क्या तुम्हें याद आया।
जो अज्ञान-तिमिर को काटे, हमने वही ज्ञान पाया॥ ३१॥

पिता प्रथम गुरु, गुरु द्वितीय जो सारे संस्कार करता।
वह तृतीय गुरु जो ज्ञानोपदेश से सद्प्रकाश भरता॥ ३२॥

वर्णाश्रम में वही श्रेष्ठ जो गुरु आज्ञा पालन करते।
स्वार्थ और परमार्थ जानते, वे भवसागर से तरते॥ ३३॥

करते जप, तप, यज्ञ, त्याग सारी विधियों को अपनाते।
मैं ही हूँ गुरुरूप, करें जो गुरु-सेवा, मुझको पाते॥ ३४॥

गुरुकुल में रहते थे, तब का किस्सा मुझे याद आया।
वन से ईंधन लाने, गुरु मां ने दोनों को भिजवाया॥ ३५॥

जब हम दोनों थे जंगल में, बेमौसम बरसात हुई।
आंधी-पानी-बिजली ऐसी, लगा कि दिन में रात हुई।॥ ३६॥

पानी-पानी हुआ समूचा वन, था अंधकार छाया।
उथला कहां, कहां गहरा है, कुछ भी समझ नहीं आया॥ ३७॥

वर्षा क्या थी ऐसा लगा कि जैसे महाप्रलय आया।
आंधी-पानी ने दिग्भ्रमित किया, जंगल में भटकाया॥
हम दोनों ही पीड़ित थे पर हमने साथ नहीं छोड़ा।
रहे भटकते वन में, इक-दूजे का हाथ नहीं छोड़ा॥ ३८॥

गुरु संदीपनि सूर्योदय होने पर हमें खोज पाये।
लेकर सब शिष्यों को आये, दोनों को आतुर पाये॥ ३९॥

गुरु बोले - तुम दोनों का है कृत्य चकित करने वाला।
गुरु-सेवा के लिए स्वयं को तुमने संकट में डाला॥ ४०॥

गुरु का ऋण रहता, गुरु होता है चरित्र का निर्माता।
शिष्य करे सर्वस्व समर्पित, ऋण से वही मुक्ति पाता॥ ४१॥

मैं प्रसन्न हूँ दोनों से, पूरी हों सब अभिलाषायें।
वेद कंठ में वास करें, दोनों ही लोक सुधर जायें॥ ४२॥

प्रभु बोले - हे मित्र याद हैं मुझको घटनाएं सारी।
पाकर गुरु की कृपा मित्र हम हुए शांति के अधिकारी॥ ४३॥

बोले विप्र - जगद्गुरु का कहलाता हूँ मैं गुरुभाई।
सब कुछ मुझे मिल गया, जब मित्रता तुम्हारी प्रभु पाई॥ ४४॥

परम-ब्रह्म हैं आप, वेद सारे शरीर में ही रहते।
फिर भी गुरुकुल जाते हैं, इसको ही नर-लीला कहते॥ ४५॥

इक्यासीवां अध्याय

सुदामाजी को ऐश्वर्य की प्राप्ति

शुक बोले - प्रभु हैं विप्रों के भक्त और आश्रयदाता।
वे तो हैं सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, अंतर्मन के ज्ञाता॥ १॥

समझ गए प्रभु, मित्र भेंट लाया है लेकिन छुपा रहा।
करते हुए विनोद, मुस्कराकर बनकर अनजान कहा॥ २॥

प्रभु बोले - तुम घर से मेरे लिए भेंट में क्या लाये।
भेंट भक्त की भले बहुत छोटी हो, पर मुझ को भाये॥ ३॥

पत्र-पुष्प-फल-जल यदि कोई भक्त मुझे अर्पण करता।
शुद्ध-बुद्धि-निष्काम भक्त का, मैं वह भोग ग्रहण करता॥ ४॥*

* श्रीमद्भगवदगीता के 9वें अध्याय के 26वें श्लोक में भी भगवान यही कहते हैं।

सुनकर प्रभु की बात, विप्र ने लज्जित हो सिर झुका लिया।
श्रीपति को श्रीहीन दीन ब्राह्मण ने चिवड़ा नहीं दिया॥ ५॥

प्रभु को था सब ज्ञात, दशा क्या थी घर की, क्या थी मन की।
करता रहा साधना लेकिन नहीं कामना की धन की॥ ६॥

पतिव्रता पत्नी के आग्रह पर मुझसे मिलने आया।
वह वैभव दूंगा इसको जो नहीं सुरों ने भी पाया॥ ७॥

कर विचार ऐसा, प्रभु ने खुद छीना छुपा हुआ चिवड़ा।
'यह क्या है' यह कह कर खोला जैसे हो उपहार बड़ा॥ ८॥

फिर बोले - मुझको जो अतिप्रिय है तुम वही भेंट लाये।
इनको खाकर मैं तो क्या, सारा संसार तृप्ति पाये॥ ९॥

ऐसा कहते हुए कृष्ण जब चिवड़ा एक कौर खाये।
डरी रुक्मिणी क्या होगा यदि मुट्ठी एक और खाये॥
पकड़ी बाँह ताकि प्रभु दूजा कौर नहीं खाने पायें।
लक्ष्मी का हैं रूप रुक्मिणी, प्रभु को छोड़ कहां जायें॥ १०॥

वे बोली - बस-बस प्रभु केवल एक कौर चिवड़ा खायें।
इतने में ही तो प्राणी के दोनों लोक सुधर जायें॥ ११॥

प्रभु ने उन्हें रात्रि में अपने ही निवास में ठहराया।
सुख-सुविधाएं ऐसी जैसे जीते हुए स्वर्ग पाया॥ १२॥

सुबह चले जब घर को वापस, कुछ प्रत्यक्ष नहीं पाये।
प्रभु के दर्शन मिले उसी स्मृति में डूबे-उतराये॥ १३॥

ना कुछ मांगा, ना कुछ पाया, नहीं कामना थी धन की।
लज्जित थे मन ही मन, मन में ही रह गई बात मन की॥ १४॥

मैंने देखा, क्यों प्रभु को सब ही विप्रों का भक्त कहें।
मुझे लगाया उसी वक्ष से, जिसमें कमला सदा रहें॥ १५॥

मैं श्रीहीन दरिद्र और वे श्री-निकेत कहलाते हैं।
मैं ब्राह्मण हूँ बस इस कारण मुझको गले लगाते हैं॥ १६॥

देवि-रुक्मिणी की शैया पर प्रभु ने मुझे सुलाया था।
मुझको भाई मान, रुक्मिणी ने खुद चंवर डुलाया था॥ १७॥

देवों के आराध्य देव, विप्रों के सेवक कहलाते।
मेरे जैसे दीन-हीन के पांव दबाकर सुख पाते॥ १८॥

रसा, रसातल, देवलोक की सब सम्पत्ति और माया।
मोक्ष-स्वर्ग इत्यादि सभी उन चरणों में जाता पाया॥ १९॥

हैं कृपालु श्रीकृष्ण, नहीं धन दिया उन्होंने निज जन को।
भूल न जाऊं मैं प्रभु को, धन विचलित करता है मन को॥ २०॥

करते हुए विचार यही सब, विप्रदेव जब घर आये।
रवि-शशि-अग्नि सदृश्य तेज मणियों से बना महल पाये॥ २१॥

उद्यानों में रंग-बिरंगे खग कलरव करते-गाते।
सरोवरों में कमल-कुमुदिनी खिले, हवा को महकाते॥ २२॥

लगे सोचने विप्र देखकर सजे-धजे सब नर-नारी।
मेरे घर में कैसे यह परिवर्तन हुआ चमत्कारी॥ २३॥

सजे-धजे वे नर-नारी उनका स्वागत करने आये।
वाद्य बजाये पुरुषों ने, महिलाओं ने मंगल गाये॥ २४॥

दौड़ी पत्नी, जैसे ही पति के आने का पता चला।
उसे विप्र ने देखा जैसे हो वह मूर्तिमान कमला॥ २५॥

पत्नी ने पति को देखा आनंद-अश्रु अनवरत बहे।
मन ही मन आलिंगन करके, 'स्वागत हैं' यह शब्द कहे॥ २६॥

स्वर्णहार पहनें थीं, ब्राह्मण पत्नी की दासियां सभी।
और ब्राह्मणी, ज्यों विमान से उतरी हो अप्सरा अभी॥ २७॥

जब पत्नी के साथ, महल के अंदर विप्रदेव आये।
इन्द्रालय जैसे मणि-खम्बे, देख विप्रवर चकराये॥ २८॥

हस्ति-दंत के बने पलंग थे, मढ़े हुए थे सोने में।
चंवर रखे थे स्वर्ण दण्डिका वाले धवल बिछोने में॥ २९॥

सोने के सिंहासन पर कोमल गद्दियां गई डालीं।
और चदोबों में लटकीं थी, लड़ियां मणि-मुक्ता वालीं॥ ३०॥

शुभ्र स्फटिक दीवारों पर पन्ने की पच्चीकारी।
मणि-दीपक ले खड़ी हुई थी रत्नों से निर्मित नारी॥ ३१॥

देखी सब सम्पत्ति, विप्र ने और विचार किया मन में।
यह सम्पत्ति कहां से आई, जन्म-जन्म का निर्धन मैं॥ ३२॥

मैं शाश्वत श्रीहीन अभागा, जीवन भर अभाव भोगा।
निश्चित ही यह सारा वैभव, यदुपति ने भेजा होगा॥ ३३॥

भाव समझ लेते भक्तों का, मुंह से मगर न कुछ कहते।
जिसको जो उपयुक्त, उसे वह सब कुछ प्रभु देते रहते॥
हैं घनश्याम, श्याम-घन जैसे अति उदार एवं दानी।
सोता रहता कृषक रात में, खेतों में बरसे पानी॥ ३४॥

किया गया कुछ थोड़ा-सा भी अर्पित अगर भक्त द्वारा।
प्रिय का वह प्रसाद प्रभु को लगता है बहुत-बहुत सारा॥
उन्हें ज्ञात था उनका प्रेमी-भक्त कठिनता से लाया।
बड़े प्रेम से प्रभु ने मेरा मुट्ठी भर चिवड़ा खाया॥ ३५॥

पुनर्जन्म जब भी मेरा हो, मुझको कोई देह मिले।
हो प्रभु से सौहार्द, मित्रता, सखाभाव हो, स्नेह मिले॥
जहां कहीं भी रहूँ, कृपा प्रभु की मुझ पर हर कहीं रहे।
संतों का सत्संग सदा हो, वैभव हो या नहीं रहे॥ ३६॥

प्रभु का भक्त मांगने पर भी धन-ऐश्वर्य नहीं पाता।
उन्हें ज्ञात है, धन सर्वदा पतन का कारण बन जाता॥ ३७॥

ऐसा सोचा तो प्रभु में उनका असीम अनुराग बढ़ा।
जितनी अधिक भोग सामग्री थी, उतना ही त्याग बढ़ा॥ ३८॥

देवों के आराध्य देव, विप्रों को इष्टदेव कहते।
विप्रों की रक्षा करने को कृष्ण सदा तत्पर रहते॥ ३९॥

प्रभु है अपराजेय, किसी के होते नहीं अधीन कभी।
पर वे होते विवश, पुकारे उनको कोई दीन कभी॥
गांठ अविद्या की खुलते ही, भूले सभी मोह-माया।
हुए ध्यान में मग्न, अंत में प्रभु का पुण्य-लोक पाया॥ ४०॥

प्रेरक प्रेम-कथा प्रभु की जो सुनता और सुनाता है।
पाता प्रभु का प्रेम, अंत में परम-पुरुष को पाता है॥ ४१॥

बयासीवां अध्याय

भगवान श्रीकृष्ण एवं बलराम की गोप-गोपियों से भेंट

शुक बोले - द्वारका पुरी में थे सुख से दोनों भाई।
प्रलय सदृश्य खग्रास सूर्य का होगा ग्रहण खबर आई॥
ग्रहणकाल के स्नान-दान का मर्म ज्योतिषी बतलाये।
पुण्य-स्नान करने दोनों भाई समन्त-पंचक आये॥ २॥

इसी तीर्थ में की थी परशुराम ने क्षत्रियहीन धरा।
पांच कुंड थे जिनमें दुष्ट नृपतियों का था रक्त भरा॥ ३॥

कर्मबंध से मुक्त रहे पर, जन-मर्यादा के कारण।
यहीं किया था यज्ञ, ताकि अनुसरण करे जन-साधारण॥ ४॥

पुण्य-भूमि में स्नान-दान से छंटते जो संकट छाये।
उग्रसेन, वसुदेव, वृद्धजन भी समंत-पंचक आये॥ ६॥

गद, प्रद्युम्न, साम्ब जैसे योद्धा भी सपरिवार आये।
बड़े पुण्य से पुण्य प्राप्त करने का शुभ अवसर पाये॥ ६॥

कृतवर्मा, अनिरुद्ध, सैन्यपति शुक, सुचन्द्र एवं सारण।
नहीं जा सके तीर्थ, द्वारका की प्रतिरक्षा के कारण॥ ७॥

अश्व, लहर सागर की जैसे, गज, जैसे बादल छाये।
सजे विमानों जैसे थे रथ, जिन पर यदुवंशी आये॥
पालकियों को लगा कि जैसे विद्याधर ढोकर लाये।
लगता था यदुवीर नहीं, सब सुरगण सपरिवार आये॥ ८॥

ग्रहणकाल में सब रखते उपवास नहीं पीते-खाते।
ग्रहण-अवधि में सभी कीर्तन करते और भजन गाते॥ ९॥

ग्रहण-मोक्ष के बाद, परशु कुंडों में सबने स्नान किया।
फिर विप्रों को श्रृंगारित उत्तम गायों का दान किया॥ १०॥

पहले विप्रों को श्रद्धा से भोजन सबने करवाया।
फिर उनकी आज्ञा लेकर, सब लोगों ने प्रसाद पाया॥ ११॥

फिर विशाल वृक्षों के नीचे यदुवंशी डेरा डाले।
आने लगे वहीं मिलने को सब मिलने-जुलने वाले॥ १२॥

शुक बोले - यदुवीरों के आने की खबर नंद पाये।
गोप-गोपियों सहित, गाड़ियों से समंत-पंचक आये॥ ३२॥

नंदराय को देख यादवों ने जैसे जीवन पाया।
गले मिले सब, मिलने का यह अवसर दिनों बाद आया॥ ३३॥

मिले नंद-वसुदेव, याद था उनको समय कंस-वाला।
थे वसुदेव कैद, पुत्रों को नंदराय ने था पाला॥ ३४॥

नंद-यशोदा को प्रणाम कर, गले मिले दोनों भाई।
प्रेम-प्रवाह-प्रगाढ़, कंठ से वाणी नहीं निकल पाई॥ ३५॥

किया पिता-माता ने आलिंगन, गोदी में बैठाया।
दूरी का दुख दूर हुआ, जब पुत्रों को समीप पाया॥ ३६॥

मिली यशोदा-माता से देवकी-रोहिणी माताएं।
कहने लगी प्रेम से हम उपकार न कभी भूल पाएं॥ ३७॥

जो मित्रता निभाई तुमने, संभव नहीं उऋण होना।
फीकी है सम्पत्ति इन्द्र की, फीका है चांदी-सोना॥ ३८॥

राम-कृष्ण तो देख न पाये थे, हैं कौन जन्म-दाता।
इन्हें सुरक्षित रखा, पुतलियों से ज्यों पलकों का नाता॥
पालन-पोषण किया पुत्रवत् तुम ही हो असली माता।
भेद-भाव से रहित प्रेम ही सच्चा प्रेम कहा जाता॥ ३९॥

शुक बोले - प्रभु के दर्शन पाकर थीं मग्न गोपिकाएं।
पलक बनाने वाले को कोसें, यदि पलक-झपक जायें॥
नयनों से ले गई हृदय में, फिर बांधा आलिंगन में।
प्रभु से एकाकार हो गईं, बस प्रभु ही प्रभु थे मन में॥
गोपिकाओं ने इस तन्मयता से ऐसी सद्गति पाई।
जिसको पाने में होती है, योगी-जन को कठिनाई॥ ४०॥

प्रभु को लगा कि गोपिकाओं का अपना स्वत्व न शेष रहा।
बहुत प्रेम से गले लगाया, बहुत प्रेम के साथ कहा॥ ४१॥

शत्रु-नाश आवश्यक था, स्वजनों ने बहुत कष्ट पाये।
इसीलिए ब्रज छोड़ा हमने, क्या हम तुम्हें याद आये॥ ४२॥

हम कृतघ्न हैं, अपने मन में यह आशंका मत लाना।
ईश्वर के हाथों में रहता, मिलना और बिछुड़ जाना॥ ४३॥

बादल, रज-कण, तृण, कपास, आंधी में कुछ क्षण साथ उड़ें।
ईश्वर की इच्छानुसार ही, जीव जुड़े अथवा बिछुड़ें॥ ४४॥

सखियो! तुमने पाया मेरा प्रेम, और मुझको पाया।
भक्ति-भाव है अमर तुम्हारा, वापस मुझे खींच लाया॥ ४५॥

धरा-गगन-जल-अग्नि-वायु हैं, हर पदार्थ के निर्माता।
हर पदार्थ में पर तुमको मेरा ही रूप नजर आता॥ ४६॥

सभी प्राणियों के शरीर का पंचभूत निर्माण करें।
होती है आत्मा जीव में जिसे प्रमाणित प्राण करें॥
ऐसा होता है प्रतीत मैं इनके भीतर-बाहर हूँ।
मैं अलिप्त हूँ, परम सत्य हूँ, अविनाशी, हूँ अक्षर हूँ॥ ४७॥

शुक ने कहा - गोपियों को जब ज्ञान कृष्ण से प्राप्त हुआ।
एकाकार हो गई प्रभु से, जीवन-कोष समाप्त हुआ॥ ४८॥

कहा गोपियों ने - जिन चरण-कमल का ध्यान धरें योगी।
वे भव-कूप तरें, यदि चरण-कमल की अनुकम्पा होगी॥
ऐसी करिये कृपा, आप सर्वदा हमें स्मरण रहें।
रहें आपकी शरण, हृदय में सदा आपके चरण रहें॥ ४९॥

तेरासीवां अध्याय

भगवान श्रीकृष्ण द्वारा वासुदेवजी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश तथा देवकी के छैः मृत पुत्रों को वापस लाना

शुक बोले - प्रभु और बल करें प्रतिदिन सुबह पितृ-वंदन।
एक दिवस वसुदेव उठे, करने को उनका अभिनंदन॥ १॥

जैसी लीलाएं देखीं, जैसा मुनियों ने समझाया।
परम-पिता ही पुत्र रूप धारण कर उनके घर आया॥
कहने की इच्छा थी लेकिन घेरे रही सदा माया।
कहने लगे पिता पुत्रों से, सुनो आज अवसर आया॥ २॥

मुझे ज्ञात है कृष्ण और बल तुम हो जग के निर्माता।
परम-पुरुष, परमेश्वर, सत्य-सनातन तुम्हें कहा जाता॥ ३॥

जग में, जब, जो, जहां, जिस तरह है, सब रूप तुम्हारा है।
तुम दोनों ही सारा जग हो, तुम से ही जग सारा है॥ ४॥

एक तुम्हारी इच्छा ही इस संसृति का निर्माण करे।
और तुम्हारा अंश, आत्मा बन प्राणी में प्राण भरे॥ ५॥

चेतनता के लिए जीव की तुम पर होती निर्भरता।
क्रिया-शक्ति, सामर्थ्य, चेतना तुमसे जीव प्राप्त करता॥ ६॥

रवि, शशि, अग्नि और विद्युत में तुमसे ताप-प्रकाश रहे।
तुमसे पर्वत हैं स्थिर, वसुधा में सदा सुवास रहे॥ ७॥

तृप्त करे, जीवन दे, शुद्ध करे सबको वह जल तुम हो।
तन को सक्रिय करे, करे गतिमान, वायु का बल तुम हो॥ ८॥

तुम हो विदिशा-दिशा, शब्द का आश्रय वृहद्-व्योम तुम हो।
तुम हो आकृति, प्रकृति, वर्ण, वाणी, ध्वनि, नाद, ओम तुम हो॥ ९॥

तुम हो शक्ति इन्द्रियों की, तुम उनके देव अधिष्ठाता।
और तुम्हें ही प्राणी का बल, बुद्धि, विवेक कहा जाता॥ १०॥

सब भूतों में तमस, इन्द्रियों में राजस जाता पाया।
देवों का सत तुम हो, आवागमन तुम्हारी ही माया॥ ११॥

जैसे मिट्टी करती है नाना आकारों को धारण।
हर नश्वर पदार्थ का तुम्हीं अनश्वर होते हो कारण॥ १२॥

सत-रज-तम, इन तीन गुणों से प्राणी पार नहीं पाता।
इनको योगमयी-माया का ही विस्तार कहा जाता॥ १३॥

जन्म, वृद्धि, अवसान, तुम्हारी हैं वस्तुतः कल्पनाएं।
दूर कल्पनाएं की जायें, निर्विकल्प प्रभु को पाएं॥ १४॥

सत-रज-तम के इस प्रवाह को जो जन नहीं समझ पाते।
जन्म-मृत्यु के चक्कर में रहते, जग में आते-जाते॥ १५॥

यद्यपि शुभ कर्मों के ही कारण, दुर्लभ यह नर तन पाया।
कुछ परमार्थ नहीं कर पाया, घेरे रही योग-माया॥ १६॥

यह शरीर ही मैं हूँ, यह हैं सब मेरे अपने सारे।
स्नेह-पाश में बंधे हुए हैं, हम सब ममता के मारे॥ १७॥

मेरे पुत्र नहीं हो तुम, तुम तो हो इस जग के स्वामी।
भूमि-भार कम करने को अवतरित हुए अंतर्यामी॥ १८॥

मुझे ज्ञात है, भव के भय से मुक्त तुम्हारे चरण करें।
हे शरणागत-वत्सल मुझको, अब चरणों की शरण करें।
यह शरीर है ग्रास मृत्यु का, यह सब मैंने जान लिया।
पुत्र नहीं अब परमपिता, मैंने दोनों को मान लिया॥ १९॥

तुमने ही था कहा - सूतिका-गृह में मुझे याद आया।
मैं अज हूँ पर धर्म हेतु मैंने स्वरूप यह प्रकटाया।
रूप बदलते हो नभ जैसे, माया करे योग-माया।
वेदों ने भी समझ न पाया, केवल कीर्ति गान गाया॥ २०॥

शुक बोले - वसुदेव-तात की बातें सुन प्रभु मुस्काये।
फिर विनम्रता से झुककर मोहक वाणी में समझाये॥ २१॥

प्रभु बोले - हम पुत्रों को जो ज्ञान दिया है उपयोगी।
जो भी कहा आपने वह हर बात युक्तिसंगत होगी॥ २२॥

दिया गया है ब्रह्म-ज्ञान पुत्रों को एक पिता द्वारा।
सभी ब्रह्म हैं, मैं, तुम, भाई, यह द्वारका, जगत सारा॥ २३॥

निर्गुण, नित्य, अभिन्न, ज्योतिमय यह आत्मा हुआ करती।
पर गुण से मिल, सगुण, भिन्न, अदृश्य, अनित्य रूप धरती॥ २४॥

अग्नि, वायु, जल, गगन, धरा से सारा जगत रचा जाता।
इन भूतों को पर पदार्थ में कोई नहीं देख पाता॥
इसी तरह आत्मा एक, धारण करती स्वरूप नाना।
तात! आपने इसी दृष्टि से मुझे सर्वव्यापी माना॥ २५॥

शुक बोले - वसुदेव शांति पाये, सुनकर प्रभु की वाणी।
दिखने लगे सभी में प्रभु, प्रिय लगने लगे सभी प्राणी॥ २६॥

वहीं देवकी भी बैठी थीं, उनको तभी याद आया।
राम-कृष्ण ने गुरु को उनका मरा पुत्र था लौटाया॥ २७॥

निज सुत आये याद, कंस ने जिन्हें दुष्टता से मारा।
कृष्ण और बल से बोली, आंखों से बही अश्रुधारा॥ २८॥

कहा देवकी ने - तुम दोनों हो इस जग के निर्माता।
अप्रमेय, योगेश्वर हो, परमेश्वर तुम्हें कहा जाता॥ २९॥

मुझे ज्ञात है, सत्व घटा, धरती पर पापाचार बढ़ा।
होने लगी अवज्ञा शास्त्रों की, धरती का भार बढ़ा॥
दुष्टों का विनाश करने तुमने मानव का रूप धरा।
जन्म लिया मुझसे, निष्पाप हो सके जिससे वसुंधरा॥ ३०॥

मैं शरणागत हूँ, मैंने यह सारा ज्ञान आज पाया।
प्रभव, प्रलय, पालन करती है, इस जग का प्रभु की माया॥ ३१॥

गुरु प्रसन्न थे, अपने मृत सुत को जीवित वापस पाकर।
गुरु दक्षिणा चुकाने लाये थे, उसको यमपुर जाकर॥ ३२॥

मुझे देखना है छैः सुत, जो गए कंस द्वारा मारे।
तुम दोनों योगेश्वर हो, लाओ वापस वे सुत सारे॥ ३३॥

शुक ने कहा - मनोरथ मां का, दोनों पुत्रों को भाया।
राम-कृष्ण को सुतल-लोक, माया ने क्षण में पहुंचाया॥ ३४॥

दैत्यराज बलि ने देखा, प्रभु जगदाधार, परम-स्वामी।
सुतल-लोक में आये हैं, बल और कृष्ण अंतर्यामी॥
दैत्यराज ने आसन से उठकर दोनों के चरण छुए।
सपरिवार दोनों का स्वागत कर, अत्यंत प्रसन्न हुए॥ ३५॥

दैत्यराज ने दोनों को उत्तम आसान पर बैठाया।
चरण पखारे, दिनों बाद ऐसा उत्तम अवसर आया॥
सुतल हुआ पावन, बलि ने चरणोदक किया शीश धारण।
ब्रह्म-लोक की पावनता का, चरणोदक ही है कारण॥ ३६॥

धूप-दीप-चंदन से बलि ने पूजा की बारी-बारी।
भेंट किए बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, अलंकार भारी॥
अमृत जैसा भोजन कर, संतुष्ठ हुए दोनों भाई।
बलि ने सपरिवार आकर फिर प्रभु की शरणागति पाई॥ ३७॥

कभी हृदय पर, कभी शीश पर, दैत्यराज प्रभु-चरण रखें।
यही चाहते थे प्रभु उनको, सदा-सर्वदा शरण रखें॥
रोम-रोम आनंदित था, आंखों से अश्रु लगे झरने।
गद्-गद् स्वर में दैत्यराज फिर लगे विनम्र विनय करने॥ ३८॥

बलि बोले - है नमन आपको, हे बल जग-धारणकर्ता।
नमन आपको कृष्ण, परम-प्रभु इस जग के कर्ता-धर्ता॥ ३९॥

जिस पर आप कृपा करते वह प्राणी ही दर्शन पाये।
बड़ी कृपा, तम-रज वाले बलि को दर्शन देने आये॥ ४०॥

दानव, दैत्य, सिद्ध, विद्याधर, भूत, पिशाच, यक्ष सारे।
सभी प्रमथ, गंधर्व, राक्षस, दूर रहें भय के मारे॥ ४१॥

आप सत्वमय, वेदरूप हैं, जो समीप प्रभु के आया।
वैर-भाव या भक्ति-भाव हो, उसने उत्तम पद पाया॥ ४२॥

कई दैत्य-गण जो पद पाये, नहीं देवगण भी पाते।
वैर, प्रीत या भक्ति-भाव, प्रभु को तो सभी भाव भाते॥ ४३॥

हे योगेश्वर नहीं आपकी माया को जाने योगी।
हम क्या जाने प्रभु की माया को, कैसी होती होगी॥ ४४॥

ऐसी कृपा कीजिए मुझ पर, प्रभु-चरणों में रति पाऊं।
मुक्ति मिले भव-अंध-कूप से, आश्रय पा, सद्गति पाऊं।
मैं एकाकी रहूँ और प्रभु के चरणों का ध्यान करूं।
हो सत्संग, मिलूं संतों से, प्रभु का ही गुण-गान करूं॥ ४५॥

आज्ञा करें नियंता जग के, हे संसृति के निर्माता।
प्रभु की आज्ञा-पालन करने वाला सदा मुक्ति पाता॥ ४६॥

प्रभु बोले - ब्रह्मा के पुत्र मरीचि प्रजापति कहलाये।
पत्नी ऊर्णा से मरीचि ने छैः अति सुन्दर सुत पाये॥
ब्रह्मा ने पुत्री से ही रति का जब अधम प्रयास किया।
इन मरीचि के पुत्रों ने ब्रह्माजी का उपहास किया॥ ४७॥

तब ब्रह्मा ने शाप दिया, तो असुर योनि पाये सारे।
बनकर पुत्र हिरण्यकशिपु के, रहें सुतल में बेचारे॥ ४८॥

माया ने उनको ले जाकर, दुष्ट कंस से मरवाया।
मां की इच्छा है मिलने की, मैं उनको लेने आया॥ ४९॥

अपने मृत पुत्रों से मिल मां का संताप दूर होगा।
ये भी अपने लोक चले जायेंगे, शाप दूर होगा॥५०॥

वे स्मर, उद्गीथ, क्षुद्रभ्रत, घृणि, परिष्वंग, पतंग सभी।
मुक्ति, शाप से पायेंगे, जायेंगे मेरे साथ अभी॥५१॥

दोनों भ्राताओं को सौंपे, बलि ने उनके छैः भ्राता।
मृत पुत्रों को जीवित पाकर, थी अति-आनंदित माता॥५२॥

बहने लगा दूध छाती से, जब वात्सल्य उमड़ आया।
सिर को सूंघा, हृदय लगाया, और गोद में बैठाया॥५३॥

उन्हें पिलाया दूध देवकी ने जो कृष्ण न पी पाये।
है जीवन का चक्र यही, यह प्रभु की माया कहलाये॥५४॥

मां का दूध पिया अमृत-मय, प्रभु का था जो मन भाया।
हुआ आत्म-साक्षात्कार, पुत्रों ने आत्मज्ञान पाया॥५५॥

पुत्रों ने वसुदेव, देवकी, बल को, प्रभु को नमन किया।
सभी देखते रहे उन्होंने देवलोक को गमन किया॥५६॥

मृत पुत्रों का जीवित आना, फिर सुरलोक चले जाना।
विस्मित थीं देवकी, इसे प्रभु का लीला-विलास माना॥५७॥

परमेश्वर हैं कृष्ण, परम है शक्ति, परम उनकी माया।
उनकी लीलाएं विचित्र हैं, उनको कौन समझ पाया॥५८॥

बोले सूत - सुनो ऋषियों, अमृतमय प्रभु की लीलाएं।
पाप-ताप को शीतल करतीं, व्यासपुत्र जिनको गाएं॥
जो करते हैं पान कथामृत, जो लीलाओं को गाते।
दोनों का मन लगता प्रभु में, दोनों दिव्य धाम पाते॥५९॥

एकादश स्कंध

प्रथम अध्याय

यदुवंश को ऋषियों का शाप

शुक बोले - बल और कृष्ण ने दैत्यों का संहार किया।
यदुवंशी वीरों से मिलकर, कम धरती का भार किया॥१॥

कपट-द्यूत-क्रीड़ा करके, कृष्णा के केश गए खींचे।
पांडव क्रोधित हुए, वृद्ध कुरु-जन जब रहे आंख मींचे॥
बना निमित्त पाण्डवों को, सब अत्याचारी संहारे।
जो अधर्म के साथ खड़े थे, पापी गए सभी मारे॥२॥

प्रभु ने सोचा यदुवीरों ने दुष्ट पापियों को मारा।
किया गया कम भार धरा का, जिन यदुवीरों के द्वारा॥
इन अजेय वीरों ने अब धरती का भार बढ़ाया है।
लगता है उद्देश्य जन्म का, पूर्ण नहीं हो पाया है॥३॥

मेरे आश्रित इस यदुकुल में इतना धन-बल, जन-बल है।
अपराजेय हो गया है, अनियंत्रित है, उछृंखल है॥
जलता बांस रगड़कर, लड़कर आपस में यादव सारे।
मैं जाऊंगा धाम, सभी यदुवंशी जायेंगे मारे॥४॥

शाप निमित्त बना ऋषियों का, यादव सभी गए मारे।
प्रभु का था संकल्प, साथ प्रभु के, प्रभुधाम गए सारे॥५॥

था प्रभु का सौंदर्य दिव्य, नेत्रों को आकर्षित करता।
वाणी में बंध गया विश्व, चरणों पर मोहित सुन्दरता॥६॥

प्रभु की ऐसी कीर्ति, जिसे जो भी स्मरण करे, गाये।
कट जाये अज्ञान-तिमिर, वह प्रभु का परमधाम पाये॥७॥

राजा ने पूछा - यदुवंशी, सब प्रभु में अनुरक्त रहे।
शाप दिया क्यों ऋषियों ने, वे तो विप्रों के भक्त रहे॥८॥

किया यादवों ने क्या, जिससे ऋषिगण क्रोधित हो जायें।
फूट हुई कैसे यदुकुल में, मुनिवर सब कुछ बतलायें॥९॥

शुक बोले - कल्याण हेतु प्रभु का अवतार हुआ करता।
पूर्ण-काम प्रभु की उदार थी कीर्ति, अनोखी सुन्दरता॥
प्रभु ने ही अजेय यदुवीरों के विनाश की इच्छा की।
इनका ही तो भार रह गया था, इस धरती पर बाकी॥१०॥

प्रभु ने किये परम मंगलमय पुण्य-कर्म जनहितकारी।
करके जिनका गान, दूर करते ज्ञानी भव-भय भारी।
उसी द्वारका में रहते थे, प्रभु कर काल-रूप धारण।
इसी समय ऋषियों ने की थी प्रभु से भेंट असाधारण॥११॥

पाकर प्रभु से बिदा पुनः प्रभु दर्शन की इच्छा पाले।
भृगु, अंगिरा, कण्व, दुर्वासा, आसपास डेरा डाले॥
विश्वामित्र, वसिष्ठ, अत्रि, कश्यप जैसे ऋषि रुके सभी।
नारद भी रुक गए, इस तरह कहीं न रुकते संत कभी॥१२॥

कुछ यदुवंशी युवक खेलने पहुँचे उसी तपोवन में।
पूछा प्रश्न नम्र बनकर यद्यपि न नम्रता थी मन में॥१३॥

साम्ब साथ थे, गर्भवती नारी का रूप किए धारण।
बोले युवक - प्रश्न यह पूछ न पाती लज्जा के कारण॥१४॥

इसे पुत्र चाहिए, पुत्र होगा या कन्या बतलायें।
ज्ञान अमोघ, अबाध, संत-गण तो सर्वज्ञ कहे जायें॥१५॥

क्रोधित होकर मुनि बोले, इस धोखे का यह फल होगा।
जो यदुकुल का नाश करे, इससे पैदा मूसल होगा॥१६॥

सुन ऋषियों का शाप छू हुई, युवकों की मस्ती सारी।
खोला पेट साम्ब का तो उसमें निकला मूसल भारी॥१७॥

मूसल देख युवक घबराये, खुद को कोसा, पछताये।
लोग कहेंगे क्या यह सोचें, डरते-डरते घर आये॥१८॥

मुख कुम्हलाये, राज्य सभा में युवक लौह-मूसल लाये।
पूरा विवरण दिया नृपति को, शाप बताया, जो पाये॥१९॥

विप्र-शाप की बात सुनी जब, लोहे का मूसल देखा।
बोले सभी शाप को हमने होते नहीं विफल देखा॥२०॥

चूर्ण-चूर्ण करवाया राजा ने मूसल लोहे वाला।
टुकड़ों सहित चूर्ण मूसल का गहरे सागर में डाला॥२१॥

चूर्ण किनारे लगा, किनारे एरिक घास निकल आया।
मूसल का छोटा टुकड़ा, सागर में मछली ने खाया॥२२॥

वह मछली पकड़ी मछुहारों ने, उसमें लोहा पाया।
जरा व्याध ने उसे तीर में लगा लिया, प्रभु की माया॥२३॥

प्रभु को था सब ज्ञात, दिया ऋषियों ने शाप असाधारण।
किया न हस्तक्षेप कर चुके थे प्रभु काल-रूप धारण॥२४॥

एकादश स्कंध

छठवां अध्याय

देवताओं की भगवान से स्वधाम सिधारने की प्रार्थना तथा यादवों की प्रभास क्षेत्र जाने की तैयारी

शुक बोले - ब्रह्मा, शंकर ने जब उपयुक्त समय जाना।
प्रभु से मिले, साथ थे मुनिगण, सुरगण, शिव के गण नाना॥ १॥

इन्द्र, मरुत, आदित्य, रुद्र, ऋभु, सिद्ध, साध्य, किन्नर आये।
विश्वदेव, गंधर्व, नाग, गुह्यक, बसु, विद्याधर आये॥ २॥

पितर, अंगिरा के वंशज, अश्वनिकुमार एवं चारण।
सभी अप्सराएं आईं, अवसर अत्यंत असाधारण॥ ३॥

सब एकत्रित हुए, द्वारका में प्रभु का दर्शन करने।
जो धरती पर प्रकटे थे, यश से जग को पावन करने॥ ४॥

ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि, द्वारका में सबने अशेष देखी।
प्रभु की दिव्य, अलौकिक छबि, देवों ने निर्निमेष देखी॥ ५॥

प्रभु को अर्पित कीं नंदनवन के फूलों की मालाएं।
सब मिलकर स्तुतियां करते, मिल कर प्रभु का यश गाएं॥ ६॥

बोले देव - मुमुक्षु सदा जिन चरणों का चिंतन करते।
कटते कर्म-बंध उनके, वे इस भव-सागर से तरते॥
भाग्यवान हैं हम, उन चरणों का हमने दर्शन पाया।
नत है आज बुद्धि, मन, वाणी, इन्द्रिय, प्राण और काया॥ ७॥

जग की रचना, पालन और प्रलय करती प्रभु की माया।
इस त्रिगुणात्मक माया से तो कोई पार नहीं पाया॥
सब कुछ करते हुए, आपकी कर्मों में लिप्तता नहीं।
रहते मग्न स्वयं में जैसे प्रभु को कुछ भी पता नहीं॥ ८॥

लीला-कथा सुने जो प्रभु की, जो जन प्रभु का यश गाते।
अंत:करण शुद्ध हो जाता, वे जन श्रेष्ठ लोक पाते॥
मन का कलुष न हटे, वेद को पढ़ें, यज्ञ, जप, दान करें।
मन का मैल तभी हटता, जब प्रभु-लीला का गान करें॥ ९॥

करते भस्म वासनाओं को, हे प्रभु धूमकेतु बनकर।
द्रवित-हृदय भक्तों को भव से करते पार सेतु बनकर॥
याज्ञिक वेद-विहित विधि से प्रभु को ही पाने यजन करें।
कर अतिक्रमण स्वर्ग का प्रभु को पाने ज्ञानी भजन करें॥ १०-११॥

वक्षस्थल पर रमी रमा को भली न लगती मालाएं।
पर प्रभु के द्वारा वासी मालाएं स्वीकारीं जायें॥
चरण-कमल, जिनके चिंतन से मन में आती शीतलता।
विषय-भोग का भाव उन्हीं को पाकर धू-धू कर जलता॥ १२॥

वामन बन जो कदम तीसरा ब्रह्मलोक तक पहुचाएं।
ब्रह्मा ने पद धोये निकली, तीन पुण्य जल धाराएं॥
असुर अधोगति पाते जिनसे, साधु पुरुष सद्गति पायें।
इसीलिए उन चरण-कमल का, सभी भक्तगण गुण गायें॥ १३॥

नाथे हुए वृषभ ज्यों रहते, अपने स्वामी के वश में।
ब्रह्मा आदि देहधारी हैं, अंतर्यामी के वश में॥
आप काल से भी ऊपर हैं, प्रकृति-पुरुष से परें रहें।
पुरुषोत्तम प्रभु के चरणों को हम सब देव प्रणाम कहें॥ १४॥

जग की रचना करते, करते प्रलय और पालन करते।
प्रकृति-पुरुष की गतिविधियों का प्रभु ही संचालन करते॥
त्रिगुणात्मक है काल, काल की ओर सभी को ले जाते।
है गंभीर, अबाध आपकी गति, पुरुषोत्तम कहलाते॥ १५॥

प्रभु की शक्ति अचूक, पुरुष में करें वीर्य का संचारण।
माया से मिल करती है फिर, प्रकृति अचूक गर्भ धारण॥
धरा, गगन, जल, वायु, अग्नि, मन, अहंकार जब मिल जाते।
तब स्वर्णिम ब्रह्मांड बने, यह तीन लोक आकृति पाते॥ १६॥

त्रिगुणात्मक माया का भोग करें, लेकिन निर्लिप्त रहें।
इसीलिए तो प्रभु को सब विषयों-भोगों से परे कहें॥
एक मात्र है आप सदा निर्लिप्त भाव से भोग करें।
बाकी तो आलिप्त रहें, या दूर रहे, इस तरह डरें॥ १७॥

हैं सोलह सहस्त्र ललनायें, काम-बाण नित बरसायें।
प्रभु का प्रेम सभी पायें, पर प्रभु को नहीं बांध पायें॥ १८॥

बहा रखीं हैं प्रभु ने पाप-ताप हरिणी दो सरिताएं।
प्रभु के पद से निकली गंगा, प्रभु की सारी लीलाएं॥
करते श्रवण कथा का और लगाते गंगा में गोते।
दोनों तीर्थों का सेवन कर, भव से सभी पार होते॥ १९॥

शुक बोले - सब देव गए, पर ब्रह्मा ने थोड़ा रुककर।
पा एकान्त बात की मन की, प्रभु के चरणों में झुककर॥ २०॥

ब्रह्मा बोले - नर-तन किया आपने धारण जिस कारण।
पूर्ण हुआ भू-भार घटाने का वह कार्य असाधारण॥ २१॥

हुआ धर्म स्थापित, सत्पुरुषों के मिटे कष्ट सारे।
दसों-दिशाओं में फैला यश, पाप-ताप को जो मारे॥ २२॥

सर्वश्रेष्ठ अवतार आपका, श्रेष्ठ आपकी लीलाएं।
प्रभु की इस औदार्य-शौर्य से पूर्ण कीर्ति को सब गाएं॥ २३॥

कलियुग में जो साधु-पुरुष इन लीलाओं को गायेंगे।
वे अज्ञान-तिमिर से होंगे पार, परम-पद पायेंगे॥ २४॥

हुए सवा सौ साल आपको, हे प्रभु धरती पर आये।
प्रभु का यह अवतार सदा लीला-अवतार कहा जाये॥ २५॥

पा विप्रों का शाप, शीघ्र यदुवंशी जायेंगे मारे।
प्रभु धरती के काम आपने भी कर लिए पूर्ण सारे॥ २६॥

आप उचित समझें तो प्रभु अब अपने परम-धाम आयें।
पाकर प्रभु का सान्निध्य सब लोक-पाल भी सुख पायें॥ २७॥

प्रभु बोले - जो कहा आपने, मैंने वही विचारा है।
देवों के कहने से ही धरती का भार उतारा है॥ २८॥

यदुवीरों के शौर्य-वीर्य से नहीं सुरक्षित है धरती।
मैंने रोका, जैसे सागर को धरती रोका करती॥ २९॥

इन उच्छृंखल वीरों का वध है पहली आवश्यकता।
पूर्ण सुरक्षित किये बिना, मैं धरती छोड़ नहीं सकता॥ ३०॥

है आरंभ, अंत का, विप्रों द्वारा शाप दिया जाना।
अंत बिना देखे अनुचित होगा मेरा स्वधाम आना॥ ३१॥

शुक बोले - सुनकर प्रभुवाणी, ब्रह्माजी ने नमन किया।
सुर सुरलोक गए, ब्रह्मा ने ब्रह्मलोक को गमन किया॥ ३२॥

होने लगे द्वारका में अपशकुन और उत्पात खड़े।
उन्हें देखकर आये प्रभु के पास सभी कुल-वृद्ध-बड़े॥ ३३॥

प्रभु बोले - दिख रहे अपशकुन पुर में अति अनिष्टकारी।
विप्रों ने जो शाप दिया, उसको टालना बहुत भारी॥ ३४॥

पुर में रहकर शायद ही प्राणों की रक्षा कर पायें।
होगा उचित शीघ्र हम सारे, अति-पावन प्रभास जायें॥ ३५॥

दिया दक्ष ने शाप चन्द्र को हुआ यक्ष्मा दुखदायी।
वहां स्नान से बढ़ी कलायें, मुक्ति यक्ष्मा से पायी॥ ३६॥

देवों-पितरों का तर्पण भी होगा, पुण्य-स्नान होगा।
लेकर चलें विविध व्यंजन, विप्रों को अन्नदान होगा॥ ३७॥

विप्रों को श्रद्धा से दिए दान का फल अपार होता।
दान बने जलयान, सहज संकट का सिंधु पार होता॥ ३८॥

शुक बोले - प्रभु की आज्ञा को एक मतेन सभी माने।
लगे सजाने अपने-अपने रथ को सब प्रभास जाने॥ ३९॥

विशेष: ग्यारहवें स्कंध के छठवें अध्याय के ४० से ५० तक के श्लोकों का अनुवाद नहीं किया गया है। इसी तरह ग्यारहवें स्कंध के ७ से २९ अध्याय पूरे तथा तीसवें अध्याय के १ से १० के श्लोकों को 'श्रीकृष्ण-कथा' में शामिल नहीं किया गया है। यह छोड़ा गया भाग अवधूत उपाख्यान है जो भगवान ने उद्धव जी को सुनाया है।

तीसवां अध्याय

यदुकुल का संहार

पहुंच प्रभास सभी यदुवीरों ने पहले शुभ-स्नान किए।
फिर प्रभु की आज्ञानुसार, सब अनुष्ठान कर, दान किए॥ ११॥

तभी दैव ने वीरों के मन में ऐसी कुबुद्धि डाली।
मेरेयक मदिरा सब ने पी, सर्वनाश करने वाली॥ १२॥

कुछ मदिरा का मद था, बाकी सारी थी प्रभु की माया।
लड़ने लगे सभी आपस में, सब पर अहंकार छाया॥ १३॥

लेकर धनुष-बाण, तलवार, गदा, तोमर एवं भाले।
करने लगे आक्रमण एक दूसरे पर हो मतवाले॥ १४॥

हो सवार रथ, हाथी, घोड़ों पर आक्रमण किए जायें।
सभी वाहनों पर फहरायें, उनकी ध्वजा पताकायें॥
सभी हो गए थे आक्रामक, प्रभु की ऐसी माया थी।
अपनों के वध पर आमादा, जैसे हों वन के हाथी॥ १५॥

उलझ गए प्रद्युम्न-साम्ब से, सात्यकि से अनिरुद्ध लड़े।
भोज और अक्रूर भिड़े, छोटों से लड़ने लगे बड़े॥
लड़े सुमित्र-सुरथ से, गद से इसी नाम के चाचाजी।
थी सुभद्र-संग्राम-जीत में अपने प्राणों की बाजी॥ १६॥

लड़े निशठ, उल्मुक, सहस्त्रजित, शतजित, भानु शक्तिशाली।
प्रभु की माया थी, मदिरा भी थी मदांध करने वाली॥ १७॥

अंधक, भोज, वृष्णि, अर्बुद, मधु, कुकुर, दशार्ह वंश वाले।
आपस में सब लड़ें, न जाने किसको कौन मार डाले॥
भिड़े विसर्जन-कुंति भूलकर के अपना भाई-चारा।
माथुर-शूरसेन अपराजित थे, पर अपनों ने मारा॥ १८॥

पिता पुत्र से लड़े, पौत्र से युद्ध करें दादे-नाने।
सिर पर खून सवार हुआ तो कौन किसी को पहचाने॥
मित्र-मित्र से, सुहृद-सुहृद से, भाई से लड़ते भाई।
लड़े भतीजे-चाचा, भांजे-मामा कटुता गहराई॥ १९॥

अस्त्र-शस्त्र हो गए नष्ट पर थे लड़ने तैयार सभी।
घास एरका को उखाड़कर, करने लगे प्रहार सभी॥ २०॥

घास, वज्र जैसी लगती, जिससे यदुवीर लगे मरने।
प्रभु ने रोका, तो प्रभु पर ही उद्यत थे हमला करने॥ २१॥

बल ने रोका तो उनसे ही लड़ने लगे आततायी।
बुद्धि भ्रष्ट उसकी हो जाती, जिसके निकट मृत्यु आयी॥ २२॥

तब यदुनंदन राम-कृष्ण ने विप्र शाप को स्वीकारा।
ले मुट्ठी भर घास हाथ में, जो आगे आया, मारा॥ २३॥

रगड़ बांस की जैसे दावानल फैलाती है वन में।
शापित यदुकुल नष्ट हुआ आपसी कलह में, अनबन में॥ २४॥

लगे सोचने प्रभु जब सब यदुवीरों का संहार हुआ।
अब भू-भार कम हुआ, जिसके लिए कृष्ण अवतार हुआ॥ २५॥

राजन! बल ने बैठ सिंधु तट पर एकाग्र किया मन को।
परम-धाम को प्राप्त कर लिया, त्याग दिया मानव तन को॥ २६॥

प्रभु ने जब देखा अग्रज बलराम ब्रह्म में लीन हुए।
प्रभु पीपल के नीचे जाकर, धरती पर आसीन हुए॥ २७॥

रूप चतुर्भुज दिव्य, देह की कांति दिव्यता फैलाये।
धूम्र-रहित पावक से दिशा-दिशा ज्यों उज्ज्वलता पाये॥ २८॥

मेघ-श्याम तन, तप्त-स्वर्ण जैसी आभा मन को भाये।
कटि में पीत वस्त्र, छाती पर वत्स-चिन्ह शोभा पाये॥ २९॥

मधु-मुस्कान कमल-से मुख पर गालों पर लटकें अलकें।
रक्त कमल-से नेत्र, कान में मकराकृति कुंडल झलकें॥ ३०॥

माथे-मुकुट, बांह में बाजूबंद, और कटि में करधन।
कंधे पर यज्ञोपवीत, दोनों कलाइयों में कंगन।
चरणों में नूपुर, अंगूठियां सभी अगुलियों में पहने।
और गले में कौस्तुभ-मणि, मणिमाला सहित कई गहने॥ ३१॥

मूर्तिमान आयुध थे, घुटनों तक लम्बी थी वनमाला।
दायीं जंघा पर बायां प्रभु-पद था लाल वर्ण-वाला॥ ३२॥

मूसल के टुकड़े से गया बनाया बाण व्याध द्वारा।
समझ हिरण का मुख प्रभु के तलवे को, वहीं बाण मारा॥ ३३॥

आया पास, चतुर्भुज प्रभु को, अपना बाण लगा पाया।
प्रभु के चरणों में सिर रख कर, गिरा भूमि पर घबराया॥ ३४॥

हे मधुसूदन, क्षमा करें, अनजाने में अपराध हुआ।
करते हुए प्रार्थना प्रभु की शरणागत वह व्याध हुआ॥ ३५॥

हट जाता अज्ञान-तिमिर, नर जब प्रभु का स्मरण करें।
मेरे जैसों का क्या होगा, जो आहत प्रभु-चरण करें॥ ३६॥

मेरा वध करिये प्रभु जिससे, फिर ऐसा अपराध न हो।
निरपराध हिरणों का वध करने वाला, यह व्याध न हो॥ ३७॥

हर विद्या के जानकार जो ब्रह्मा, रुद्र कहे जाते।
जब वे भी प्रभु की माया को, हे प्रभु नहीं समझ पाते॥
दृष्टि बांध कर रखती है, उनको भी, जब प्रभु की माया।
मैं तो पाप-योनि वाला, जो प्रभु को नहीं देख पाया॥ ३८॥

प्रभु बोले - रे जरा! न डर तू, तूने किया काम मेरा।
जो पद पाते पुण्यवान, पायेगा वही धाम मेरा॥ ३९॥

पा प्रभु की आज्ञा, परिक्रमा की चरणों में नमन किया।
जरा व्याध ने चढ़ विमान पर, स्वर्ग लोक को गमन किया॥ ४०॥

तुलसी माला की सुगंध से प्रभु हैं कहां, पता पाया।
दारुक, प्रभु का प्रिय रथ-वाहक प्रभु के तभी निकट आया॥ ४१॥

उसको पीपल की छाया में, प्रभु भूपर आसीन दिखे।
प्रभु के आयुध, मूर्तिमान हो, प्रभु-सेवा में लीन दिखे॥
प्रभु को देख हृदय में उमड़ा प्रेम, नेत्र से अश्रु बहे।
दारुक ने रथ छोड़, भूमि पर गिर कर, प्रभु के चरण गहे॥ ४२॥

दारुक बोला - बिना पद-कमल देखे अंधकार छाता।
बिना चंद्रमा पथिक रात्रि में जैसे कुछ न देख पाता॥
नहीं हृदय में शांति, दिशाओं का भी मुझे न ज्ञान बचा।
दृष्टि नष्ट हो गई कठिनता से आया हूँ जान बचा॥ ४३॥

दारुक विनय कर रहा था, जब प्रभु से खड़ा हाथ जोड़े।
नभ में गया गरुड़ध्वज वाला प्रभु का रथ एवं घोड़े॥ ४४॥

रथ के पीछे-पीछे दिव्य आयुधों को जाते पाया।
दारुक था अत्यंत चकित, तब प्रभु ने उसको समझाया॥ ४५॥

दारुक, शीघ्र द्वारका जाकर देना समाचार सारा।
यदुवीरों ने कैसे लड़कर, एक दूसरे को मारा॥
परम-धाम को प्राप्त हुए बलराम, सभी को बतलाना।
मुझको भी अब धरा छोड़, निज-धाम शीघ्र ही है जाना॥ ४६॥

सबको कहना, सभी करें द्वारका त्याग की तैयारी।
मेरे जाते ही समुद्र में डूबेगी नगरी सारी॥ ४७॥

मेरे माता-पिता सहित, सब लोग शीघ्र बाहर आयें।
अर्जुन के संरक्षण में रहने सब, इन्द्रप्रस्थ जायें॥ ४८॥

दारुक, उसी धर्म का आश्रय लो, जो मैंने समझाया।
ज्ञाननिष्ठ हो, शांत मन करो, यह सब है मेरी माया॥ ४९॥

प्रभु का पा आदेश, परिक्रमा की, चरणों में शीश धरा।
दारुक चला द्वारका जाने, मन में था अवसाद भरा॥ ५०॥

इक्तीसवां अध्याय

भगवान का स्वधाम गमन

बोले श्रीशुक - तभी वहां ब्रह्मा आये, शंकर आये।
इन्द्र सहित सब लोकपाल आये, सारे मुनिवर आये॥ १॥

सिद्ध, पितर, गंधर्व, नाग-गण, चारण, विद्याधर आये।
राक्षस, यक्ष, विविध पक्षी, द्विजगण एवं किन्नर आये॥ २॥

गगन भर गया यानों से, यानों में भरी अप्सरायें।
प्रभु के दर्शन की इच्छुक थी, सब गायें प्रभु - लीलायें॥ ३॥

सब की इच्छा थी प्रभु को देखें जब परम-धाम जायें।
भक्ति सहित प्रभु के गुण गाते हुए पुष्प सब बरसायें॥ ४॥

प्रभु ने ब्रह्मा आदि देवताओं पर एक दृष्टि डाली।
मूंदे कमल-नयन, छबि प्रभु की दिखी योग-मुद्रा वाली॥५॥

योगी, प्रभु के इसी रूप का धरते ध्यान इसी कारण।
इसी रूप में हुआ गमन प्रभु का निजधाम असाधारण॥६॥

दुंदुभियां बज उठीं, धरा को छोड़ त्रिलोकीनाथ गए।
धर्म, सत्य, श्री, कीर्ति, धैर्य, जैसे सद्‌गुण भी साथ गए॥७॥

ब्रह्मा आदि देवता प्रभु का गमन देखने थे आये।
प्रभु की गति मन-वाणी जैसी उनको कौन देख पाये॥८॥

विद्युत होती जब विलीन, होता है कठिन देख पाना।
इसी तरह देवों को दिखा नहीं प्रभु का स्वधाम जाना॥९॥

ब्रह्मा-रुद्र आदि ने देखा, योगमयी प्रभु की गति को।
विस्मित सुर निज लोक गए, सब भजते तीन लोकपति को॥१०॥

राजन! विविध वेश धर कर नट जैसे स्वांग बनाते हैं।
उसी तरह प्रभु नर-लीला करने धरती पर आते हैं॥
जग के रचने वाले, जग में खुद नर का अभिनय करते।
फिर अपनी माया समेट कर वे ही महाप्रलय करते॥११॥

सन्दीपनि गुरुपुत्र यमपुरी से तन सहित गया लाया।
नृप! तुमने ब्रह्मास्त्र-अग्नि में जल कर भी यह तन पाया॥
किया पराजित शिवशंकर को महाकाल जो कहलाते।
व्याध सदेह स्वर्ग जो भेजें, वे प्रभु भी स्वधाम जाते॥१२॥

वे ही जग को रचते, पालन करते और प्रलय लाते।
उनके लिए सहज था इस जग में वे और रहे आते॥
किन्तु किया प्रभु ने प्रस्तुत आदर्श, सभी अनुकरण करें।
देह-गेह से करें स्नेह कम, खुद को प्रभु की शरण करें॥१३॥

भक्ति सहित प्रभु की इस लीला को जो प्रातः गाता है।
ऐसा पुरुष मुक्त हो जाता और परमपद पाता है॥१४॥

कृष्ण-विरह से व्याकुल दारुक, जब द्वारका-पुरी आया।
उग्रसेन-वसुदेव आदि को सब कुछ रोकर बतलाया॥१५॥

उसने बतलाया यदुवंशी कैसे गये सभी मारे।
सुनकर विवरण मूर्छित होने लगे दुखी होकर सारे॥१६॥

हो वियोग से व्याकुल यदुवंशी सब उसी जगह आये।
सारे यदुवीरों के मृत शरीर देखे तो चकराये॥१७॥

दिखे नहीं बल-कृष्ण, देवकी और रोहिणी माताएं।
मूर्छित हुईं, पिता वसुदेव, किस तरह जीवित रह पायें॥१८॥

किया देह का त्याग, नहीं सह पाये कृष्ण-विरह भारी।
मृत पतियों के शव को खोज रहीं थीं ललनाएं सारी॥१९॥

बल के साथ पत्नियां उनकी, जलकर स्वर्गलोक जायें।
शव लेकर वसुदेव-देव का सती हो गईं माताएं॥
प्रभु की बहुएं, प्रभु-पुत्रों के लिए गोद में चरण जलीं।
रुक्मिणी सहित सभी पटरानी, कर प्रभु का स्मरण जलीं॥२०॥

विरहातुर थे अर्जुन, जैसे ही यह समाचार पाया।
संयत किया स्वयं को, जब गीता का ज्ञान याद आया॥२१॥

शेष न था जिन मृतकों का, करने को कोई कर्म-क्रिया।
पिंड-दान इत्यादि कर्म अर्जुन ने श्रद्धा-सहित किया॥२२॥

गए द्वारका छोड़ कृष्ण, सागर में उठी लहर भारी।
प्रभु-निवास को छोड़, सिंधु ने की जलमग्न पुरी सारी॥२३॥

उस, प्रभु के निवास में, सदा-सर्वदा प्रभु निवास करते।
जो उनको स्मरण करें, भव-सागर बिन प्रयास तरते॥ २४॥

अर्जुन, वृद्धों, बच्चों, महिलाओं को इन्द्रप्रस्थ लाये।
किया वज्र का राजतिलक, मथुरा फिर से गरिमा पाये॥ २५॥

राजन! पांडव जब पाये यदुकुल के समाचार सारे।
तुम्हें सौंप कर राज्य, गए हिमगिरि पांडव दुख के मारे॥ २६॥

राजन! तुम्हें सुनायी मैंने, सभी कृष्ण की लीलायें।
होते मुक्त पातकों से, जो इन लीलाओं को गायें॥ २७॥

प्रभु के इस लीलावतार की, रुचिर मनोहर लीलायें।
इस पुराण में जो वर्णित हैं, या अन्यत्र कहीं पायें॥
कीर्तन करें और प्रभु की इन लीलाओं को जो गायें।
परमहंस जो गति पाते, वे वैसी ही सद्गति पायें॥ २८॥

श्रीमद्भागवत महात्म्य

प्रथम अध्याय

परीक्षित और वज्रनाभ का समागम, शांडिल्य मुनि के मुख से भगवान की लीला के रहस्य और ब्रज भूमि के महत्व का वर्णन

बोले व्यास - स्वरूप कृष्ण का सबको आकर्षित करता।
प्रभु सच्चिदानंद-घन का छाना सबको हर्षित करता।
उद्भव, स्थिति और प्रलय के जो है अनासक्त कारण।
उन्हें प्रणाम भक्ति-रस जिनको देता स्वाद असाधारण॥ १॥

बैठे थे श्री सूत, रसिक ऋषियों के मध्य निमिष वन में।
कर प्रणाम ऋषियों ने पूछी, जो थी उत्सुकता मन में॥ २॥

पौत्र परीक्षित को सौंपा जब इन्द्रप्रस्थ का सिंहासन।
वज्रनाभ का राजतिलक कर, सौंपा मथुरा का शासन॥
पांडव वन को चले गए, दोनों राजा थे नए-नए।
बतलायें जो काम नए राजाओं द्वारा किए गए॥ ३॥

कहा सूत ने - नर-नारायण-सरस्वती की जय बोलें।
नमन व्यास को करें बाद में इस पुराण-जय को खोलें॥ ४॥

पांडव वन को गए, परीक्षित को देकर जिम्मेदारी।
मथुरा गए परीक्षित, उन्हें वज्र की थी चिंता भारी॥ ५॥

वज्रनाभ ने सुना, परीक्षित पितृ-तुल्य मथुरा आये।
किया प्रणाम और अगवानी की सादर अंदर लाये॥ ६॥

किया वज्र का आलिंगन, प्रभु के प्रति प्रेम असीम रहा।
अंत:पुर में सब माताओं से मिल उन्हें प्रणाम कहा॥ ७॥

माताओं का अभिनंदन पा, वज्रनाभ को बैठाया।
नृपति परीक्षित ने सप्रेम फिर मथुरापति को समझाया॥ ८॥

नृप ने कहा - पितामह और पिता पर जब संकट छाये।
वज्र तुम्हारे पड़दादा, रक्षक बन कर आगे आये॥ ९॥

मैं चाहूं भी तो उपकारों का ऋण नहीं चुका सकता।
सुख से राज्य करो, चिंता की तुम्हें नहीं आवश्यकता॥ १०॥

नहीं कोष की चिंता करना, नहीं शत्रुओं से डरना।
हैं कर्तव्य तुम्हारा इन माताओं की सेवा करना॥ ११॥

मुझे बताना दूर करूंगा, वज्रनाभ हर कठिनाई।
बोले मन की बात वज्र, जब मन में प्रसन्नता छाई॥ १२॥

कहा वज्र ने - कथन आपके हैं, हे नृप अति-सुखदायी।
पिता आपके मेरे गुरु थे, युद्ध-कला उनसे पायी॥ १३॥

क्षात्रधर्म के पालन में, मैं खुद को सक्षम पाता हूँ।
पर मेरी चिंता है बहुत बड़ी, नृप को बतलाता हूँ॥ १४॥

मैं शासक हूँ उस मथुरा का जहां सिर्फ निर्जन वन हों।
प्रजा न जाने कहां गई, क्या राज्य, न जहां प्रजा-जन हों॥ १५॥

करने समाधान, मुनि शांडिल्य को नृप ने बुलवाया।
नंद आदि के रहे पुरोहित, वे जाने ब्रज की माया॥ १६॥

पा संदेश परीक्षित का मुनि शांडिल्य मथुरा आये।
वज्रनाभ ने पूजा की, ऊँचे आसन पर बैठाये॥ १७॥

कहा परीक्षित ने मुनि से, जो वज्रनाभ का कष्ट रहा।
मुनि ने देते हुए सांन्त्वना, हो अत्यंत प्रसन्न कहा॥ १८॥

बोले शांडिल्य - बतलाता हूं मैं ब्रज का भेद बड़ा।
ब्रज का अर्थ व्याप्त होता, है व्याप्त अतः ब्रज नाम पड़ा॥ १९॥

गुणातीत है ब्रह्म, वही ब्रज में सर्वत्र व्याप्त होता।
जो है मुक्त उन्हें ही यह ज्योतिर्मय क्षेत्र प्राप्त होता॥ २०॥

अप्तकाम हैं कृष्ण वहां नित रहते, आत्मरमण करते।
अनुभव सिर्फ रसिकगण करते, लीला-प्रभु हर क्षण करते॥ २१॥

राधा हैं आत्मा कृष्ण की, बिन राधा पल भर न रहें।
आत्मरमण करने वाले प्रभु को सब राधारमण कहें॥ २२॥

आप्त-काम का अर्थ, पूर्ण हों जिनकी सभी कामनायें।
प्रभु को यहां प्राप्त रहतीं हैं गोपी, गोप और गायें॥ २३॥

परे प्रकृति से होतीं हैं, प्रभु की रहस्यमय लीलायें।
खेला करते कृष्ण प्रकृति से, जिसे न लोग देख पायें॥ २४॥

होते हैं परिवर्तन सारे, कृष्ण प्रकृति से खेल करें।
प्रभव, प्रलय, पालन होता जब सत, रज, तम का मेल करें॥
प्रभु की एक अलौकिक लीला, जो वास्तवी कही जाती।
व्यवहारिकी दूसरी लीला लौकिक है, सबको भाती॥ २५॥

प्रभु की दिव्य अलौकिक लीला, कुछ प्रभु-भक्त देख पाते।
बाकी जगत देखता लौकिक लीला, जिसको सब गाते॥
उसी अलौकिक लीला से अनुप्राणित सारी लीलायें।
दिव्य अलौकिक लीला को जग वाले नहीं देख पायें॥ २६॥

तुम दोनों ने जो देखीं, हैं प्रभु की लौकिक लीलायें।
देव-लोक-वासी, धरती-वासी बस यही देख पायें॥ २७॥

ब्रज में होतीं गुप्त रूप से परम अलौकिक लीलायें।
परम-रसिक भी कभी-कभी ही उनका अनुभव कर पायें॥ २८॥

प्रभु का था लीलावतार, अवतरित हुए थे देव सभी।
ऐसे रसमय सम्मेलन का अवसर आता कभी-कभी॥ २९॥

प्रभु के अंतरंग प्रेमी-जन विविध रूप धर कर आये।
प्रभु की रूप-माधुरी का रस पीने का अवसर पाये॥ ३०॥

प्रभु जब अंतर्धान हुए, पूरी कर सबकी इच्छायें।
शेष रह गए रसिक-भक्त, जिनको प्रभु-लीलाएं भायें॥ ३१॥

तीन तरह के रसिक यहां पर प्रभु के साथ जन्म पाये।
पहले थे देवता जिन्हें प्रभु, पुरी द्वारका पहुंचाये॥ ३२॥

देव गए निज लोक, देह तज शाप ब्राह्मणों का पाकर।
और दूसरे भक्तों की इच्छा पूरी की अपनाकर॥ ३३॥

अंतरंग भक्तों में शामिल हुए, देखते लीलायें।
लेकिन सब अदृश्य हो जायें, जब जन-साधारण आयें॥ ३४॥

निर्जन-वन पाते हैं जो भी लौकिक लोग यहां आते।
वे प्रभु की लीलाओं को, भक्तों को देख नहीं पाते॥ ३५॥

चिंता छोड़ो वज्र, परिस्थितियों में परिवर्तन होगा।
फिर से ग्राम बसाओ, निर्जन में फिर वृंदावन होगा॥ ३६॥

प्रभु की लीलाओं पर आधारित सब नामकरण करना।
ग्रामों का निर्माण कराना, खुद को कृष्ण-शरण करना॥ ३७॥

नंदगांव, बरसाना, गोकुल, डींग और गोवर्धन में।
बना छावनी, लोग बसाओ, इस मथुरा-वृन्दावन में॥ ३८॥

वृन्दावन के शैल, सरोवर, सरिता, कुंज, कुंड, घाटी।
इनका सेवन करो, प्रजा में भी डालो यह परिपाटी॥ ३९॥

प्रभु सच्चिदानंद ब्रज में रहते, तुमको अनुभव होगा।
तब प्रभु-लीला-क्षेत्रों का, जानना तुम्हें संभव होगा॥ ४०॥

हो सकता है तुम्हें यहां उद्धव के दर्शन हो जायें।
उनसे लीला का रहस्य पायेंगी सारी मातायें॥ ४१॥

मुनि शांडिल्य गए आश्रम, गाते प्रभु के चरित्र नाना।
वज्र-परीक्षित थे प्रसन्न, प्रभु लीला का रहस्य जाना॥ ४२॥

दूसरा अध्याय

वज्रनाभ द्वारा नये ब्रज का निर्माण

चले गए शांडिल्य, वज्र को देकर दिव्य जानकारी।
ऋषियों ने पूछा - बतलायें नृप की गतिविधियां सारी॥ १॥

बोले सूत - परीक्षित ने मथुरा भिजवाये व्यापारी।
उन्हें भूमि दे, गया बसाया, देकर सुविधाएं सारी॥ २॥

विप्र और प्रभु-प्रेमी नर-वानर भी नृप ने बुलवाये।
सभी नगर में भूमि-भवन-जैसी सब सुविधाएं पाये॥ ३॥

लीला-स्थल खोज वज्र ने, सबका पुनरुद्धार किया।
पूर्व नाम से ग्राम बसा, अपना सपना साकार किया॥ ४॥

देकर प्रभु का नाम, कुओं को, जलाशयों को खुदवाया।
कुंज-बगीचे लगवाये, ब्रज ने उत्तम स्वरूप पाया॥ ५॥

किया गया स्थापित प्रभु को उनके धामों के द्वारा।
कृष्ण-भक्ति की धार बही, नृप के इन कामों के द्वारा॥ ६॥

थे प्रसन्न सब लोग भक्ति के सागर में डूबे रहते।
सभी वज्र की करें प्रशंसा, सभी कृष्ण की जय कहते॥ ७॥

प्रथम चार पाठक और उनकी प्रतिक्रियायें

'हिंदी भागवत' पढ़कर मन की इस शंका का समाधान हुआ, कि क्यों भागवत पुराण में वर्णित श्रीकृष्ण चरित्र में 'राधा जी' का उल्लेख नहीं है। इस 'हिंदी भागवत' में अनुवादक ने भागवत महात्म्य के दो अध्यायों का समावेश करके, शांडिल्य मुनि के माध्यम से इस शंका का समाधान कराया गया है, जो अन्यत्र अप्राप्त है। मुझे इस 'हिंदी भागवत' को पढ़ कर जो आत्मिक आनंद मिला, वह वर्णानातीत है।

इंजी. संदीप अवस्थी, जबलपुर

जिस तरह रावण-वध पर रामलीला का समापन हो जाता है उसी तरह कंस-वध के बाद श्रीकृष्ण लीला को भी समाप्त मान लिया जाता है। परंतु, 'हिंदी भागवत' पढ़कर श्रीकृष्ण की उन अन्य लीलाओं का भी ज्ञान हुआ, जो सामान्यतः भागवत पुराण वाचन का भाग भी नहीं होतीं हैं। भगवान शंकर से युद्ध, ब्रह्मा जी का मोह, प्रभास में गोपियों से मिलन आदि कथाओं को पढ़कर समझ में आया कि क्यों श्रीकृष्ण के अवतार को लीलावतार कहा जाता है।

डॉ. प्रतीक वाजपेयी, भोपाल

'हिंदी भागवत' पढ़कर मैंने जाना कि हमारे सनातन धर्म ग्रंथ, ज्ञान के साथ-साथ आनंद का भी श्रोत हैं, तभी तो सैकड़ों वर्षों से संस्कृत में लिखित इन ग्रंथों को कथावाचकों के माध्यम से सुना जाता रहा है। 'हिंदी भागवत' की सरल हिंदी और आकर्षण काव्य शैली, सहजता से मन, मस्तिष्क और आत्मा तक वही ज्ञान और आनंद सम्प्रेषित करती है। यह अतिशयोक्ति न होगी कि 'हिंदी भागवत' में वर्णित श्रीकृष्ण चरित्र, रामचरित मानस की तरह ही सरलता से जन-मानस को आनंद और ज्ञान प्रदान करेगा।

इंजी. विनीत दुबे, यू.एस.ए.

महाभारत की कथा, विश्व की सर्वोत्कृष्ट कथा है, जो श्रीकृष्ण के चरित्र के कारण श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करती है। उन्हीं श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र भागवत पुराण में वर्णित है, किंतु संस्कृत में होने से जन-सामान्य तक नहीं पहुँच सका। श्रीकृष्ण की 'बाल लीलाओं' तथा 'राधा प्रेम' तक ही विभिन्न कवि, लेखक एवं फिल्मकार सीमित रहे हैं। 'हिंदी भागवत' में पहली बार हिंदी भाषा में भगवान श्रीकृष्ण का पूरा चरित्र उपलब्ध करवाकर श्री गोविंद मकरंद दुबे जी ने एक बड़ी कमी को दूर किया है।

श्रीमती दीपा उपाध्याय, जबलपुर

हिंदी भागवत के अनुवादक

पं. गोविंद मकरंद दुबे

जन्म – 1946, बनगांव, जिला – दमोह (म.प्र.)
शिक्षा – विधि स्नातक, पत्रकारिता पत्रोपाधि

अत्यंत धार्मिक पारिवारिक पृष्ठभूमि होने से बचपन से ही धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन का अवसर मिला। स्कूली शिक्षा के दौरान गीता-रामायण परीक्षाओं के साथ संस्कृत कोविद उत्तीर्ण। बी.एससी. की पढ़ाई के दौरान कविता संग्रह 'ओस और आंसू' का प्रकाशन। संस्कारधानी से प्रकाशित समाचार पत्र नर्मदा ज्योति, सार-समाचार, नई दुनिया एवं नवभारत में सेवा पश्चात् शासकीय सेवा के दौरान 'आपूर्ति अधिकारी संघ' के प्रांताध्यक्ष के रूप में सांगठनिक उपलब्धियाँ। सेवानिवृत्ति के बाद 15 वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में कार्य। इस दौरान विधि पुस्तक 'आवश्यक वस्तु मेन्युअल' के म.प्र. के लिए 9 तथा छ.ग. राज्य के लिए 5 संस्करणों का प्रकाशन। कोरोना काल में पत्नी की बीमारी एवं निधन के पश्चात् आध्यात्म की ओर प्रवृत्त। श्रीमद्भगवद्गीता का हिंदी में छंद-रूप में अनुवाद की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन अनुज श्री गोपाल प्रसाद दुबे से प्राप्त। 'हिंदी गीता' की लोकप्रियता से उत्साहित होकर 'भागवत पुराण' में वर्णित रसराज श्रीकृष्ण की आनंदमयी लीलाओं का 4567 छंदों में 'हिंदी भागवत' के रूप में अनुवाद। आगे आदिकवि बाल्मीकि रचित रामायण के 24 हजार श्लोकों का काव्यानुवाद कर 'हिंदी रामायण' के प्रकाशन की योजना। अनुज श्री गोपाल प्रसाद दुबे का प्रोत्साहन एवं प्रेरणा मुख्य संबल।

सम्पर्क – 94251 52599, 88392 53059
E-mail : dubeymakrand@gmail.com

ISBN 978-819790652-7

हिंदी भागवत के प्रेरणास्त्रोत

श्री गोपाल प्रसाद दुबे

जन्म – 1953, बनगांव, जिला – दमोह (म.प्र.)
शिक्षा – बी.एससी., एम.ए.

पारिवारिक पृष्ठभूमि धार्मिक होने के कारण धार्मिक संस्कार तो मिले ही, धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन का भरपूर अवसर मिला। भारतीय संचार निगम लि. में इंजीनियर के रूप में विभिन्न पदों पर रहकर, सहायक जनरल मैनेजर के प्रतिष्ठित पद से सेवानिवृत्ति। सेवा के दौरान अधिकारियों के संगठन में भी विभिन्न पदों पर सांगठनिक कार्य। मां शारदा मैहर की जाग्रत पीठ की असीम कृपा से, सेवानिवृत्ति के पश्चात् पूरी तरह गीता-मानस-ध्यान एवं योग के लिए समर्पित। स्वामी निरंजनानंद सरस्वती योग विश्वविद्यालय से दीक्षा प्राप्त। दिव्य जीवन संघ-ऋषिकेश से योग का प्रशिक्षण लेकर नेहरू नगर, भिलाई, दुर्ग में दिव्य जीवन संघ की शाखा-'शिवानंद योग निकेतन' की इकाई की स्थापना। स्थानीय साधकों को प्रात:कालीन सत्र में प्राणायाम एवं योग के प्रशिक्षण का क्रम वर्ष 2001 से निरंतर जारी। संध्याकाल में मानस-गीता स्वाध्याय सत्र का संचालन वर्ष 2011 से अनवरत् जारी। कोरोना काल से सत्रों का ऑन-लाइन संचालन। परिणामत: देश के कई प्रांतों के साधक एवं चिंतक शामिल। साधकों को प्रतिदिन गीता के दो श्लोक लिखने एवं स्मरण करने की प्रेरणा। इसी दौरान श्रीमद्भगवद्गीता के संस्कृत श्लोकों को पढ़ने में साधकों को होने वाली कठिनाई को देखते हुए हिंदी में गीता के पद्यानुवाद का विचार बना, जिसकी परिणति 'हिंदी गीता' के रूप में हुई। 'हिंदी गीता' की सफलता से उत्साहित होकर 'हिंदी भागवत' की रचना के लिए निरंतर प्रोत्साहन और प्रेरणा। परिणामत: 'हिंदी भागवत' आपके हाथों में है।

सम्पर्क – 94252-01501, 95757-44505
E-mail : gopaldubey.1@gmail.com